वनस्पति वाणी

वर्ष 18 सितम्बर 2008 अंक 17

वसुधेति च शीतेति पुण्यदेति धरेति च
नमस्ते सुभगे देवि द्रुमोऽयं वर्धतामिति

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण
BOTANICAL SURVEY OF INDIA

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

© भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, 2008
इस प्रकाशन का कोई अंश निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के लिखित पूर्वानुमति के बिना पुनर्प्रवर्तित/रिट्रिवल पद्धति से भण्डारण या इलेक्ट्रानिक, मेकेनिकल फोटोकापी, रिकार्डिंग या अन्य किसी तरीके से ट्रांसमिट नहीं किया जा सकता है।

संरक्षक : डा. एम संजप्पा
प्रधान सम्पादक : डा. देवेन्द्र कुमार सिंह
सम्पादक मण्डल : डा. परमजीत सिंह
डा. प्रतिभा गुप्ता
श्री नवीन चौधरी
श्री थान सिंह

- वनस्पति वाणी में प्रकाशित रचनाओं की मौलिकता, प्रामाणिकता एवं व्यक्त विचारों के लिए लेखक उत्तरदायी है।

- इस अंक के प्रूफ संशोधन, मुद्रण क्रम में हिन्दी एवं प्रकाशन अनुभाग के सभी कर्मचारियों ने सक्रिय सहयोग प्रदान किया है।

आवरण चित्र :
लद्दाख के शीत मरुस्थल

छाया :
सुनील कुमार श्रीवास्तव एवं देवेन्द्र कुमार सिंह

निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, सी. जी. ओ. कॉमप्लेक्स, साल्ट लेक, कोलकाता - 700 064 द्वारा प्रकाशित एवं मे. इम्प्रींटा, 243/2 बी, ए.पी.सी. रोड, कोलकाता - 700 006 द्वारा मुद्रित।

विषय सूची

1.	अधिपर्णी लिवरवर्ट्स का अनोखा संसार	: देवेन्द्र कुमार सिंह	1
2.	शीत मरुस्थल (भंगुर परितंत्र) की वनस्पति विविधता	: सुनील कुमार श्रीवास्तव एवं देवेन्द्र कुमार सिंह	7
3.	अचानकमार–अमरकंटक जैवमंडल की जैव विविधता – एक परिचय	: अच्युतानन्द शुक्ला एवं कृष्ण पाल सिंह	14
4.	अरूणाचल प्रदेश के कुछ अनूठे खाद्य एवं पेय	: रितेश कुमार चौधरी एवं रमेश चन्द्र श्रीवास्तव	20
5.	वैदिक वाङमय में वनस्पतियों की प्रासंगिकता	: रमेश चन्द्र श्रीवास्तव, अर्चना शर्मा एवं के. के. सिंह	22
6.	पिछली अर्धशताब्दी में पूर्वोत्तर भारत से डेन्ड्रोबियम वंश पर योगदान	: छाया देवरी एवं टी. एम. हिनयुटा	26
7.	दाम्फा बाघ अभयारण्य की उपयोगी औषधीय वनस्पतियां : एक अवलोकन	: बिपिन कुमार सिन्हा, रमेश कुमार एवं टी. एम. हिनयुटा	31
8.	विचित्र, दुर्लभ, संकट ग्रस्त एवं उपयोगी वनस्पति - कीड़ा घास	: बी. एस. खोलिया एवं ए. ए. अन्सारी	35
9.	पूर्वोत्तर भारत के बिगोनिएसी कुल की आर्थिक उपयोगिता	: एमाद उद्दीन एवं संध्याज्योति फुकन	38
10.	नमभूमि विविधता : वानस्पतिक सर्वेक्षण, समस्याएं एवं समाधान	: एस. एल. गुप्ता	41
11.	भारत के कुछ विशेष संकटग्रस्त एवं लुप्तप्राय पौधे	: पी. लक्ष्मी नरसिमहन एवं नन्दलाल तिवारी	44
12.	चक्रसिला वन्यजीव अभयारण्य : एक दृष्टिकोण	: रनजित दैमारी एवं सन्ध्याज्योति फुकन	59
13.	नाकरेक जीवमंडल में पाये जाने वाले कुछ उपयोगी पौधे	: बिकारमा सिंह, विवेक नारायण सिंह, बिपिन कुमार सिन्हा एवं संध्याज्योति फुकन	61
14.	नोकरेक जीव मंडल की बागवानी योग्य जंगली वनस्पतियाँ	: बसन्त कुमार सिंह एवं हिमाद्री शेखर देवनाथ	67
15.	बारूदी सुरंग के सन्धान में आनुवंशिक रूप से रूपान्तरित पादप का योगदान	: अरविन्द प्रामाणिक	75
16.	पूर्वोत्तर भारत में वेणु	: पुष्पा कुमारी एवं परमजीत सिंह	77
17.	मादक पौधा ''कैनाबिस सेटाईवा'' के प्रति जागरुकता	: आरती गर्ग एवं आर. के गुप्ता	86
18.	विधि विज्ञान एवं अपराध अनुसंधान में शैवाल का महत्व	: प्रतिभा गुप्ता	89
19.	विशाल जलीय लिली (विक्टोरिया) के संकर (हाइब्रिड)	: शिव कुमार	93
20.	डैफ्ने पेपाइरैसिया : अरूणाचल प्रदेश के परंपरागत कागज का एक उत्तम स्रोत	: हिमांशु शेखर महापात्र	96

21.	पन्ना (मध्य-प्रदेश) जिले के राजगोंड आदिवासियों द्वारा प्रयोग किये जाने वाले औषधीय पौधे	: रमेश कुमार, बी.के.शुक्ला एवं बिपिन कुमार सिन्हा	97
22.	पेड़-पौधों के स्थानीय नामों की उत्पत्ति एवं उनका वानस्पतिक पहचान में महत्व	: हरीश सिंह 'भुजवान'	102
23.	सायनोजीवाणु के जाति अभिनिर्धारण में प्रयुक्त आधुनिक तकनीकी विधियाँ	: प्रतिभा गुप्ता	108
24.	लोकटक रामसार क्षेत्र : एक अवलोकन	: विवेक नारायण सिंह एवं बिपिन कुमार सिन्हा	111
25.	हिमालय की अधिकतम उंचाई पर पाई जाने वाली कुछ वनस्पतियां	: प्रशांत केशव पुसालकर	118
26.	वैश्विक तापन (Global Warming) एवं जलवायु परिवर्तन : एक भूमंडलीय समस्या	: विवेक नारायण सिंह एवं सुशील कुमार सिंह	124
27.	अमरकण्टक (मध्य-प्रदेश) के अल्प-ज्ञात पारम्परिक औषधीय पौधे	: रमेश कुमार एवं सुधांशु शेखर दाश	129
28.	जैव विविधता – एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	: सुशील कुमार सिंह	133
29.	मलेरिया के निदान में सहायक औषधीय पौधे	: बिपिन कुमार सिन्हा एवं रमेश कुमार	138
30.	पेरिला फ्रूटिसेन्स (भजीरा)--मिजोरम राज्य की एक संभावित तिलहन फसल	: बिपिन कुमार सिन्हा एवं रमेश कुमार	143
31.	विश्व में ऊर्जा संकट व उसके सम्भावित समाधान में कृषि जनित अपशिष्टों का उपयोग	: सौरभ सचान एवं गोपाल कृष्ण	144
32.	भारतीय संस्कृति में वृक्षों का आध्यात्मिक महत्व	: विजय कुमार मासतकर	146
33.	पर्यावरण से सम्बन्धित कुछ रोचक जानकारी	: अच्युतानन्द शुक्ला एवं अथोकपम पिनोकियो	148
34.	पर्यावरण से सम्बन्धित महत्वपूर्ण टिप्पणियाँ	: विनीत कुमार रावत	151
35.	भारतीय मदार	: एस. एस. दाश एवं एम. अहमेदुल्लाह	156
36.	सिक्किम हिमालय के कुछ रोचक पेडिकुलारिस	: ए. के. साहू एवं ए. ए. अन्सारी	159
37.	पर्यावरण	: आर. के. गुप्ता एवं संगीता कुमारी	161
38.	प्रकृति और प्राणी	: विभूति प्रकाश	162
39.	बदला कैसे मौसम का मिजाज	: श्री भोला नाथ	164
40.	प्रकृति और जल	: अनुराधा सिंह	165
41.	पर्यावरण समाचार (संकलन)	: संजीव कुमार	166
42.	पुष्प परिचय	: नवीन चौधरी	167
43.	एक आदर्श वैज्ञानिक	: ए. बी. डी. सेलवम	170

अधिपर्णी लिवरवर्ट्स का अनोखा संसार

देवेन्द्र कुमार सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

हरितोदिभद् (Bryophyta) जिन्हे सामान्यतयः लिवरवर्ट (Hepaticae), हॉर्नवर्ट (Anthocerotae), एवं मॉस (Musci) में वर्गीकृत किया जाता है, वनस्पति जगत के एक रोचक सदस्य हैं। वैसे तो संख्या में यह विश्व में पुष्पी पौधों के बाद हरी वनस्पतियों का दूसरा सबसे बड़ा समूह है, पर अपने नगण्य आकार के चलते प्रायः अनदेखा कर दिये जाने के कारण इनका संसार अभी भी काफी हद तक रहस्यमय है। जलीय प्राकृतवास को छोड़कर स्थलीय आवास को सबसे पहले अपनाने वाले ये पौधे अधिकतर नम एवं छायादार स्थानों पर पाये जाते हैं। निषेचन हेतु जल पर अभी भी इनकी नितांत निर्भरता के कारण इन्हे वनस्पति जगत का 'जलस्थली' अथवा 'उभयचर' (amphibians) के रूप में भी जाना जाता है। अपने जीवन – चक्र को पूरा करने हेतु जल पर इस निर्भरता के कारण इनका शारीरिक विकास व भौगोलिक विस्तार सीमित सा होकर रह गया है। फिर भी समुद्री परितंत्र को छोड़कर हरितोदिभद् धरती पर उपलब्ध सभी परितंत्रों, यहां तक कि ध्रुवीय क्षेत्रों, में सहजता से पाये जाते हैं।

हरितोदिभदों में त्वचा की बाहरी झिल्ली (cuticle) के सामान्य अभाव अथवा इसके कम विकसित होने के कारण इनमें अपनी जलापूर्ति इत्यादि सीधे वातावरण से करने की असाधारण क्षमता होती है। कुछ मॉस प्रजातियों, जिनमें संवहनी तंत्र कुछ सीमा तक विकसित होता है, अथवा उन लिवरवर्ट्स, जिनमें मूलाभ (rhizoids) बहुतायत में पाये जाते हैं, में भी जल व पोषक खनिजों की सामान्य आपूर्ति इन पौधों की आम सतह के माध्यम से सीधे पर्यावरण से होती है। फलस्वरूप इन पौधों तथा इनके बाह्य पर्यावरण में उपस्थित जल की मात्रा में हमेशा साम्यता होती है। अर्थात यदि वाह्य पर्यावरण में जल अथवा नमी में कमी आती है तो ये पौधे सुसुप्तावस्था में चले जाते हैं, तथा अनुकूल परिस्थिति आने पर पुन अपनी सामान्य अवस्था में आ जाते हैं। अपने इस प्वाइकिलोहाइड्रिक (Poikilohydric) स्वभाव के कारण ये पौधे विभिन्न सतहों, अनेक मानवोपयोगी त्याग दी गई वस्तुओं, जैसे जूते, पॉलिश की गई ग्रेनाइट की चट्टानों, इत्यादि पर भी सहजता से उगते हैं। कुछ हरितोदिभद्, जैसे *डाल्टोनिया अंगुस्टिफोलिया* (मॉस), *टैक्सीलिज्यूनिया आबॅट्यूसैंगुला* तथा *कोलेलिज्युनिया, माइक्रोलिज्युनिया* एवं *मेटज्गीरिया*, आदि वंशो की जातियाँ (लिवरवर्ट्स) जीवित वीविल (*Gymnopholus*), आदि कीटों तथा छिपकली (*Corythophanes cristatus*) के शरीर पर भी अधिप्राणी (epizoic) के रूप में अपना निवास स्थापित कर लेती हैं। हरितोदिभद् के अतिरिक्त प्वाइकिलोहाइड्रिक गुण सम्पन्न अन्य वनस्पतियों में कुछ हरित शैवाल, नील-हरित शैवाल (Cyanobacteria) व शैवाक के अतिरिक्त अर्जेंटिना में पाया जाने वाला कैक्टेसी कुल का पुष्पी पौधा *ब्लॉस्फेल्डिया लिलिपुटियाना* (*Blossfeldia liliputiana*) प्रमुख हैं।

प्राकृतवास

हरितोद्भिद् सामान्यतः स्थलीय अवस्था में नम भूमि, गीली बालूदार सतह, नम दीवारों, गीली चट्टानों, विघटित हो रही टहनियों, पत्तियों, इत्यादि, अथवा अधिपादपीय रूप में वृक्षों के तनों पर प्राकृतरूप में पाये जाते हैं। पर आर्द्र उष्ण एवं उपोष्ण-कटिबन्धीय, सदाबहार वर्षा-वनों (rain-forests) व मेघ - वनों (cloud-forests) में, जहां अत्यन्त अनुकूल परिस्थितियां पुष्पी-पौधों एवं पर्णागों की पत्तियों के उपरी सतह पर एक 'पर्ण मंडल' (phyllosphere) की रचना करती हैं, अधिपर्णी वनस्पतियां प्रचुरता से पायी जाती हैं। इनमें हरितोद्भिद् के अतिरिक्त, अधिकतर शैवाक, कवक व शैवाल (हरित व नील-हरित दोनों ही) की जातियां पायी जाती हैं, पर लिवरवर्ट्स प्रमुख हैं। अधिपर्णी लिवरवर्ट्स की विविधता एवं प्रचुरता के लिए प्रकाश, ताप व अपेक्षिक आर्द्रता मुख्य कारक हैं। ये मुख्यतयः 500-1500 मी. तक की ऊँचाई वाले वनों में पाये जाते हैं, पर सिक्किम में ये 2800 मी. की ऊंचाई पर भी उगते देखे जा सकते हैं। *कोलोलिज्यूनिया नाकाजिमी* नामक अधिपर्णी लिवरवर्ट तो जापान के बर्फ-अच्छादित क्षेत्र में सहजता से उगता है।

अधिपर्णी लिवरवर्ट्स का कोई प्राकृतिक समूह नहीं हैं तथा वे सभी लिवरवर्ट्स, जो दूसरे पौधों की पत्तियों के सतह पर उगते हैं, उन्हें आमतौर पर अधिपर्णी कहते हैं। पर हाल ही में वैज्ञानिकों ने इन्हें तीन श्रेणियों में विभाजित किया है। है। ये हैं (i) नियमित (obligate) अधिपर्णी जो कि हमेशा अधिपर्णी के रूप में ही पाये जाते हैं, जैसे *रेडुला असामिका* (*Radula assamica*), *ओटोलिज्यूनिया* (Otolejeunea) वंश की सभी जातियां तथा *तुएमेला (Tuyamaella)*, *कोलोलिज्यूनिया (Cololejeunea)*, *लेप्टोलिज्यूनिया (Leptolejunea)*, *कॉल्यूरा (Colura)*, आदि वंशो की अधिकांश जातियां, (ii) समर्थ (facultative) अधिपर्णी जो सामान्यतयः अधिपर्णी होने के साथ-साथ अन्य प्राकृतवासों, विशेष कर अधिपादपीय रूप में भी उगने की क्षमता रखते हैं (अधिकतर अधपर्णी लिवरवर्ट्स इसी श्रेणी में आते हैं), तथा (iii) प्रासंगिक (Occasional) अथवा अवसरवादी जो कि सामान्यतयः अधिपादपीय होते हैं, पर अतिउपयुक्त परिस्थितियों में अधिपर्णी रूप में भी पाये जाते हैं, *जैसे काइलोलिज्यूनिया (Cheilolejeunea)*, *फ्रुलेनिया (Frullania)*, *जुबुला (Jubula)*, *प्लेजियोकाइला (Plagiochila)*, *हेटेरोस्काइफस (Hetescyphus)*, *टायकैंथस (Ptychanthus)*, *स्प्रूसिएंथस (Spruceanthus)*, *रेडुला (Radula)*, *ट्रोकोलिज्यूनिया (Trocholejeunea)*, इत्यादि की अनेक जातियां। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि अति आर्द्र वर्षा वनों में लिवरवर्ट्स की लगभग सभी जातियां अधिपर्णी रूप से उगने में सक्षम होती हैं।

उष्णकटिबन्धीय अफ्रीका में किये गये अध्ययन के अनुसार अधिपर्णी जातियां प्रायः कटी-फटी (dissected) पत्तियों पर नहीं उगती हैं। ऐसा शायद इसलिए कि इस तरह के सतह पर इन्हे अपने आपको स्थापित करने में कठिनाई होती हो। पर इसके विपरीत चीन व भारत में पर्णागों पर भी इन पौधों की अच्छी - खासी विविधता देखने को मिलती हैं। सिक्किम में शंकुधारी वृक्ष *क्रिप्टोमेरिया जपॉनिका* की नुकीली पत्तियों पर भी *एकैंथोकोलियस गिल्वस* नामक अधिपर्णी लिवरवर्ट को बड़ी सजहता से उगते हुए पाया गया है।

अधिपर्णी लिवरवर्ट्स प्रायः पत्तियों की सतह पर चटाई सी बनाते हुए उगते हैं जिससे कि इन्हें सतह से अधिक से अधिक जल की प्राप्ति हो सके तथा ये अपने आपको सूखने से बचा सकें। इनके तने प्रायः क्षीण व चपटे होते हैं तथा पत्तियां धनी होती हैं। नम वातावरण में ये पत्तियां खुल सी जाती हैं जिससे अधिक से अधिक जल का शोषण कर सकें, पर शुष्क वातावरण में जलह्रास को रोकने हेतु ये पुनः सामान्य अवस्था में आ जाती हैं। सभी अधिपर्णी लिवरवर्ट्स में मूलाभ अधिकतर गुच्छों में विकसित होते हैं जिनके सिरे चिपकने वाली गद्दियों का रूप लेकर इन पौधों को पत्ती की सतह पर स्थिर रहने में सहायक होते हैं। चूंकि अधिपर्णी लिवरवर्ट्स का जीवन-चक्र प्रायः 'अल्पकालिक' (ephemeral) होता है, अतः कई जातियां, जैसे *मेट्जगीरियोप्सिस जीबोडेंसिस (Metzgeriopsis tjibodensis)*, *रेडुला एग्वीर्रेई (Radula aguirrei)*, *रेडुला यनीला (Radula yanoella)*, आदि युग्मकोद्भिद् पीढ़ी की शैशवावस्था रूप में ही पायी जाती हैं तथा वयस्क होने से पहले ही इनमें बीजाणुउद्भिद् का विकास हो जाता है। इस प्रकार की शरीर रचना अर्थात 'नियोटेनी' (Neoteny) अल्पकालिक अधिपर्णी जीवन-चक्र को सफलतापूर्वक पूरा करने की एक श्रेष्ठ रणनीति है।

जातीय विविधता

ओलोफ पीटर स्वार्ट्ज ने सर्वप्रथम 1788 में जमाइका से पर्णागों के सूखे पत्तों पर उगनें वाली अधिपर्णी लिवरवर्ट *जंगरमानिया फ्लेवा (Jungermannia flava)* की खोज की। विश्व भर के तमाम पादप-भौगोलिक क्षेत्र में पायी जाने वाली यह जाति आज *लिज्यूनिया फ्लेवा* के नाम से जानी जाती है। पर इस बात के स्पष्ट संकेत हैं कि हरितोद्भिद् हजारों-लाखों वर्षों से पत्तियों की सतह पर अपना जीवन बसर कर रहे हैं। ऑस्ट्रेलिया के न्यू साउथ वेल्स स्थित कियान्द्रा में मॉस वंश *एफेमेरॉप्सिस (Ephemeropsis)* से मिलते-जुलते आरंभिक मायोसीन (Lower Miocene) काल के 160-230 लाख वर्ष पूराने जीवाश्म मिले हैं। जर्मनी से तो आंरभिक इयोसीन (Lower Eocene) काल के 480-550 लाख वर्ष पुराने जीवश्म प्राप्त हुये हैं। इस बात के स्पष्ट संकेत हैं कि कियांद्रा से प्राप्त ये जीवाश्म अधिकतर मिर्टेसी तथा लॉउरेसी कुल की पत्तियों पर उगते रहे होंगे।

विश्व में अधिपर्णी लिवरवर्ट्स की कुल जातियाँ अभी भी निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। पर चेक वैज्ञानिक टॉमस पॉक्स के डाटा बैंक के अनुसार 22 वंशो के अंतर्गत इनकी लगभग 1000 जातियां ज्ञात हैं जो कि मुख्यतयः एशिया, अमेरिका व अफ्रीकी महाद्वीप में पायी जाती हैं। इनमें से एशिया में सबसे अधिक 504 जातियां पाई जाती हैं, जिनमें से 11 वंशो के तहत 142 जातियां पुर्वी एशिया से ज्ञात हैं। अमेरिका, विशेषकर दक्षिणी अमेरिका से 375 अधिपर्णी लिवरवर्ट्स ज्ञात हैं। अमेरीकी वैज्ञानिक राबर्ट ल्यूकिंग के अनुसार लिवरवर्ट्स की 532 जातियाँ नियमित व समर्थ अधिपर्णी हैं जो कि उष्णकटिबन्धीय अमेरिका व एशिया में पायी जाती हैं। अधिपर्णी लिवरवर्ट्स की 900 से भी अधिक जातियां लिज्यूनिएसी कुल का प्रतिनिधित्व करती हैं, जिनमें से *कोलोलिज्यूनिया* की लगभग 389, *सिरैटोलिज्यूनिया* की 114, *ड्रिपैनोलिज्यूनिया* की 98, *कॉल्युरा* की 76, *डिप्लेसियोलिज्यूनिया* की 68, *प्रायनोलिज्यूनिया* की 59, *एफैनोलिज्यूनिया* की 54, *लेप्टोलिज्यूनिया* की 48 तथा *माइक्रोलिज्यूनिया* की 34 जातियां प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त रेडुला (13) को छोड़कर अन्य वंशों में से प्रत्येक की 10 से भी कम अधिपर्णी जातियां पाई जाती हैं।

एशिया में अधिपर्णी लिवरवर्ट्स की संख्या के आधार पर चीन सबसे अधिक समृद्ध है, जहां 10 कुल व 28 वंश के अंतर्गत लगभग 168 जातियां पायी जाती हैं। भारत में अधिपर्णी लिवरवर्ट्स पर सर्वप्रथम अध्ययन 1943 में स्वर्गीय प्रो. एस. के. पांडे व उनके सहयोगियों द्वारा प्रारम्भ किया गया। उन्होने दक्षिणी व पूर्वी भारत से 5 अधिपर्णी जातियों का विवरण प्रस्तुत किया। कालांतर में विभिन्न कुल अथवा वंश के गहन अध्ययन के क्रम में भारत से अधिपर्णी लिवरवर्ट्स की 4 कुल व 13 वंशो के तहत लगभग 48 जातियां प्रकाश में आईं हैं, जिनमे से अधिकांश लिज्यूनिएसी कुल से संबंधित हैं। इनमें से 29 जातियां पूर्वी हिमालय क्षेत्र से, 25 जातियां दक्षिणी भारत तथा 12 जातियां अंडमान व निकोबार द्वीप समूह क्षेत्र से ज्ञात हैं। देश में अधिपर्णी लिवरवर्ट्स की प्राप्ति के ये तीन ही मुख्य केन्द्र हैं। ऐसा नहीं है कि देश में इन रोचक लिवरवर्ट्स की केवल इतनी जातियां ही पायी जाती होंगी। इसका मुख्य कारण है पूर्वी हिमालय व पश्चिमी घाट

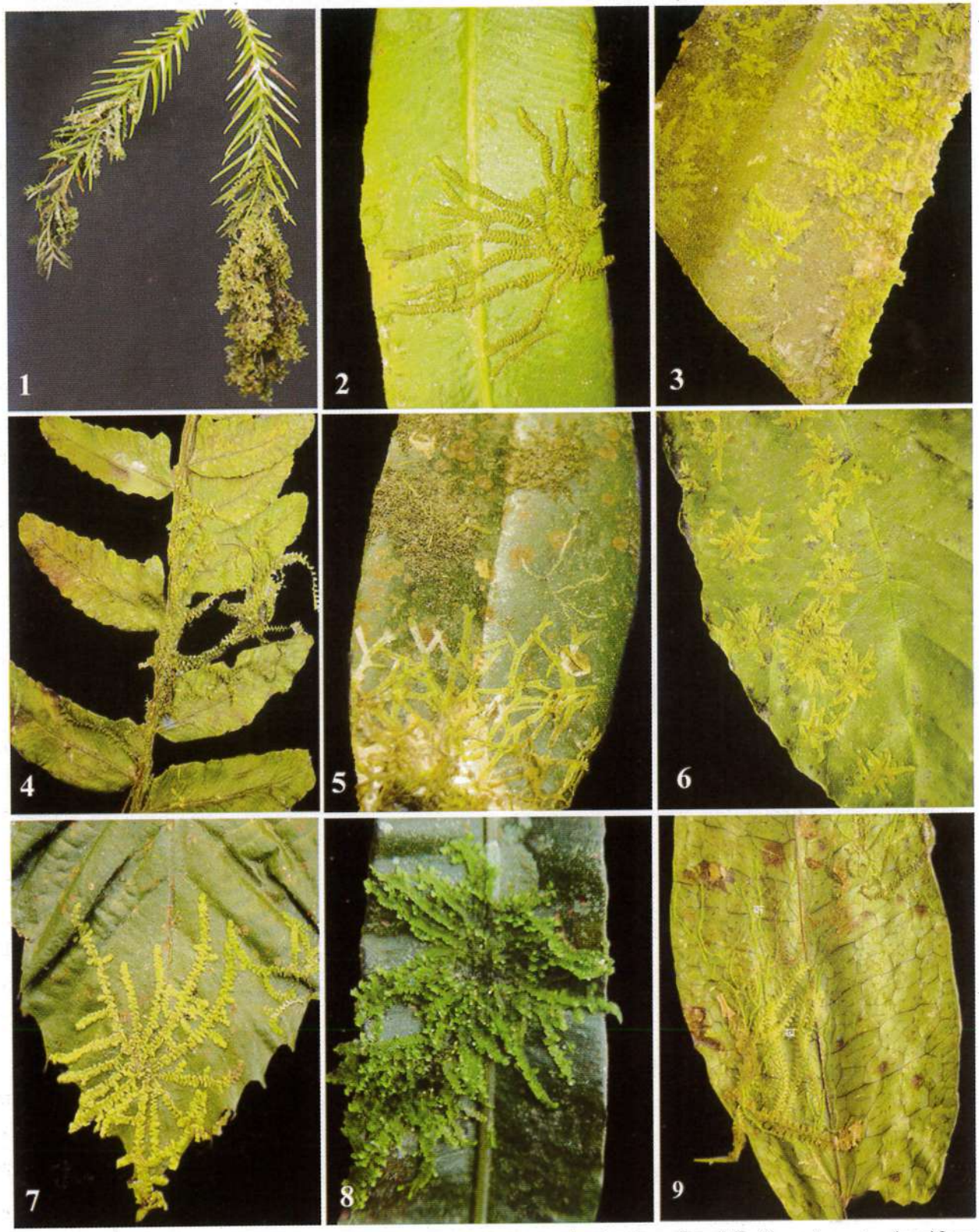

1. *क्रिप्टोमेरिया जपोनिका* की पत्तियों पर उगा *एकैन्थोकोलियस गिल्वस*; 2. *पायरोशिया फ्लाकुलोसा* की पत्ती पर उगी *काइोलिज्यूनिया इम्ब्रीकाटा*; 3. *अगेव अमेरिकाना* की पत्ती पर उगी *कोलोलिज्यूनिया लैटीलोब्यूला*; 4. *पालीस्टाइकम लेंटम* की पत्तियों पर उगा *प्लैजियोकाइला शियोफिला*; 5. *एस्काइनेन्थिस हुकेरी* की पत्ती पर उगी *मेट्जगीरिया सिक्किमेंसिस* तथा *लिज्यूनिएसी* कुल की विभिन्न जातियां; 6. *रेडुला एकूमिनाटा*; 7. *पाइलिया* जाति की पत्ती पर उगी *लिज्यूनिया आब्सक्यूरा*; 8. *एस्पलीनियम* जाति की पत्ती पर उगी *लिज्यूनिया फ्लेवा*; 9. *माइक्रसोरियम* जाति की पत्ती पर उगी (क) *लिज्यूनिया ट्यूबरकुलोसा* एवं (ख) *हेटेरोस्काइफस बेश्चेरेली*.

में वर्षा-वनों से आच्छादित क्षेत्रों में गहन सर्वेक्षण व अधिपर्णी लिवरवर्ट्स पर केन्द्रित अध्ययन का अभाव। यह लेखक व उसके सहयोगी शोध छात्रों द्वारा पूर्वी हिमालय की अधिपर्णी लिवरवर्ट जातियों पर हाल ही में प्रारम्भ किए गये अध्ययन से पूरी तरह उजागर होता है। लेखक व उसके सहयोगियों ने अपने अध्ययन के आधार पर अभी तक केवल अरुणाचल प्रदेश, दार्जिलिंग व सिक्किम से *मेट्जगीरिया* वंश की आठ अधिपर्णी जाति एवं एक उपजाति (जिनमें से *मेट्जगीरिया टेंपरेटा, मेट्जगीरिया वायोलेशिया* एवं *मेट्जगीरिया फरकेटा प्रभेद वुलवुला* भारत के लिए नई हैं), *लिज्यूनिया* वंश की तीन जातियों (जिनमें से *लिज्यूनिया कश्यपाई, लिज्यूनिया मेहराना* विज्ञान के लिये तथा *लिज्यूनिया एइफ्रिजी* देश के लिए नई है) तथा देश के लिए एक अन्य नयी जाति *लेप्टोलिज्यूनिया सबडेंटेटा* के साथ-साथ पूर्वी हिमालय, सिक्किम एवं अरूणाचल प्रदेश राज्य तथा अंडमान द्वीप समूह के लिए 13 अन्य जातियों का वर्णन किया है। अब तक किये गये अध्ययन ने पूर्वी हिमालय क्षेत्र में अधिपर्णी लिवरवर्ट्स की रोचक व समृद्ध विविधता को उजागर किया है।

अधिपर्णी लिवरवर्ट्स व उनके प्राकृतवास में सम्बन्ध

यह सत्य है कि 'पर्णमंडल' एक जटिल सूक्ष्म-प्राकृतवास के द्योतक हैं, पर अधिपर्णी लिवरवर्ट्स और उनके मेजबान पौधों के आपसी संबंध अभी तक पूरी तरह उजागर नहीं हैं। ऐसा समझा जाता है कि अधिपर्णी लिवरवर्ट्स मात्र जल एवं मेजबान पत्तियों से हो रहे कार्बनिक पदार्थो के रसाव पर ही निर्भर करते हैं। पर यह भी आम धारणा है कि पत्ती की सतह पर उगने वाली कोई चीज उसके लिये हानिकारक होगी। उदाहरणार्थ पत्ती के ऊपर अधिपर्णियों की सतह प्रकाश-संशलेषण प्रक्रिया को प्रभावित करती होगी, अथवा इनके मूलाभ पत्ती की सतह में प्रवेश कर रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं का मार्ग प्रशस्त करते होंगे। इसके अतिरिक्त अधिपर्णी पौधों द्वारा संचित नमी अनेक हानिकारक सूक्ष्म जीवाणुओं के पनपने के लिये उपयुक्त अवसर प्रदान कर सकती है। पर इसके विपरीत यह भी धारणा है कि अधिपर्णी लिवरवर्ट्स के सानिध्य में उगने वाली नील-हरित शैवाल वायुमंडलीय नत्रजन का स्थिरिकरण कर मेजबान पत्तियों को तथा अन्य अधिपर्णी पौधों को प्रयोज्य नत्रजन उपलब्ध कराने में सहायक होती हैं। एक अध्ययन के अनुसार किसी भी मेजबान पत्ती में उपलब्ध नत्रजन का 10 से 25 प्रतिशत भाग अधिपर्णी सूक्ष्म-जीवाणुओं की देन हैं।

उष्णकटिबन्धीय अफ्रीका व दक्षिणी अमेरिका में व्यापक रूप से पाये जाने वाले अधिपर्णी लिवरवर्ट *रेडुला फ्लेसिडा* पर किए गये अध्ययन से ज्ञात होता है कि अधिपर्णियों की सतह मेजबान पत्ती को उपलब्ध होने वाले प्रकाश में मात्र दो प्रतिशत तक ही बाधा पहुँचाती है। साथ ही यह भी पाया गया है कि इन पोधों के मूलाभ मेजबान पत्ती की बाह्य त्वचा की केवल पर्णहरित-विहीन कोशिकाओं का ही वेधन करते हैं, तथा पर्णहरित युक्त कोशिकाएं पूरी तरह सुरक्षित रहती हैं। यह भी देखा गया है कि लिवरवर्ट वर्षा के बाद मेजबान पत्ती की सतह से स्पंज की भांति जल सोख लेता है तथा नम होने पर इसकी पत्तियां तन जाती हैं जो जल के शीघ्र वाष्पीकरण में सहायक होती हैं। इस प्रकार ये पत्ती की सतह से नमी सुखानें में सहायक होते हैं। अध्ययन में यह भी पाया गया है कि मेजबान पत्ती से लिवरवर्ट को केवल जल की आपूर्ति होती तथा इनके मध्य केवल फास्फोरस का आदान-प्रदान होता है। अतः *रेडुला फ्लेसिडा* को आंशिक परजीवी भी कह सकते हैं। पर यह निश्चित है कि अधिपर्णी लिवरवर्ट्स कार्बन हेतु मेजबान पर बिल्कुल निर्भर नहीं होते तथा प्रकाश संशलेषण द्वारा अपना भोजन स्वयं बनाते हैं।

कोस्टारिका में किये गये एक अन्य अध्ययन के अनुसार अधिपर्णी लिवरवर्ट्स व शैवाक प्रायः मेजबान पत्तियों की 'पत्तियां काटने वाली चींटिंयों' से रक्षा करते हैं। पत्ती की सतह से इन अधिपर्णीयों को हटाने से देखा गया है कि ये चींटियां ऐसी पत्ती को दो से तीन गुना ज्यादा हानि पहुँचाती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसे लिवरवर्ट्स व शैवाक का रासायनिक स्राव इन चीटियों अथवा इनके 'कवक उद्यान' के लिये हानिकारक है।

अफ्रीकी वनों में एक पत्ती की सतह पर अधिपर्णी लिवरवर्ट्स की 20 जातियों को एक साथ उगते हुए पाया गया है। वहीं मध्य अमेरिका स्थित कोस्टारिका में तो *वेल्फिया ज्यॉर्जी* (welfia georgii) नामक ताड़ की एक पत्ती पर 24

अधिपर्णी जातियों तक का अभिलेखन मिलता है। पर भारत में अब तक एक पत्ती पर अधिकतम 5 जातियां ही पाई गई हैं। इस बात से सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि ऐसे वनों से मात्र एक मेजबान पौधे का ह्रास कितनी अधिपर्णी जातियों को क्षति पहुँचा सकता है।

इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि अधिपर्णी नत्रजन-स्थिरीकरण की उष्णकटिबन्धीय वनों में नत्रजन की उपलब्धता में एक महत्वपूर्ण भूमिका है, और ऐसा अधिपर्णी हरितोद्भिदों द्वारा सृजित सूक्ष्म प्राकृतवास के कारण ही संभव है। अतः इन पौधों की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति से ऐसे वनों के स्वास्थ्य का सहज आकलन किया जा सकता है। इस दृष्टि से अधिपर्णी लिवरवर्ट्स की जातीय विविधता के साथ-साथ इनकी पारिस्थितिकी का अध्ययन अति आवश्यक है। आज जबकि आधुनिक विकास का सबसे अधिक प्रभाव एवं दबाव उष्णकटिबन्धीय सदाबहार वर्षा-वनों पर पड़ रहा है, अधिपर्णी लिवरवर्ट्स के संरक्षण हेतु इनकी जातीय विविधता एवं भौगोलिक विस्तार के शीघ्र अभिलेखन के साथ-साथ इनके मेजबान पौधों की सही पहचान तथा उनसे इनके संबंधों का ज्ञान भी अत्यंत आवश्यक हैं।

आभार : लेखक उन सभी वैज्ञानिकों के प्रति आभार व्यक्त करता है जिनके आंकड़ो को इस लेख में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में उद्धृत किया गया है।

———————

शीत मरुस्थल (भंगुर परितंत्र) की वनस्पति विविधता

सुनील कुमार श्रीवास्तव एवं देवेन्द्र कुमार सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

भारत को पादप विविधता के आधार पर लगभग बारह भौगोलिक क्षेत्रों में बांटा गया है। सभी क्षेत्रों की पादप भौगोलिकता के अनुकूल उनमे अपनी जैव विविधता देखने को मिलती है। पूर्वी हिमालय एवं पश्चिमी घाट भारत में जैव विविधता के प्रमुख केन्द्र हैं, इसके अलावा जैव विविधता बाहुल्य क्षेत्रों में पश्चिमी हिमालय में स्थित शीत मरुस्थल, जिसे भंगुर परितंत्र के अन्तर्गत चिन्हित किया गया है।

लद्दाख के शीत मरूस्थल

शीत मरुस्थल भारत में मुख्य हिमालय के ट्रान्स-हिमालय क्षेत्र, जो वर्षा प्रतिमुख (रेन शैडो) भाग में स्थित है। इनका विस्तार भारत के कुल क्षेत्रफल का दो प्रतिशत भूमि क्षेत्र में है। यह परितंत्र जम्मू कश्मीर के लद्दाख, हिमाचल प्रदेश के लाहौल-स्पिति एवं किन्नौर के बासपा व कालपा घाटी और उत्तराखण्ड राज्य स्थित उत्तरकाशी के निलंग एवं चमोली के माना दर्रा में मिलते हैं। भारत में इनका कुल क्षेत्रफल 1,09,990 वर्ग किलोमीटर है जो 30° 64'-37° 20' उत्तर तथा 72° 30'-80° 15' पूर्व में स्थित है। कुल क्षेत्रफल का लगभग 87,780 वर्ग किलोमीटर हिस्सा जम्मू कश्मीर में, हिमाचल प्रदेश में लगभग 21,210 वर्ग किलोमीटर तथा उत्तराखण्ड राज्य में 1000 वर्ग किलोमीटर में व्याप्त है।

हायोसियामस नाइजर

ये क्षेत्र लगभग 3500 मीटर की ऊँचाई से ऊपर विस्तृत है तथा यहां पायी जाने वाली वनस्पतियां शीत मरुस्थल में आंकी गयी हैं इनकी सबसे मुख्य विशेषता है कि यहां पर वृक्ष वनस्पतियों का स्वरूप लुप्त हो जाता है। झाड़ीनुमा व शाकीय पौधे ही यहां की धरोहर हैं। यहां वर्षा नहीं के बराबर होती है तथा तापमान में काफी उतार-चढ़ाव होता है। जाड़ों में द्रास जैसे स्थानों पर रात्रि का तापमान 0° से 40° नीचे तक चला जाता है। इन स्थानों पर विषम परिस्थितियों में जीवित रहने के लिए पौधे अपने में कुछ विशेष गुण अपना लेते हैं जो कि इन्हें विविधता प्रदान करते हैं, जैसे कि इनका समूह में रहना, पथरीली भूमि में लम्बी जड़ों का होना, कुशननुमा आकार, रोमयुक्त होना तथा मौसम

की बर्फीली हवाओं जैसे विषमताओं में इनमें कांटों का होना जैसे परिवर्तन देखने को मिलते हैं। जैसा कि इन पौधों का जीवन अल्पकालिक होता है अतः इनमें फूलों का रंग भी चटक होता है जिससे कीड़े-मकोड़े, पक्षी आदि इनकी ओर आकर्षित होते हैं।

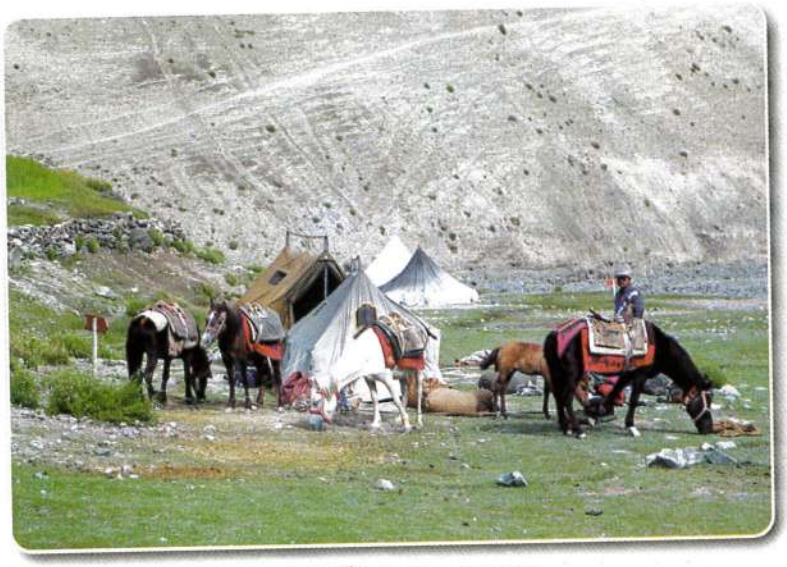

पादप सर्वेक्षण दल – लद्दाख

वनस्पतियों में जलवायु के प्रभाव से परिवर्तन

तापमान : जैसा कि यहां का तापमान महीनों तक 0° से. तक बने रहने से वातावरण की नमी बर्फ में बदल जाती है। इस पर सूर्य की तीव्र किरणों से मृदा एवं भूमि सतह का तापमान भी बढ़ जाता है जिसके प्रभाव से वनस्पतियों की पत्तियों का उगना, पुष्प कली का खिलना, फूल एवं फलों का निकलना निर्भर होता है। दिन का तापमान 15° से. तथा रात का न्यूनतम -10° से. होने के कारण इन स्थानों पर विशेष प्रकार की वनस्पतियां जैसे *कोरिडेलिस क्रैसीफोलिया, एस्ट्रागेलस केन्डोलियानस, ए. वेबियानस, सेक्सीफ्रेगा फ्लेज़िलेरिस, थाईलेकोस्पर्मम सिसपिटोसम, रियम इमोडी* आदि उगती हैं। भीषण ठंड एवं बर्फ गिरने से ये वनस्पतियां रोमयुक्त हो जाती हैं जो सूर्य की तीव्र किरणों से अपने को बचाती हैं जैसे *सोस्सूरिया ग्लेसियेलिस, थरमॉपसिस इन्फलाटा* एवं *वॉल्डीमिया टोमेन्टोसा* आदि हैं। न्यूनतम तापमान के चलते *एरिनेरिया प्राइमुला, सेक्सीफ्रेगा* प्रजातियों की वनस्पतियां आपस में सघन एवं चटाईनुमा आकार ले लेती हैं। एफिड्रा तथा एस्ट्रागेलस की प्रजातियां दिन के अधिक तापमान के कारण अपनी जड़ें मोटी, कठोर एवं गहरी कर लेती हैं जो इनका अस्तित्व बनाये रखने में सहायक हैं। कुल मिलाकर इन वनस्पतियों में परिवर्तित बाहरी लक्षणों के अतिरिक्त इन पौधों में कोशिकाओं का द्रव्य रात्रि के समय स्टार्च को ग्लूकोस में परिवर्तित करने से गाढ़ा हो जाता है। यह गाढ़ा कोशिका द्रव्य इन पौधों के हिमांक (Freezing Point) को कम कर देता है जिससे पौधे -15° से. -20° से. तक के तापमान में भी जीवित बने रहते हैं।

कैपेरिस स्पाइनोसा प्रभेद हिमालयन्सिस

जल : इन वनस्पतियों के उगने में जल बहुत आवश्यक है, किन्तु निरन्तर वर्फ के पिघलने से जल का कुछ ही भाग इन्हें मिल पाता है जिससे अति शुष्क अवस्था के चलते इनमें परिवर्तन हो जाते हैं जैसे पत्तियों का नुकीला होना, एक ही स्थान पर संग्रहित रहना, मोटी, कठोर एवं गहरी जडों का पथरीली दरारों तक पहुँचना आदि जैसे लक्षण *केरागाना वर्सिकलर, ऐस्ट्रागेलस वेबियानस तथा एकैन्थोलिमॉन लाइकोपोडाइडिस* में मिलते हैं। इसके

साइसर माइक्रोफ़िल्लम

अतिरिक्त कुछ रसदार वनस्पतियों के तने व पत्तियों में जल का संग्रहण देखने को मिलता है जैसे *सीडम, रोडियोला* तथा *बाइबर्सटीनिया* प्रजाति आदि।

कोहरा (मिस्ट) : अत्यधिक ऊँचाई वाले स्थानों पर अक्सर कुहरा बना रहता है जिसका यहां की वनस्पतियों पर महत्वपूर्ण प्रभाव देखा गया है। प्रकाश की तीव्र किरणों को कम करने में यह सहायक है। पौधों पर पड़ी जल की बूँदें जो नमी प्रदान करती हैं वे इन किरणों को विकिरण (Refraction) द्वारा सभी भागों तक समान रूप से पहुँचाती है।

प्रकाश : हवा के कम घनत्व के कारण सूर्य की किरणें अति तीव्रता से भूमि की सतह तक पहुँचती हैं। पौधों का रोमयुक्त एवं तनों व पत्तियों के लाल रंग होने से यह वनस्पतियां अपने को तीव्र विकिरण से बचाती हैं। शीत मरुस्थल वनस्पतियों के पुष्प आमतौर पर चटक रंग के होते हैं जो कीटों को आकर्षित करके इनके द्वारा परागण (Pollination) में सहायक होते हैं। इन वनस्पतियों में मुख्यतः *डेलफीनियम, एकोनिटम, पोटेन्टिला, सेक्सीफ्रेगा, प्राइमुला* एवं *जेन्शियाना* आदि हैं। इसके अतिरिक्त *रेननकुलस, एनीमोन* तथा *सेक्सीफ्रेगा* प्रजातियां आदि में प्यालेनुमा पुष्प होते हैं जो प्रकाश की ऊर्जा से पराग एवं बीज को विकसित करने में अति सहायक होते हैं।

वनस्पति विविधता

वनस्पतियों के विस्तार, प्ररूप व प्राकृतवास के आधार पर इनको दो श्रेणियों में रखा जा सकता है।

1. हिमाद्रि वनस्पतियां :

यह वनस्पतियां पथरीली घाटी की ढ़लानों में पायी जाती है जहां आमतौर पर बर्फ के पिघलने से इन स्थानों की भूमि सतह पर नमी बनी रहती है इन्हें हिमाद्रि वनस्पतियां कहते हैं। इनमें मुख्यतः *डेलफीनियम, एकोनिटम, पोटेन्टिला, एनीमोन, पॉलीगोनम, लियोन्टोपोडियम, टेरेक्सेकम, एस्टर, वायला, पोडोफिल्लम, हायोसियामस, हयूमुलस, पेडीकुलेरिस, एरिनेरिया, इम्पैशियन्स, जिरेनियम, जेन्सियाना, स्वर्शिया सेक्सीफ्रेगा* प्रजातियां आदि मिलती हैं।

2. विशिष्ट शीत मरुस्थल वनस्पतियां

विषम जलवायुयिक परिस्थितियों के चलते इन वनस्पतियों में विशेष परिवर्तन दिखते हैं जो इनका अस्तित्व बनाये रखने में सहायक होते हैं। ये वनस्पतियां *थाइलेकोस्पर्मम सिसपिटोसम, एकैन्थोलिमॉन लाइकोपोडियॉइडिस, कोरिडेलिस क्रेसीफोलिया, सोसूरिया नेफेलोइडिस, थरमॉपसिस इन्फ़लाटा, एफिड्रा जिरारडियाना, कैरागाना पिग्मिया, हिप्पोफ्री रेमनौइडिस, लान्सिया टिबेतिका, लैमियम रॉम्बौइडियम* तथा *अर्टिका हाइपरबोरिया* आदि।

जलीय वनस्पतियों में *लिम्नोसेला एक्वेटिका, हिप्पयूरिस वुलगेरिस, रेननकुलस ट्राइकोफिल्लस* आदि साधारणतया पायी जाती हैं। इन शीत मरुस्थलों में पायी जाने वाली कुछ प्रजातियां गरम मरुस्थल क्षेत्रों में भी पायी जाती हैं जैसे *स्टेलेरिया मिडिया, वर्बेस्कम थेप्सस, कैप्सेला बर्सा-पोस्टेरिस, एजीरेटम कोनीजाइडेस, पिगेनम हरमाला, फ्यूमेरिया इण्डिका, सिरेटोफिल्लम डिमर्सम, युट्रीकुलेरिया ऑरिया, पोटामोजीटॉन* की प्रजाति आदि।

वनस्पतिक विश्लेषण

पिछले तीन दशकों में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून परिमंडल के वैज्ञानिकों द्वारा किये गये वानस्पतिक दौरों में एकत्र किये गये पादप नमूनों एवं अन्य पदपालय में मिलने वाले नमूनों के आधार पर यहां पायी जाने वाली अनुमानित प्रजातियां, वंश व कुलों की संख्या का आंकलन किया गया है जो निम्न तालिका में प्रस्तुत है।

समूह	कुल	वंश	प्रजातियां
आवृतबीजी			
एकबीजपत्री	16	103	347
द्विबीजपत्री	74	285	867
अनावृतबीजी	2	4	8
	92	392	1222

स्थानिक प्रजातियां (अनुमानित प्रजातियां - 102)

एलियम लोरेटम - एलिएसी
एरिनेरिया स्ट्रेचियाई - केरियोफिल्लेसी
एस्ट्रागेलस ज़न्सकारन्सिस - फेबेसी
क्रिसटोलिया स्टिवार्टियाई - ब्रेसिकेसी
डेक्टाइलोराइजा हेटाजीरिया - ऑर्किडेसी
फेरूला जेस्कियाना - एपियेसी
पोआ लद्दाकेन्सिस - पोयेसी
साइलीन स्टीवार्टिआई - केरियोफिल्लेसी
वॉल्डीमिया स्टोलिक्जकी - एस्ट्रेसी
एनाफेलिस रॉयलियाना - एस्ट्रेसी
एस्ट्रागेलस मुनरोई - फेबेसी
बरबेरिस अल्सिना - बर्बेरिडेसी
कोरिडेलिस क्रेसीफोलिया - फ्यूमेरिएसी
ड्राबा कैशमिरिका - ब्रेसिकेसी
लान्सिया टिबेतिका - स्क्रोफुलेरियेसी
पोटेन्टिला थॉमसोनिआई - रोसेसी
थैलिक्ट्रम रूटीफोलियम - रेननकुलेसी

विरल व संकट्ग्रस्त प्रजातियां (अनुमानित प्रजातियां - 92)

एलियम स्ट्रेचिआई - एलिएसी
एस्ट्रागेलस कोलुटियोकार्पस - फेबेसी
क्रेमेनथोडियम डिकैस्री - एस्ट्रेसी
इरूमूरस हिमालाइकस - लिलिएसी
जिरेनियम स्यूडोएकोनिटीफोलियम - जिरेनिएसी
ऑकज़ीट्रापिस सिरीकोपिटैला - फेबेसी
पोआ लद्दाकेन्सिस - पोएसी
रोडियोला ब्रुनोनी - क्रैसुलेसी
स्टीलेरिया प्यूसिला - कैरियोफिल्लेसी
थर्माप्सिस इन्फ़लाटा - फेबेसी
वॉयला कुनावेरिन्सिस - वॉयलेसी
एस्ट्रागेलस आरनोल्डिआई - फेबेसी
एस्ट्रागेलस शेरिफी - फेबेसी
ड्राबा कैशमिरिका - ब्रेसिकैसी
गैलियम तिबेतिकम - रूबिएसी
कॉबरीसिया माइक्रैन्था - साइप्रेसी
पेडीकुलेरिस राइजैन्थिऑइडिस - स्क्रोफुलेरियेसी
प्राइमुला ऑबटयूसिफोलिया - प्राइमुलेसी
सॉसूरिया नेफेलोड्स - एस्ट्रेसी
थैलेप्सी कॉक्लियेरिऑइडिस - ब्रेसिकेसी
थाइलैकोस्पर्मम सिसपिटोसम - कैरियोफिल्लेसी

औषधीय पौधों की प्रजातियां

प्रजाति का नाम	पौधे का भाग	रोग
एकोनिटम हेटरोफ़िल्लम	जड़	डायरिया, ज्वर
एकोनिटम वायलेसियम	जड़	डायरिया, ग्रैस्ट्रिक
आर्टीमीसिया मेरिटिमा	पुष्प कली	एन्टीसेप्टिक, वर्मीफ्यूज
एरेबिस तिबीतिका	पूरा पौधा	ज्वर, कफ, रक्तशोधक
एस्ट्रागेलस कैन्डोलियानस	जड़	ब्रॉंकाइटिस, कफ, सर्दी
बरबेरिस अलसिना	जड़	आंतो के घाव, गुर्दे में पथरी
कैपेरिस स्पाइनोसा	जड़ व जड़ की छाल	तिल्ली के रोग, पेट के कीड़ो को नष्ट करने में
केरम कार्वी	बीज	याक बटर के साथ बीज के सेवन से हड्डी के दर्द से निदान, कार्मिनेटिव
चीनोपेडियम बॉट्रिस	पूरा पौधा	पेट, लिवर संबंधी रोग के निदान में, लैकज़ेटिव
कनवॉलवुलस आरवेन्सिस	जड़	पर्गेटिव
डैक्टाइलोराइजा हेटाजीरिया	कन्द	डायरिया, ज्वर एवं एफ्रोडिसिएक
ड्रेकोसिफैलम हेटरोफिल्लम	पूरा पौधा	यकृत रोग में
फेरूला जेस्कियाना	लेटेक्स	फोड़े, फुन्सी व घाव को ठीक करने में
जेन्शियाना कुरू	पूरा पौधा	ज्वर, रक्तशोधक, यकृत रोग में
हिप्पोफी रैमनॉडिस	फल	अस्थमा (दमा), त्वचा रोग में
हायोसियामस नाइजर	पत्ती, पुष्प कली	अस्थमा (दमा), नाड़ी रोग निदान
माइरिकेरिया जरमैनिका	पत्ती, तने की छाल	रक्तशोधक
पेपावर नूडिकॉल	पूरा पौधा	रक्तचाप,
फाइसोक्लाइना प्रियेल्टा	पूरा पौधा	पत्ती में विद्यमान हायोसियामीन व हामोसिन एल्केलौइड नाड़ी रोग के निदान में
पिक्रोराइज़ा कुरूवा	जड़ व तना	यकृत रोग के निदान में
रियम इमोडी	जड़	उदर रोग के निदान मे, परगेटिव व सिरदर्द
रोज़ा वेबियाना	फल	यकृत रोग व सिरदर्द के निदान में
सॉसूरिया कॉस्टस	जड़	कफ, अस्थमा (दमा) व हड्डी दर्द के निदान में
टेनासिटम ग्रेसाइल	पूरा पौधा	आंत एवं कान रोग निदान में
टेरेक्सेकम ऑफ़िशिनेल	जड़	रक्तशोधक, लेक्सेटिव, एन्टीपाइरेटिक
वॉल्डीमिया ग्लेब्रा	पूरा पौधा	पूर्ण सूखे पौधे को सुगंधित धूप हेतु प्रयोग

खाद्योपयोगी जंगली प्रजातियां

अनाज

एविना बारबेटा - पोएसी
एविना फ़ेटुआ - पोएसी
इलाइमस न्यूटेन्स - पोएसी
हॉरडियम तुरकिस्तानिकम - पोएसी
पेनिसिटम ओरियनटेल - पोएसी

फल

कैपेरिस स्पाइनोसा - कैपेरेसी
इलिएग्नस हॉरटेन्सिस - इलिएग्नेसी
एफिड्रा जिरारडियाना - एफिड्रेसी
रोज़ा वेबियाना - रोजेसी

सब्जी

एलियम स्ट्रेचियाई - पूरा पौधा सब्जी में प्रयोग होता है
एलियम टयूब्रोसम - कंद की सब्जी बनाते हैं
लेपीरोडिकलिस होलोस्टिऔइडिस - पूरा पौधा
एस्ट्रागेलस मल्टीसेप्स - पुष्प पंखुड़ी
फैगोपाइरम टेटारिकम - पत्तियों की सब्जी बनाकर खाते हैं।
पॉलीगोनम विवीपेरम - नयी पत्तियां सब्जी में प्रयोग की जाती है।
रयूमेक्स हेस्टेटस - तने के नये कल्ले
सीडम रोज़ियम - तनों व पत्तियों को पका कर खाते हैं।
टैरेक्सेकम ऑफिशिनेल - कंद व पत्ती की सलाद बना कर खायी जाती है।

दाल

साइसर माइक्रैन्थम - फेबेसी
लेथाइरस एफ़ाका - फेबेसी

चारा

एस्ट्रागेलस कॉनफर्टस - फेबेसी
एस्ट्रागेलस हॉफमिस्टिरी- फेबेसी
चीनोपोडियम एल्बम - चीनोपोडिएसी
हिप्पोफी रैमनॉइडिस - इलिएग्नेसी
लिन्डिलोफिया स्टाइलोसा - बोराजिनेसी
मेडिकागो फेलकेटा - फेबेसी
मेडिकागो मेडिका - फेबेसी
मेडिकागो सेटाइवा - फेबेसी
माइरिकेरिया जरमैनिका - टमेरिकेसी
ऑकजीट्रॉफ़िस कैशमिरिका - फेबेसी
रोडियोला हैटरोडेन्टा - क्रैसुलेसी

अन्य महत्वपूर्ण प्रजातियां

पौधे का नाम	पौधे का भाग	उपयोग
आरनीबिया युक्रोमा	जड़	रंग रोगन व सौन्दर्य प्रसाधन (Cosmetics)
बरबेरिस युलिसिना	पूरा पौधा व फल	रंग रोगन व झाड़ी के रूप में
आर्टिमीसिया ड्रैकुनकुलस	पूरा पौधा	कीड़े भगाने व छप्पर छाने में
कैम्पेनुला कैशमिरिका	पूरा पौधा	सजावटी (Ornamental)
कैरागाना वर्सीकलर	पूरा पौधा	जलौनी लकड़ी
कोलूटिया मल्टीफ्लोरा	फली	घर सजाने में

शीत मरूस्थल क्षेत्र की भौगोलिक एवं मौसम की परिस्थितियों के अनुरूप यहाँ की वनस्पतियों का एक विशेष प्ररूप है। इन प्रजातियों के संरक्षण के लिए इनके प्राकृतवास का अस्तित्व बना रहना अति आवश्यक है। इस दिशा में कार्यरत पादप संरक्षण सम्बन्धी सभी वैज्ञानिक संस्थानों को एक विशेष कार्यदल के रूप में योजनाबद्ध तरीके से इनका संरक्षण निम्न उद्देश्य के साथ किया जाना चाहिए।

1. शीत मरूस्थल परितंत्र की सभी वनस्पति प्रजातियों का ब्योरा।

2. स्थानीय लोगों द्वारा प्रयोग की जाने वाली प्रजातियों को पहचान कर उसके संरक्षण एवं रोपण की व्यवस्था।
3. शीत मरूस्थल परितंत्र क्षेत्रों में प्रायोगिक वनस्पति उद्यान की स्थापना कर वहाँ की स्थानीय प्रजातियों का रोपण।
4. संकटग्रस्त व लुप्तप्राय प्रजातियों को पहचान कर उनका उसी प्राकृतवास एवं क्षेत्रीय प्रायोगिक वनस्पति उद्यान में रोपण कर उनका संरक्षण।
5. वनस्पतिज्ञों (Botanist), शश्यवैज्ञानिकों (Agronomist), मानवविदों (Anthropologist), पादप रसायनविदों (Plant Chemist), को एक कार्यदल के रूप में संग्रहित शोध एवं अनुसंधानिक विचार कर इस मरूस्थल के मौलिक समाज व उनके अंर्तजातीय संबन्धों को समझ कर उसे और बेहतर बनाना।

रियम स्पीसिफ़ार्मे

———

अचानकमार–अमरकंटक जैवमंडल की जैव विविधता – एक परिचय

अच्युतानन्द शुक्ला एवं कृष्ण पाल सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

वर्तमान परिस्थिति में जहाँ एक ओर मानव जगत उपलब्धियों की नई मिसालें कायम कर रहा है और दिन-प्रतिदिन उन्नति के शिखर की तरफ अग्रसर हो रहा है वही दूसरी ओर वह अपने पर्यावरण से काफी दूर जा रहा है। नतीजा एक-एक कर लुप्त होती प्रजातियाँ, बढ़ता प्राकृतिक असन्तुलन, बिगड़ता परिवेशतन्त्र और अगर भविष्य की तरफ देखें तो खतरे में पड़ता मानव का अस्तित्व। हमारा वैज्ञानिक समाज हमेशा इस प्राकृतिक असन्तुलन को लेकर चिन्तित रहा है और इसे दूर करने के लिए सम्भव प्रयत्न भी कर रहा है।

इस अभियान के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए सम्पूर्ण विश्व के लगभग 102 देशों में कुल 482 जैवमण्डल स्थापित किए गए हैं और उनके संरक्षण और प्रबन्धन की व्यवस्ता भी की गयी है। भारत में भी 14 ऐसे क्षेत्र चुने गए हैं जिन्हे जैवमण्डल का दर्जा दिया गया है।

मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ़ राज्यों में फैला अचानकमार–अमरकंटक जैवमंडल भी इन्ही 14 जैवमंडलों में से एक है जिसे 30 मार्च 2005 को स्थापित किया गया था।

विक्रय के लिये रखी गई वानस्पतिक औषधियाँ।

अमरकंटक की दूसरी महत्ता यह है कि यह मध्यप्रदेश के प्रमुख तीर्थ स्थलों में से एक है। यहां तीन पवित्र नदियों नर्मदा, सोन और जोहिला का उद्गम स्थल है। नर्मदा नदी अमरकंटक के समीप जिस स्थान से निकलती है उसे नर्मदेश्वर मन्दिर कहा जाता है जहाँ एक पवित्र कुण्ड है। अमरकंटक से प्रारम्भ होकर खम्भात की खाड़ी में जाकर मिलने वाली नर्मदा नदी की कुल लम्बाई 1310 किलोमीटर है तथा इसके बेसिन का कुल क्षेत्रफल 98,800 वर्ग किलोमीटर है। नर्मदा बेसिन के कुल क्षेत्रफल का 86.9 प्रतिशत भाग मध्य प्रदेश में, 1.6 प्रतिशत महाराष्ट्र एवं 11.5 प्रतिशत गुजरात प्रान्तो में आता है। नर्मदा नदी अपने उद्गम स्थान से लगभग 83 किलोमीटर तक विन्ध्याचल और सतपुड़ा की पहाड़ियों के मध्य से होकर पश्चिम दिशा में बहती है। इसी भाग में उद्गम स्थल से लगभग 8 किलोमीटर की दूरी पर कपिलधारा जलप्रपात है जहाँ यह अपने तल से लगभग 25 मीटर नीचे गिरती है। इसी प्रकार सोन नदी भी अमरकंटक की ही पहाड़ियों से सोन मुडा नामक स्थान से निकलती है। जोहिला नदी भी अमरकंटक से निकलती है जो आगे जाकर सोन नदी में मिल जाती हैं। जिस स्थान से यह निकलती है उस पवित्र स्थान को जालेश्वर धाम के नाम से जाना जाता है।

अमरकंटक क्षेत्र के कुछ प्रमुख दर्शनीय स्थलः

शाल वन

माई की बगिया

अमरकंटक मंदिर से लगभग 1 किलो मीटर पूर्व दिशा में घने शाल के वनों के मध्य नर्मदे के नाम से एक बगीचा है जिसे माई की बगिया या चरणोदक कुण्ड के नाम से जाना जाता है। शैलानियों के लिए यह आकर्षक स्थल है।

सोन मुड़ा जल प्रपात

मंदिर से लगभग डेढ़ किलोमीटर पूर्व दिशा की ओर सोण भद्र (सौन) नदी का उद्गम है। घने जंगलों के बीच एक छोटा कुण्ड है इसी कुण्ड से सोनभद्र की धारा पर्वत से नीचे गिरती है जो आगे चलकर जल प्रपात का आकार ग्रहण कर लेती है। इस स्थान को सनराइज प्वाईट के नाम से भी जाना जाता है।

भृगु कमण्डल

यह नर्मदा कुण्ड से दक्षिण दिशा में लगभग चार किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इस स्थान के बारे में यह कहा जाता है कि श्री भृगु ऋषि ने यहाँ कठिन तपस्या की थी। जिसके फलस्वरूप उनके कमण्डल से एक छोटी नदी निकली जिसे लोग करगंगा के नाम से जानते हैं। इस पवित्र स्थान में कमण्डल की आकृति की भांति नदी की धार भी दिखाई देती है जो बाद में नर्मदा नदी में जाकर मिल जाती है।

नर्मदा उद्गम स्थल।

कबीर चबूतरा

नर्मदा कुण्ड से लगभग पांच किलोमीटर दक्षिण की ओर कबीर चबूतरा नामक स्थान है। पुरानी मान्यता के अनुसार देश के महान संत कबीरदास जी ने यहाँ आकर कठोर तप किया और सिद्धी प्राप्त की जिसके कारण यह कबीर पंथियों के लिए पवित्र स्थान है।

श्री जालेश्वर महादेव मंदिर

जुहिला नदी का उद्गम स्थल एवं श्री जलेश्वर महादेव मंदिर अमरकंटक में उत्तर दिशा की ओर लगभग 9 किलो मीटर की दूरी पर स्थित है। यहाँ पर शंकर जी का बहुत प्राचीन एवं प्रसिद्ध मंदिर है।

कपिल धारा

नर्मदा कुण्ड से लगभग 8 किलोमीटर उत्तर पश्चिम दिशा में नर्मदा नदी के उत्तर किनारे पर कपिल धारा नामक नर्मदा जी का प्रसिद्ध जलप्रपात है जो पहाड़ से लगभग 100 फीट नीचे गिरता है। शास्त्रों के अनुसार इस स्थान पर श्री कपिल ऋषि का निवास था। जन श्रुतियों के अनुसार कपिल मुनि ने नर्मदा जी की धारा को रोकने का प्रयत्न किया था जिसके फलस्वरूप श्री नर्मदा जी की चौड़ाई बढकर यहाँ लगभग 20 फीट हो गई थी। इसी के पास श्रीकपिलेश्वर महादेव जी का मंदिर भी है।

कपिल धारा जल प्रपात।

दुर्गा धारा

अमरकंटक से गौरेला जाने वाले पुराने 16 किलोमीटर वाले मार्ग में लगभग 6 कि.मी. चलने पर यह जल प्रपात पड़ता है। पर्वत के ऊपर से घनी झाड़ियों से गिरती हुई जल धारा सामने अनेक सुन्दर वृक्षों के भीतर प्रवेश करती है। आगे चलकर यह मनोरम जल प्रपात अमरनाला के नाम से प्रसिद्ध है, जिसे स्थानीय भाषा में ''आमानाला'' भी कहते हैं।

सीमा क्षेत्र

अचानकमार–अमरकंटक जैवमंडल 3835.51 वर्ग किमी क्षेत्र में फैला हुआ है जिसके अन्तर्गत 10 वन क्षेत्र आते हैं इनमें से 1224.98 वर्ग किमी क्षेत्र मध्यप्रदेश एवं शेष 2610.53 वर्ग किमी. क्षेत्र छत्तीसगढ़ राज्यों के अन्तर्गत पड़ता है।

कोर और बफर जोन

शाल वृक्ष क तन पर उगत शवाक।

वर्तमान में इस जैवमंडल रिजर्व को कोर एवं बफर जोनों में बॉटा गया है। 551.15 वर्ग किमी - क्षेत्र कोर जोन, अचानकमार अभयारण्य के अन्तर्गत आता है जो छत्तीसगढ़ राज्य में स्थित है। 3283.96 वर्ग किमी बफर जोन छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश दोनो राज्यो में फैला हुआ है।

वन

रिजर्व के 55 प्रतिशत क्षेत्र में वन पाये जाते हैं। अचानकमार–अमरकंटक जैवमंडल समशीतोष्ण पर्णपाती वन के अन्तर्गत आता है और इसे उत्तरी

उष्णकटिबंधीय पर्णपाती, आर्द्र पर्णपाती और दक्षिणी शुष्क मिश्रित पर्णपाती वनों में वर्गीकृत किया गया है।

उत्तरी उष्ण कटिबन्धीय वन

ये बहुत घने वन होते हैं यद्यपि इन वनों की उपरी सतह के वृक्ष पर्णपाती होते हैं परन्तु इनमें पतझड़ बहुत कम समय तक होता है और सभी वृक्षों की पत्तियाँ एक साथ नही झड़ती। इसके कारण सबसे उपर की सतह में थोड़ी हरियाली हमेशा बनी रहती है। इनमें बहुत सी जातियों की लतायें, पर्णांग और आर्किड आदि पाये जाते हैं। इनमें पाये जाने वाले कुछ वृक्ष है जैसे टर्मिनेलिया एलाटा, शोरिया रोबस्टा, आर्टोर्कापस लकूचा, माइकेलिया चम्पाका इत्यादि।

दक्षिणी शुष्क मिश्रित पर्णपाती वन

मिश्रित पर्णपाती वन

इन वनों के मुख्य बड़े व छोटे वृक्ष और झाड़ियाँ लगभग पर्णपाती होती है। ग्रीष्मकाल में ये वन सूखेपन का अहसास कराते हैं। लताये बहुत कम होती है उपरिरोही ऑर्किड और पर्णाग आदि तो नहीं के बराबर होते हैं। इनमें पाये जाने वाले कुछ मुख्य वृक्ष इस प्रकार है-टेरीकार्पस मार्सूपियम, सोयमिडा फेब्रीफ्यूगा, लानिया कौरोमण्डेलिका, डायोस्पाइरॉस मिलैनोजाइलान, ब्यूटिया मोनोर्स्पमा, लेजरस्ट्रोमिया पार्वीफ्लोरा, एमब्लिका ऑफिसिनेलिस सेर्राटा, ईगल मार्मेलॉस, स्टरकूलिया की जातियाँ, अल्बीजिया की जातियाँ, बोहिनिया की जातियां, एवं अकेशिया की जातियां इत्यादि।

वनस्पति विविधता

रिजर्व में विभिन्न प्रकार की वनस्पतियाँ पायी जाती हैं जिनमें अनावृतबीजी, आवृतबीजी, शैवाक, हरितोद्भिद् और पर्णांग की जातियां मुख्य हैं। आवृतबीजी की 1011 जातियां, 134 कुल एवं 571 वंशो के अन्तर्गत पाई जाती हैं। इनमें से 112 जातियों के साथ पोएसी सबसे बड़ा कुल है इसके उपरान्त फेबेसी में 76, एस्टेरेसी में 72, साइप्रेसी में 40, एकैन्थेसी में 36, लैमिएसी में 31, रूबिएसी में 25, मालवेसी में 24, सीजलपीनिएसी में 22 एवं स्कोफूलेरिएसी में 21 जातियां पाई जाती हैं।

इसी प्रकार पर्णांग की 35 जातियां यहाँ से दर्ज की गयी हैं जिसमें कई जैसे आफियोग्लासम रेटिकुलेटम, लाइगोडियम फ्लेक्सूओसम, एडियन्टम फिलिपेन्स, टेक्टेरिया कॉडण्टा जातियाँ अधिक औषधीय महत्व रखती है।

कवक की 43 जातियाँ 36 वंशो के अन्तर्गत पाई जाती है। इसी प्रकार हरितोद्भिदों की 38 जातियाँ इस जैवमण्डल में पाई जाती हैं।

यहाँ शैवाक की 86 जातियाँ 24 वंशो के अन्तर्गत पायी जाती है। कपिल एवं शम्भू धाराओं के पास इनकी जातियाँ बहुलता से उगती हैं। अनेक जातियाँ शाल वृक्षों के तनों पर उगती है। इसके अतिरिक्त सुन्दर फूलों वाले पीनसिफ (आर्किड) की भी 19 जातियाँ इस जैवमण्डल की शोभा बढ़ाती हैं।

ड्रोसेरा, जो कि कीटभक्षी वंश का पौधा है, नर्मदा के उद्गम स्थान के समीप में पाया जाता है और वह लगभग एक वर्ग किमी. क्षेत्र में फैला है इसलिए इस स्थान का नाम ड्रोसेरा पठार रखा गया है।

चित्रक – एक औषधीय पौधा

जैवमण्डल के दुर्लभ औषधीय पौधे

यह जैवमण्डल औषधीय पौधों से परिपूर्ण है। जैवमण्डल में कुछ दुर्लभ औषधीय पौधे भी प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। लेकिन स्थानीय निवासियों और व्यापारियों द्वारा धन अर्जित करने के लिए इनका बुरी तरह दोहन किया जा रहा है जिसके कारण इनकी संख्या दिनों दिन घटती जा रही है। यहाँ पाये जाने वाले कुछ खास औषधीय पौधे इस प्रकार हैं जैसे टीनोस्पोरा कार्डिफोलिया, कैपेरिस जेलेनिका, एब्रोमा अगस्टा, ट्रिबुलस टेरेसट्रिस, टर्मीनेलिया अर्जुना, सेन्टेला एशियाटिका, प्लमबेगो जेलेनिका, राउल्फिया सर्पेन्टाइना, कैलोट्रोपिस प्रोसेरा, कार्डिया डाइकोटोमा, इवालबुलस एलसेन्चाइडस, ओरोजाइलम इन्डिकम, एडाटोडा जेलेनिका वाइटेक्स निगुन्डो, हेडेकियम कोरोनेरियम, करक्यूमा अमाडा, जिन्जीबर रोजियम, कास्टस स्पीसियोसस, करक्यूलिगो आरकिवाइडिस, एलो वेरा, क्लोरोफाइटम ट्यूबरोसम, ग्लोरिओसा सुपरबा, एकोरस कैलेमस इत्यादि।

जीव-जन्तु

इस जैवमण्डल में अनेक जीव जन्तुओ की जातियां भी पायी जाती है। यहाँ कुल 436 जातियों की पहचान की गयी है जो इस प्रकार हैं।

अकेशरूकी

44 जातियां (बीटस), 48 जातियाँ (बटरफ्लाई), 46 जातियां (मॉथ), 43 जातियां (डिप्टेरा), * जातियाँ (डिप्टेरा), 14 जातिया (आर्थोप्टेरा), 27 जातियाँ (ओडोनेटा), 31 जातियाँ (इमीप्टेरा), 05 जातियाँ (डरमप्टेरा), 05 जातियाँ (न्युरोप्टेरा), 02 जातियाँ (मेरीएवोडा), 02 जातियाँ (स्कोरपिओनिडा),

कशेरूकी

23 जातियाँ (मैमेल), 93 जातियाँ (पक्षी), 20 जातियां (रेप्टीलीया), 09 जातियाँ (एमफीबियन), 24 जातियां (मछली)।

इस विषय में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इनमें से 50 जातियाँ संकटापन्न हैं जिनका संरक्षण इस जैवमण्डल में किया जा रहा है।

सामाजिक–आर्थिक स्थिति

रिजर्व के अन्दर कुल 416 गांव और 2 शहरी क्षेत्र हैं। कुल गांवों में से 349 गांव हैं जबकि शेष 67 गांवों को वन गांवों के रूप में वर्गीकृत किया गया है। रिजर्व क्षेत्र की कुल जनसंख्या वर्तमान में लगभग 4 लाख होने का अनुमान है जिनमें से 54% प्रतिशत अनुसूचित जनजातियों की हैं और 7 प्रतिशत अनुसूचित जातियों की। जनजाति स्वरूप होने

के कारण, यहां का लिंगानुपात राष्ट्रीय औसत की अपेक्षा कहीं बेहतर है। प्रति हजार पुरुषों में महिलाओं की संख्या 976 हैं। यहां वर्षा पर आधारित खेती की आदिकालीन शैली ही अपनाई जाती हैं जिससे निर्वाह स्तर की ही खेती हो पाती है जबकि अवसंरचना और सिंचाई का विशेष तौर पर अभाव है। धान मुख्य फसल है। पशुपालन सहायक व्यवसाय हैं और पशु अधिकतर वनों में ही चराये जाते हैं यद्यपि इस क्षेत्र में कुल जनसंख्या की तुलना में पशुधन की संख्या का अनुपात अच्छा है, पर इसकी गुणवत्ता खराब हैं। वर्षा और जाड़े के दिनोंमें पशुओं को खिलाने के संसाधन ठीक-ठाक मिल जाते है, किन्तु गर्मी के मौसम में बड़ी समस्या पैदा हो जाती हैं। इसलिए दूध उत्पादन भी कम हो जाता है। पशुओं की उच्च मुत्युदर तथा दूध की कमी होना जनजातियों के सामने एक बड़ी समस्या है और इसलिए लोगों के कर्ज में रहने के मुख्य कारणों में से एक है।

बैगा अनुसूचित जनजाति महिला अपने प्राकृतिक वेशभूषा में।

जैवमंडल रिजर्व को खतरा

वनभूमि का ग्रामीणों द्वारा अतिक्रमण, मानव पशु संघर्ष, जंगल की आग, जल की कमी, चारागाह (दहियान), बांसो की अवैध कटाई आदि प्रमुख खतरे हैं।

संरक्षण

जैव विविधता किसी देश या प्रदेश की अत्यन्त बहुमूल्य प्राकृतिक संपदा है तथा ये अनादिकाल से मानव से अविच्छिन्न रूप से जूड़े रहे हैं।

किसी भी क्षेत्र की वन संपदा का ज्ञान उस जगह की जैवविविधता के संरक्षण हेतु अत्यावश्यक हैं। प्रस्तुत अध्ययन में यह प्रयास किया गया है कि यहाँ पाए जाने वाले प्रत्येक पौधें की वर्तमान स्थिति एवं सांख्यिकी का पूरा अध्ययन किया जाय जिससे उनके संरक्षण हेतु प्रयासों में आसानी हो। जहां तक सम्भव हो सके जातियों का उनके स्थान पर ही संरक्षण करना चाहिए। विशेष परिस्थितियों में प्रायोगिक उद्यानों में संरक्षण करना चाहिए। इन्हे वनस्पति उद्यानों में प्रायोगिक उद्यानों में संरक्षण करना चाहिए इन्हे वनस्पति उद्यानों में पाल पोषकर दुबारा प्राकृतिक वास मे लगाना चाहिए। इन प्रयासों से ही वनस्पति का अधिकाधिक संरक्षण संभव है। हॉलाकि इस जैवमंडल को एक संरक्षित क्षेत्र घोषित करना भी सरकार का एक सराहनीय कदम है परन्तु जैवमंडल में स्थानीय निवासियों का बढ़ता अतिक्रमण तथा प्रत्येक वर्ष आग लगने से यहाँ की वानस्पतिक संपदा के लिए सदैव खतरा बना रहता है। अतः यह आवश्यक है कि इन जैव अजैव खतरों से बचाने के हर संभव प्रयास किए जाएँ ताकि इस जैवमंडल की वानस्पतिक संपदा यू ही बनी रहे।

अरूणाचल प्रदेश के कुछ अनूठे खाद्य एवं पेय

रितेश कुमार चौधरी एवं रमेश चन्द्र श्रीवास्तव
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इटानगर

अरूणाचल प्रदेश, न सिर्फ अपनी दुरूह एवं अनूठी भौगोलिक संरचना के लिए जाना जाता है अपितु वनस्पति विविधता के दृष्टिकोण से भी विश्वविख्यात है। यहाँ पायी जानेवाली वनस्पतियों की तरह ही यहाँ निवास करनेवाली विभिन्न नृ-जातियों में भी भरपूर विविधता देखी जा सकती है। इनके रहन-सहन, पहनावे एवं खान-पान के आधार पर हम सहज ही इन्हें वर्गीकृत कर सकते हैं। अपनी आवश्यक-आवश्यकताओं की पूर्ति करने से परे अपने खान-पान को अधिक बेहतर बनाने हेतु यह नृ-जातियाँ प्रकृति-प्रदत्त वनस्पतिक भंडार का सद्उपयोग अत्यंत ही अनूठे ढंग से करती हैं जो काफी हद तक विज्ञानसम्मत भी होता है। ये विशिष्ट खाद्य न केवल पोषकता से परिपूर्ण होते हैं बल्कि कई औषधीय गुणों से भी युक्त होते हैं। शायद यही वजह है कि इन जनजातियों में कुपोषण के मामले कम देखे जाते हैं। इनके द्वारा व्यवहृत कई महत्वपूर्ण खाद्य एवं औषधीय पौधे आज भी संपूर्ण विश्व के लिए अल्पज्ञात हैं। कुछ ऐसे ही महत्वपूर्ण किंतु अल्पज्ञात खाद्य एवं पेय पदार्थों की चर्चा यहाँ की जा रही है जो अरूणाचल प्रदेश की विभिन्न नृ-जातियों के द्वारा व्यवहृत किये जाते हैं।

बम्बू टेंगा :

मुख्यतः 'डेन्ड्रोकैलेमस हैमिल्टोनाई' नामक बाँस के नवजात प्ररोहों से प्राप्त यह खाद्य अपने विशिष्ट खट्टे स्वाद के कारण अरूणाचल प्रदेश के लगभग सभी भागों में अत्यंत ही लोकप्रिय है तथा बड़े ही चाव से खाया जाता है। सब्जी तथा अचार बनाने के अतिरिक्त इनका उपयोग माँस को अधिक स्वादिष्ट बनाने हेतु भी किया जाता है। विभिन्न प्रकार के प्रोटीन, अमीनो अम्ल, विटामिन (थायमीन एवं राइनोफ्लेविन) वसा, लैक्टिक तथा साइट्रिक अम्लों से युक्त 'बम्बू टेंगा' पौष्टिकता के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण होने के साथ ही कई औषधीय गुणों से भी युक्त हैं।

ऊ - टेंगा :

डिलेनिएसी परिवार के वृक्ष 'डिलेनिया इंडिका ब्लैंको' के फलों को यहाँ 'ऊ-टेंगा' के नाम से जाना जाता है। इसके फल जो स्वाद में खट्टे होते हैं, अचार निर्माण हेतु प्रयुक्त होते हैं। ये अचार भी समूचे अरूणचल प्रदेश में अत्यंत चाव से खाए जाते हैं। इनकी प्रकृति अत्यंत ही सुपाच्य होती है तथा बुखार एवं खाँसी के शमन में अत्यंत लाभकारी हैं।

ताप्यो :

यह अरूणाचल प्रदेश की अपातानी जनजाति के द्वारा तैयार एक प्रकार का प्राकृतिक सोडा है। ''अपातानियों का काला नामक'' के नाम से प्रसिद्ध ताप्यो 'ब्लेकनीडियम मेलानोपस' नामक फर्न तथा 'पॉलीगोनम हाइड्रोपाइपर' के पौधों को जलाकर उसकी राख द्वारा तैयार किया जाता है। क्षारीय गुणों से युक्त 'ताप्यो' साधारणतः यहाँ के लोगों के द्वारा एक विशिष्ट पेय 'अपोंग' के साथ चटनी के रूप में प्रयुक्त होता है। इस जनजाति के मतानुसार यह न सिर्फ भूख बढ़ाने में सहायकहै अपितु इसके साथ वे अगर अधिक मात्रा में भी 'अपोंग' का सेवन कर लें तो यह उनके लिए हानिकारक नहीं होती। अगर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी देखा जाए तो 'ताप्यो' पाचन तंत्र को एक क्षारीय माध्यम प्रदान करती है जो अपोंग द्वारा उत्पन्न अम्लीयता को नियंत्रित करती हैं। सिर्फ इतना ही नहीं, इसमें उपस्थित सोडियम, पोटैशियम एवं आयोडिन की मात्रा अतिसार, अम्लीयता एवं धेंधा जैसे रोगों से बचाने में भी उपयोगी हैं। इसलिए अरूणाचल प्रदेश की अपातानी जनजाति में धेंधा रोगियों की संख्या नगण्य हैं।

रायिल चटनी :

एक विशिष्ट सुगंध एवं तीक्ष्ण स्वाद से युक्त यह चटनी अपातानी जनजाति के अलावा अन्य जनजातियों की भी पहली पसंद हैं। लाउरेसी कुल के 'लिट्सिया कयूबेबा' नामक वृक्ष के फलों से तैयार यह चटनी यहाँ मिर्च के साथ मिलाकर खाई जाती है। यहाँ के लोगों के मतानुसार यह चटनी सिरदर्द, हिस्टीरिया, लकवा, स्मृति दोष आदि रोगों को दूर करने की एक महत्वपूर्ण औषधि भी है। वैज्ञानिक प्रयोगों से भी यह सिद्ध हुआ है कि इन फलों में उपस्थित कैम्फीन, लियोनीन, टर्पीनॉल तथा सैफ्रॉल जैसे तेल कई औषधीय गुणों से युक्त हैं।

अपोंग :

यह अरूणाचल प्रदेश के निवासियों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन से जुड़ा हुआ एक अत्यंत ही महत्वपूर्ण पेय है जो न केवल विभिन्न उत्सवों में अपितु कई धार्मिक अनुष्ठानों में भी यहाँ के लोगों के द्वारा प्रयुक्त होता है। किण्वित किए हुए चावल से तैयार यह एक स्फूर्तिदायक पेय है जिसका सेवन अरूणाचल प्रदेश की लगभग सभी जनजातियों के द्वारा किया जाता है। इसे तैयार करने की विधियों में विभिन्न जनजातियों के अनुसार थोड़ी विभिन्नता देखी जा सकती है। चावल के अलावा पोएसी कुल के पौधे 'इल्यूसीन कोराकान' जिसे स्थानीय भाषा में 'मरूआ' कहा जाता है, का प्रयोग भी एक अलग प्रकार के अपोंग निर्माण में किया जाता है। सीमित मात्रा में इसका सेवन स्वास्थ्यवर्धक है परंतु इसकी अधिकता नशा उत्पन्न करती है एवं स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकती है।

इस प्रकार अरूणाचल प्रदेश के निवासी विभिन्न वनस्पतियों का सद्उपयोग विभिन्न स्वरूपों में करते हैं। ये अनूठे खाद्य न सिर्फ पोषकता से परिपूर्ण हैं अपितु विभिन्न औषधीय गुणों से भी युक्त हैं। 'बम्बू टेंगा' आज चीन तथा ताइवान जैसे देशों के लिए विदेशी मुद्रार्जन का अच्छा स्रोत बन गया है तथा यह खाद्य औद्योगिक संभावनाओं से भी भरपूर है। इनका समुचित बाजारीकरण यहाँ के निवासियों के आय का अच्छा स्रोत बन सकता है। आज आवश्यकता इस बात की है कि इन अनूठे खाद्यों की जानकारी समूचे देश तक पहुँचे।मैसूर स्थित सी. आई. एफ. टी. आर. आई. (सिफ्ट्री) जैसे कुछ संस्थाएँ आगे आएँ जो इन खाद्यों का परिष्करण एवं परिमार्जन कर इन्हें पूर्ण रूप से विकसित करें ताकि इनका समुचित दोहन कर अरूणाचल प्रदेश जैसी जगहों पर औद्योगिक संभावनाएँ मजबूत की जाएँ तथा इस क्षेत्र की उन्नति का मार्ग प्रशस्त हो।

पर्यावरण सुरक्षा का व्रत हमको लेना होगा ।
स्वस्थ सुरक्षित हरा भरा जग कलको देना होगा ।
पेड़ जमीं के देवता लक्ष्मी के हैं दूत ।
बेटा बेटी की तरह इनसे करो सलूक ।।

वैदिक वाङ्मय में वनस्पतियों की प्रासंगिकता

रमेश चन्द्र श्रीवास्तव, अर्चना शर्मा* एवं के. के. सिंह*
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इटानगर
*राजकीय महाविद्यालय संस्कृत विभाग, इलाहाबाद

''पर्यावरण''–आज के समाज का एक बहुचर्चित शब्द जिसे हम में से अधिकांश नवीन चेतना के रूप में जानते हैं। जबकि यह चेतना नवीन न हो कर प्राचीन है। प्राचीन काल में यही पर्यावरण प्रकृति और वातावरण इन दो अलग–अलग नामों से जाना जाता था। आज इसी प्रकृति और वातावरण शब्द का सम्मिलित और बहुप्रख्यात रूप 'पर्यावरण' है जो अपनी व्यापकता में सम्पूर्ण वातावरण और परिवेश को आत्मसात किये हुए है।

जब कोई वस्तु या स्थिति क्षय की ओर बढ़ती है तो वस्तु-विवेक और जन-चेतना की एक लहर चलती है। जन चेतना की यह लहर आज हममें जागी है, जिसे हम पर्यावरण चेतना के नाम से जानते हैं।

पर्यावरण संरक्षण में मुख्य रूप से हमारे प्राकृतिक संसाधन आते हैं जो धीरे-धीरे हमारे अज्ञान और उपयोग के कारण दुर्लभ होते जा रहे हैं अथवा जिन्हें हम अपने क्रिया-कलापों से दूषित करते जा रहे हैं। प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण की यह प्रक्रिया यहाँ तक पहुँच चुकी है कि अब उनका संरक्षण मानव अस्तित्व के लिये आवश्यक हो गया है।

पर्यावरण के अर्न्तगत वायुमण्डल, स्थलमण्डल और जलमण्डल के सभी भौतिक तथा रसायनिक तत्वों को शामिल किया गया है। इस प्रकार पर्यावरण भौतिक एवं जैविक दो तत्वों से मिलकर बना है। जैविक पर्यावरण में समस्त जीव जगत् और सभी प्रकार के पौधे सम्मिलित हैं। भौतिक पर्यावरण में मृदा, जल, वायु प्रकाश और ताप परिगणित होते हैं।

भौतिक पर्यावरण की इन वस्तुओं को प्राचीन काल में पंचतत्व–पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश रूप में पूजित किया गया है ताकि इन प्राकृतिक सम्पदाओं के प्रति हमारे मन एवं मस्तिष्क में श्रद्धा का भाव हो जिससे हम इन्हें क्षति पहुँचाने का प्रयास न करें और प्रकृति में संतुलन बना रहे। बढ़ते औद्योगिकीकरण व जनसंख्या विस्फोट ने इन पंचतत्वों को दूषित किया है। इस प्रदूषण को रोकने का प्रयास करना होगा। प्रदूषण रोकने के लिए उद्योग-धन्धों को बन्द नहीं किया जा सकता और न ही युग के मशीनीकरण को रोका जा सकता है बल्कि इसके लिए हमें उद्योग-धन्धे स्थापित करते समय ऐसे उपाय करने पड़ेंगे जो प्रदूषण को रोकें। इसके लिए भौतिक प्रयासों के साथ-साथ जन-मानस में उस मानसिक चेतना का विकास करना होगा जो मानव को स्वयमेव इस अपराध से रोके। मानव मन में प्रकृति एवं पर्यावरण के प्रति प्रेम एवं श्रद्धा के भाव का विकास करना होगा। इस कार्य में प्राचीन संस्कृत वाङ्मय का ज्ञान अत्यन्त सहायक सिद्ध होगा जिसका अवलोकन करने पर हम पाते हैं कि हमारे ऋषियों को प्राकृतिक उपादानों की महत्ता ज्ञात थी उन्होने इनमें देवभाव के दर्शन किये।

वैदिक संस्कृत वाङ्मय में पृथ्वी, जल, वायु, आकाश और वनस्पति इत्यादि के महत्व को उल्लेखित करने वाले अनेक मंत्र संग्रहित है। इन विषयों से जुड़े वेदों में जो संदर्भ प्राप्त होते हैं उनका संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि यद्यपि वैदिक संस्कृत वाङ्मय अत्यन्त विशाल है किन्तु यहाँ वैदिक शब्द से केवल चारों वेदों का ही अर्थ ग्रहण किया गया है। साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि यहाँ वनस्पति शब्द का तात्पर्य वृक्षों एवं औषधीय पौधों से है।

पंचतत्वों में अग्रणी पृथ्वी को वेदों ने माता के रूप में पूजित किया है। पृथ्वी की महत्वा को स्वीकार करते हुए ऋग्वेद कहता है कि–''द्या वा त्राजाय पृथिवी अमृधे, पिता माता मधुवाचाः सुहस्ता** यहाँ द्यौ को पिता एवं पृथ्वी को

माता रूप में स्वीकार किया गया है। ''द्यावापृथिवी'' में सूर्यादि लोक, अन्तरिक्ष और पृथ्वी इन सबका समावेश किया गया है। यजुर्वेद भी पृथ्वी को माता एवं द्यौ को पिता के रूप में स्वीकार करता है–''पृथिवी माता द्यौष्पिता'', ''एवमेव अथर्ववेद माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः** कह कर पृथ्वी और मनुष्य में माता-पुत्र सम्बन्ध को स्पष्टतया स्वीकार करता है और यह उद्घोष करता है कि धर्म से धारण की गयी शुभ, कल्याणकारी मातृभूमि की हम सर्वदा सेवा करें–

ध्रुवां भूमि पूथिवी धर्मणा धृता।
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा।।

वेदों में भूमि के संरक्षण के लिए वृक्षों को काटना निषेध है क्योंकि वृक्षों को काटने से भूमि का क्षरण होता है। वृक्षारोपण के कार्य को अखण्ड पुण्य देने वाला माना गया है। वातावरण की शुद्धि के लिए वैदिक काल में यज्ञों का विधान था। यज्ञ का औषधीय धूम वातावरण को शुद्ध करता था।

वेदों में पर्यावरण के महत्वपूर्ण घटक जल का भी उल्लेख मिलता है। वेदों में नदियों को पूज्यभाव से वर्णित किया गया है और जल में मधुरता एवं स्वच्छता को विशेष महत्व दिया गया है। जल को जीवनामृत के रूप में वर्णित करते हुए ऋग्वेद लिखता है कि – ''अप्सुवन्तरमृतम् अप्सु भेषजम्।** यहाँ जल में अमृतत्व एवं विश्व के समस्त औषधीय गुणों का होना स्वीकार किया गया है– ''अप्सु अन्तः विश्वनि भेषजा।'' एवं मानव जीवन के लिए उस प्राकृतिक स्रोत का महत्व दृष्टिगत रखते हुए वेदों ने ''माऽपो हिंसी** कह कर उसे दूषित करने का निषेध किया है।

ऋग्वेद में तेज के रूप में सूर्य तथा अग्नि को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है अग्नि को प्रतिपादित करने वाले लगभग 200 सूक्त वेदों में मिलते हैं। सूर्य की वेदों में सवितृ के रूप में उपासना की गयी है और उसे पर्यावरण को शुद्ध करने वाला माना गया है। ऋग्वेद में अग्नि के महत्व को स्वीकार करते हुए उसे देवताओं का पुत्र होते हुए भी पिता की संज्ञा दी गयी है–

''देवानां पुत्रः सन् पिता भुवः।**

वेदों में उल्लेख आता है कि यदि अग्नि को जलाकर उसमें उत्तम, आरोग्यदायक पदार्थो की हवि दी जाय तो उससे वायु में स्थित रोगाणु जल जाते हैं। और वायु शुद्ध हो कर निरोगता फैलाती है। इसीलिए अग्नि को पावक (सर्वत्र पवित्र करने वाला) एवं रक्षसः दहः (रोग बीजक रूपी राक्षसों को जलाने वाला) विशेषणों से सम्बोधित किया गया है। सूर्य के प्रकाश के विषय में ऋग्वेद में लिखा है–कि सूर्य का तेज बहुत हितकारी है। इसके प्रकाश में रोगों को दूर करने की शक्ति है। सूर्य का प्रकाश सेवन करने से हृदय के सारे रोग मिट जाते हैं। अतः इसके लिए ''मित्रमह'' विशेषण का प्रयोग किया गया है–

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुतरां दिवम्।
हृद्रोशं मम् सूर्य हरिमाणां च नाशय।।

उक्त श्लोकसूर्य किरणों के सेवन की ओर संकेत करता है। सर्वविदित है कि सूर्य विटामिन डी का सबसे बड़ा स्रोत है।

वायु मानव जीवन का आधार है अतः वायुमण्डल का शुद्धिकरण आवश्यक है। ऋग्वेद में वायु को अमृत का धारक बताया गया है–

यददो वात ते गृहे अमृतस्य निधिर्हितः।
तेना नो देहि जीवसे।।

यहाँ वायु से प्रार्थना की गयी है कि हे वायु! तेरे गह में, अन्तस में जो निधि स्थापित है, उसे हमारे जीवन के लिए दे। जहाँ ऋग्वेद में एक ओर वायु को अमृत माना गया है वहीं उसके रक्षण की ओर भी संकेत किया गया है। यजुर्वेद

में भी वायु को वातावरण को शुद्धि करने वाला माना गया है और इसे शूचिपाः वायो** कहकर सम्बोधित किया गया है। अथर्वेद में ''आपो वाता ओषधयः।** द्वारा वायु की शुद्धि की ओर संकेत किया गया है। अथर्वेद में अन्य उल्लेख में वायु व सूर्य को भुवनों का रक्षक माना गया है–''युवं वायो सविता व भुवनानि रक्षथः।''

वेदों मे इन पंचतत्वों के महत्व संवर्धन एवं रक्षण के साथ-साथ वनस्पतियों एवं वृक्षों का भी महत्व वर्णित है। वेदों में वृक्षों एवं वनस्पतियों को जीवनदायिनी शक्तियों के रूप में चित्रित किया गया है। ऋग्वेद वनस्पतियों को चेतना एवं शुद्धता प्रदान करने वाला मानता है–

अवसृज वनस्पते देव देवेभ्यो हविः।
प्रदातुरस्तु चेतनम्।।

ऋग्वेद में अग्नि को शमिता देव के रूप में पूजित किया गया है जो यक्ष के प्रसंग में अग्नि के साथ वर्गीकृति हैं और यह मंत्र इस भाव को प्रकट करता है कि अग्नि देव के साथ मिलकर यह वनस्पति पर्यावरण के दोषों का शमित करे–

उपावसृज त्मन्या समजंन देवाना पाथ ऋतुथा हवीषि।
वनस्पतिः देवो अग्निः स्वदन्तु हव्य मधुना घृतेन।।

यजुर्वेद में वृक्षों एवं वनस्पतियों की महत्व को स्वीकार करते हुए उसमें शिव के रूद्र रूप की कल्पना की गयी है। शिव का रूद्र स्वरूप प्रलयंकारी होता है। वृक्षों, वनस्पतियों और औषधियों में रूद्रत्व की कल्पना सम्भवतः उनके क्षरण के दुष्परिणामों की ओर संकेत करती है। इस प्रसंग में यह मंत्र द्रष्टव्य है–

नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्योः।
क्षेत्राणां पतये नमः।
वनानां पतये नमः वृक्षाणां पतये नमः।
ओषधीनां पतये नमः। कक्षणां पतये नमः।

वृक्षों का महत्व वर्णित करने के साथ ही ऋग्वेद वृक्षों को लगाने की ओर भी संकेत करता है और उनके संरक्षण और पोषण को बताता है–

वनस्पतिं तन आस्थापयध्यवं।
नि पू दधिध्वम् अखनन्त उत्सम्।।

वेदों में वनस्पतियों के प्रसंग में पीपल, पृश्निपर्णी, श्यामा, लाक्षा, इत्यादि अनेक वनस्पतियों का उल्लेख मिलता है, जो कायचिकित्सा में प्रयुक्त होती हैं। पीपल को आज भी देव रूप में पूजित किया जाता है। वास्तव में यह सर्वाधिक आक्सीजेन देने वाला वृक्ष है। इसकी महत्ता का गान करते हुए अथर्वेद इसे देवसदन मानता है–

अश्वत्थो देवसदनः।

अथर्वेद में वनस्पतियों का सर्वाधिक उल्लेख मिलता है। वहाँ वनस्पतियों को मलनाशक माना गया है–

अद्यद्विष्टा देवजाता वीरूद्धपथयोपनी।
आपो मलमिव प्राणैक्षीत्सर्वान् मच्छपथाँ अधि।।

पंचतत्वों एवं वनस्पतियों के महत्व का मुक्त कण्ठ से गान कर वेदों ने पर्यावरण से जुड़े इन घटकों का महत्व भलीभाँति समझा है और इन्हें संरक्षित करने का भरपूर प्रयास भी किया है। इस प्रसंग में सम्पूर्ण पर्यावरणीय तत्वों में शान्ति व व्यवस्था की कामना को प्रस्तुत करने वाला यह मंत्र उल्लेखनीय है–

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः
शान्तिरोषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः
शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व शान्तिः शान्तिरेव
शान्ति सा मा शान्तिरेधि।।

इन प्रसंगो के आधार पर यदि वेदों में पर्यावरण एवं वानस्पतिक चित्रण की प्रासंगिकता की ओर दृष्टिपात करे तो यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि पर्यावरण के मुख्य घटकों (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश), वनस्पतियों एवं ओषधियों का भरपूर चित्रण वेदों में हुआ है और इसकी प्रासंगिकता यही रही है कि इन प्राकृतिक स्त्रोतों के प्रति हमारी चेतना में देवभाव विकसित हो, जिससे हम इनको हानि न पहुँचायें एवं सदैव इनके रक्षण व संवर्धन का कार्य करें।

आज आवश्यकता है कि इसी भाव को जन-चेतना में विकसित किया जाए, जिसके फलस्वरूप एक समय ऐसा आयेगा कि प्रगतिवाद के इस युग में भौतिक एवं औद्योगिक विकास के साथ ही मानव स्वास्थ्य एवं पर्यावरण भी संरक्षित रह सकेगा।

———

पिछली अर्धशताब्दी में पूर्वोत्तर भारत से डेन्ड्रोबियम वंश पर योगदान

छाया देवरी एवं टी. एम. हिनयूटा
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण,
पूर्वी परिमण्डल, शिलांग

डेंड्रोबियम एफाईलम

वंश डेन्ड्रोबियम (आर्किडेसी) को सर्वप्रथम स्वार्ज ने प्ररूप वंश डेन्ड्रोबियम मोनिलीफोर्मी के आधार पर 1799 में स्थापित किया। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के पूर्वी परिमण्डल की स्थापना सन् 1956 में हुई। इससे पूर्व पूर्वोत्तर भारत के इस वंश के बारे में कुछ जानकारी सर जे. डी. हुकर (1890), जी. किंग एवं आर. पान्टलिंग (1898), पी. ब्रुल (1926), सी. ई. सी. फ्रियर (1938) वनस्पतिज्ञों के द्वारा प्रकाश में आयी परन्तु वे इनके समूह संख्या के अन्तर्गत 64 जातियां एवं 2 प्रभेद से ज्यादा सूचित नहीं कर पाए। सन् 1956 के बाद डेन्ड्रोबियम. की कुल संख्या में 18 जातियां एवं 2 प्रभेद इस प्रान्त से और जोड़ दिये गए। इनमें से 12 जातियाँ एवं 2 प्रभेद कई लेखकों ने प्रकाशित किये जिनमें से 4 नई जातियाँ डी. दार्जिलिंगेन्स, डी. नरेशबहादुराई, डी. आसामिकम, डी. खासिआनम् एवं 2 नये प्रभेद–डी. अफाइलम प्रभेद काटाकीनम्, डी. मसकेटम प्रभेद अनगुइपेटालम् और 8 जातियों–डी.इनफन्डीबुलम, डी. पोडाग्रारिआ, डी. बेनसोनी, डी. ड्रकोनिंस, डी. पारीश्रयी, डी.केथाई, डी. पारकम, एवं ब्राइमेरिएनम् को भारत से नये रिकार्ड के रूप में समाविष्ट किया गया है। अन्य 6 जातियों को अन्य के साथ इस लेख की प्रथम लेखिका द्वारा प्रकाशित किया गया जिसमें 1 नयी जाति–डी. नुमालदेवराई, 2 भारत से नये रिकार्ड–डी.डान्टानीएन्स एवं डी. सोसिएली, 1 पूर्वोतर भारत से नया रिकार्ड–डी. हरबेसियम और 2 पुनः आविष्कृत–डी. पिक्रोस्टाकियम एवं डी. अवरन्टीएकम् शामिल हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक जाति का रंगीन चित्र भी प्रस्तुत किया गया है।

डेंड्रोबियम क्राईसेंथम

डेन्ड्रोबियम की जातियाँ अपने अन्दर अनेक उपयोगिता रखती हैं जिन में से जैव वर्गीकरण, आर्थिक उपयोगिता, औषधीय गुण आदि उल्लेखनीय है। बागवानी एवं पुष्प-कृषिमूलक उपयोगिता के अलावा डेन्ड्रोबियम की अनेक जातियों में मूल्यवान

डेंड्रोबियम क्राईजोटोक्सम

क्षारोद पदार्थ (alkaloids) के मिलने के कारण भी उपयोगी है जिससे अनेक जानलेवा बीमारी से बचाव हो सकता है।

1. क्षारोद पदार्थ (alkaloids) :

क्षारोद पदार्थ समूह नाइट्रोजन युक्त रासायनिक कार्बनिक तत्व हैं जो पौधों से प्राप्त होते हैं, जिन्हें विभिन्न बीमारियों में दवा के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह बात महत्वपूर्ण है कि डेन्ड्रोबियम की अनेक जातियों में विभिन्न प्रकार के क्षारोद पदार्थ पाए जाते हैं। डेन्ड्रोबियम नोबिलि (Dendrobium nobile)से 3-हाइड्रोक्सि 2- अक्सोडेन्ड्रोबीन (3-hydroxy, 2-oxodendrobyn), डेन्ड्रोबीन (Dendrobyn), नोबिलीन (Nobilyn) आदि कर्षण किया जाता है जबकि डेन्ड्रोप्राइमिन (Dendroprimyn) डेन्ड्रोबियम प्राइमुलिनम (Dendrobium primulinum) से और हाइग्रिन (Hygrin) डेन्ड्रोबियम क्रइसेन्थम(Dendrobium chrysanthum तथा डेन्ड्रोबियम प्राइमुलिनम (Dendrobium primulinum) से मिलना उल्लिखित है।

2. औषधीय उपयोग (Folk-Medicine) :

नागा जनजाति डेन्ड्रोबियम डेन्सिफलोरम (Dendrobium densiiflorum) के पत्ते हडडी जोडने (fracture) में व्यवहार करते हैं। मेघालय की जन जातियां डेन्ड्रोबियम नोबिलि (Dendrobium nobile) तथा डेन्ड्रोबियम मोस्केटम (Dendrobium moschatum) को कान के दर्द में इस्तेमाल करते हैं। बदन में किसी जगह कटने तथा जख्मी हो जाने पर डेन्ड्रोबियम नोबिलि (Dendrobium nobile) का इस्तेमाल किया जाता है। इस जाति को आँख की समस्याओं में उपयोगी पाया गया है। डेन्ड्रोबियम फिम्ब्रिएटम (Dendrobium fimbriatum) गुर्दा दर्द तथा नस के सही काम न करने पर (nerval disorders) व्यवहार किया जाता है। डेन्ड्रोबियम डेनुडेन्स (Dendrobium denudans) संवेदनहारी (anaesthetic), नशा, (narcotic) तथा विभ्रामक (hallucinogenic) गुण के लिए जाना जाता है। मिजोरम के लोग डेन्ड्रोबियम इरिओफलोरम (Dendrobium eriaeflorum) से ड्रग्स (Drugs) कर्षण करते हैं। डेन्ड्रोबियम फिम्ब्रिएटम उप-जाति अकुलेटम (Dendrobium fimbriatum var. oculatum) कटे तथा जख्म पर इस्तेमाल करने पर (cuts and wounds) फायदा देता है। डेन्ड्रोबियम हर्बेसिअम (Dendrobium

डेंड्रोबियम डेंसिफ्लोरम

डेन्ड्रोबियम फिम्ब्रिएटम

डेन्ड्रोबियम फार्मोसम

herbaceum) का रस एमिबीय डिसेन्ट्री (Amoeboid dyscentry) पर फलदायक है। डेन्ड्रोबियम लिन्डलै (Dendrobium lindleyi) के विभिन्न अंग कोलेरा (Cholerra), नस की बिमारी, फोड़े–फुंसी (pimples and boils) पर व्यवहार करने पर काफी लाभ करती है। डेन्ड्रोबियम मोन्टिकोला (Dendrobium monticola) का कूटकन्द (pseudobulbs) को फोड़े-फुंसी (pimples, boils) तथा चमड़े की अन्य रोग पर लगाने से फायदा होता है। डेन्ड्रोबियम एमोइनम का ताजा तना बेसिलस सबटिलिस (Bacillus subtillis) क्लेब्सिएल्ला निउमुनिया (Klebsiella pneumoniae) तथा स्टेफाइलोकोकस ओरिअस (Staphylococus aureus) आदि बेक्टरिया के वृद्धि को रोकता है। डेन्ड्रोबियम क्राइसोटोक्सम (D. chrysotoxum) कैन्सर और टयूमर के विरोध में उपयोग किया जाता है।

3. कला ओर लोक-विश्वास (Culture and Belief) :

पूर्वोत्तर भारत के विभिन्न जन जाति कला और लोक-विश्वास में डेन्ड्रोबियम की अनेक जातियों को महत्वपूर्ण मानते हैं। अरूणाचल प्रदेश के कामेंग जिले

डेन्ड्रोबियम हुकेरिएम

डेन्ड्रोबियम गिब्सोनी

डेन्ड्रोबियम सल्केटम

के बौद्ध मंन्दिरों को डेन्ड्रोबियम हूकेरिएनम (D. hookerianum) डेन्ड्रोबियम नोबिलि (D. nobile) डेन्ड्रोबियम गिबसोनि (D. gibsonii) आदि से सजाया जाता है जिसे पवित्रता के प्रतीक के रूप मे माना जाता है। मेघालय के जैन्तिया हिल्स में हिन्दू धर्म के लोग दुर्गा पूजा के समय देवी की मूर्ति बनाने में विभिन्न फूलों के साथ डेन्ड्रोबियम को खास तौर से इस्तेमाल करते हैं।

4. **वस्त्र और सजावट** (Dress and ornaments) :

डेन्ड्रोबियम मोस्केटम

सेमा-नगा जनजाति के लोग अक्सर अपने-आप को फूलों से सजाते हैं। इस में डेन्ड्रोबियम क्रइसेन्थम (Dendrobium chrysanthum) उनकी पहली पसन्द है।

5. **खाद्य एवं चारा** (Food & fodder):

डेन्ड्रोबियम हूकेरिऐनम (D. hookerianum) के फूल अरूणाचल के जन जाति के लोग खाद्य के रूप में व्यवहार करते हैं। डेन्ड्रोबियम के अनेक जातियाँ दूध देती गाय-भैंस को खिलाने पर दूध के उत्पादन में काफी बढ़ोतरी होती है। मधु के उत्पादन में भी खुशबूदार डेन्ड्रोबियम जातियाँ उपयोगी पायी गयी हैं।

डेन्ड्रोबियम नोबिली

6. रंग (dye) :

अरूणाचल के जनजाति के लोग डेन्ड्रोबियम हूकेरिऐनम (D. hookerianum) के फूल से कपड़े भी रंगते है।

7. वाणिज्यिक उपयोगिता (Trade prospects) :

आर्किड के अनेक प्रकार उनके सुन्दरता, खुशबू, आकार और आकृति तथा दीर्घायु होने के कारण विश्व भर में हमेशा से लोकप्रिय हैं। बहुत सी संस्था तथा क्लब इनकी वाणिज्यिकरण में जुड़े हुये हैं। डेन्ड्रोबियम की बहुत सी जातियाँ भी ऐराइडिस (Aerides), केलेन्थि (Calanthe), सिम्बिडिअम (Cymbidium), पेफिओपेडिलम (Paphiopedilum) फेआस (Phaius) प्लिओनि (Pleione) तथा वेन्डा (Vanda) आदि आर्किड की तरह उच्च वाणिज्यिक मूल्य रखती है। डेन्ड्रोबियम की जातियाँ इनके पुष्पक्रम (spike) की लम्बाई, फूलों की संख्या, पर्व (internodes) की लम्बाई तथा पुष्पक्रम के प्रकार आदि गुणों पर मूल्यांकन किया जाता है। डेन्ड्रबियम की विभिन्न प्रकार भेद तथा जंगली जातियाँ फूलों समेत उच्च दर में बिकती है। दुर्लभ जातियाँ जैसे डेन्ड्रोबियम सुलकेटम (D. sulcatum) आदि के मूल्य साधारण जातियों जैसे डेन्ड्रोबियम एफाइलम (D. aphylum), डेन्ड्रोबियम क्रइसेन्थम (D. chrysanthum), डेन्ड्रोबियम हुकेरिएनम (D. hookerianum) आदि से ज्यादा होता है।

डेन्ड्रोबियम की विभिन्न संकर भेद की खेती किसान के लिए लाभदायक है तथा सरकार के लिए भी राजस्व (revenue) का अच्छा उपाय है। डेन्ड्रोबियम के एक-एक संकर भेद का पौधा 60 से 100 रूपये में बिकता है। डेन्ड्रोबियम जेन्किन्सि (D. jenkinsii) डेन्ड्रोबियम क्राइसोटोक्सम (D. chrysotoxum) डेन्ड्रोबियम फरमोसम (D. formosum) डेन्ड्रोबियम नोबिलि (D. nobile), डेन्ड्रोबियम प्राइमुलिनम (D. primulinum) आदि के संकर भेद समूह जाने-माने हैं।

डेन्ड्रोबियम प्रिमुलिनम

बाहरी देशों में डेन्ड्रोबियम के कटे हुए फूलों के व्यापार उद्योग (cut flower industry) में भी उच्च स्तर पर है। पूर्वोत्तर भारत में फूलों के उद्योग के जरिए ग्राम्य-रोजगार को बढ़ावा आसान और सफल हो सकता है। इस दिशा में डेन्ड्रोबियम की जातियाँ लाभदायक साबित हो सकती है क्योंकि ऊतक संर्वधन व कायिक जनन से कम से कम समय में सालों तक उगाकर फायदा उठाया जा सकता है।

दाम्फा बाघ अभयारण्य की उपयोगी औषधीय वनस्पतियां : एक अवलोकन

बिपिन कुमार सिन्हा, रमेश कुमार एवं टी. एम. हिनयुटा
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

दाम्फा बाघ अभयारण्य मिजोरम राज्य के मामित जिले में 23° 32' से 23° 41' उत्तरी अक्षांश व 92° 13' से 92° 27' पूर्वी देशान्तर पर स्थित है। इस अभयारण्य का कुल क्षेत्रफल लगभग 500 वर्ग कि. मी. है। इसकी स्थापना सन् 1985 में पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा की गयी। इस बाघ अभयारण्य को दो परिक्षेत्रों में बाटा गया है। पहला परिक्षेत्र का मुख्यालय तीरई है जो कि अभयारण्य की उत्तरी दिशा में स्थित है। दूसरे परिक्षेत्र का मुख्यालय फुलडुगसी है जो कि अभयारण्य की पश्चिमी दिशा में स्थित है। इस बाघ अभयारण्य की पश्चिमी सीमा बगंलादेश से, एवं उत्तरी-पश्चिमी सीमा त्रिपुरा राज्य से लगती है। इस बाघ अभयारण्य के विभिन्न भागों की समुद्र तल से ऊँचाई लगभग 200 से 900 मीटर तक है। यहां का औसत तापमान 9° से 32° तक रहता है, एवं वर्षा 2000 से 2500 मी.मी. प्रतिवर्ष तक होती है।

दाम्फा बाघ अभयारण्य के वानस्पतिक सर्वेक्षण का कार्य सन् 2000 से 2008 के बीच भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पूर्वी परिमंडल के वैज्ञानिकों द्वारा किया गया। इस सर्वेक्षण कार्य में लगभग 530 पौधों के पादप नमूने एवं लगभग 150 सजीव पौधे एकत्रित किये गये हैं। इनमें विभिन्न प्रकार के वृक्षों, आरोही लताओं, शाकों एवं आर्थिक रूप से उपयोगी पौधों के नमूने शामिल हैं। सर्वेक्षण के दौरान जिस प्रकार के वन एवं वनस्पतियां इस अभयारण्य में पायी जाती हैं उनका संक्षेप में ब्यौरा निम्नवत है :

उष्णकटिबन्धीय अर्धसदाबहार एवं शुष्क पर्णपाती वन : इस प्रकार के वन अभयारण्य के निम्न ऊंचाई वाले क्षेत्रों में पाये जाते हैं जहां पर वर्षा कम होती है। इनमें वृक्षों की प्रमुख प्रजातियों में हल्डिना कार्डिफोलिया, अल्बीजिया लेबक, आर्टोकार्पस चामा, शोरिया रोबस्टा, मेलाइना अर्बोरिया, लेजरस्ट्रोमिया स्पीसिओसा आदि प्रमुख हैं। वर्षा काल में इस क्षेत्र में झाड़ियों की भरमार हो जाती है जिसमें मुसैन्डा, बुडलेजिया, कोम्ब्रेटम आदि प्रमुख हैं।

उष्णकटिबन्धीय अर्धसदाबहार वन : इस प्रकार के वन अभयारण्य के 800 से 1000 मी. की ऊंचाई वाले क्षेत्रों में पाये

जाते हैं। अधिक वर्षा के कारण इन वनों में नम एवं छायादार वनस्पतियों की बहुलता है। इन वनों में वृक्षों की प्रमुख प्रजातियों में डिपटेरोकार्पस टरबिनेटस, शोरिया रोबस्टा, मेलाइना अर्बोरिया, शिमा वालिचीआई, टर्मिनेलिया बेलेरिका, आर्टोकार्पस लकूचा, टेरिगोटा अलाटा आदि प्रमुख हैं। लताओं में टीफेनिया ग्लैन्डूलिफेरा, स्माइलेकस, डायसकोरिया प्रजातियां प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त पहाड़ी ढलानों पर जंगली केले, जिन्जीबरेसी कुल के पौधे एवं अन्य वनस्पतियां भी प्रमुखता से पायी जाती हैं। नमी के कारण इस क्षेत्र में शाकीय पौधों की बहुलता है।

बांस के वन : अभयारण्य के पश्चिम क्षेत्र जिसकी सीमा बंगलादेश से एवं उत्तरी-पश्चिमी भाग की सीमा जो त्रिपुरा राज्य से लगती है वहां पर अर्धसदाबहार वनों विशुद्ध एवं मिश्रित अवस्था में बाँस के वन पाये जाते हैं। बाँसों की प्रमुख प्रजातियों में : मेलोकाना बेसिफेरा, बम्बूसा बल्कोहा, बम्बूसा नूटेन्स, बम्बूसा पैलिडा, डेन्ड्रोकैलेमस हेमिलटोनि एवं साइजोस्टेकियम पालिमार्फम प्रमुख हैं।

वनों में पायी जाने वाली वनस्पतियां आदिवासी जनजातियों के जीवन यापन का साधन ही नहीं अपितु उनके विकास में भी सहायक हैं। दाम्फा बाघ अभयारण्य क्षेत्र के अधिवासी जनजातियां अपनी दैनिक जीवन की आवश्यकताओं जैसे जलावन, लकड़ी, चारा, औषधीय पौधे, जंगली सब्जियों एवं काष्ठ आदि हेतु यहां पायी जाने वाली वनस्पतियों पर निर्भर करते हैं।

प्रस्तुत लेख में अभयारण्य में पाये जाने वाले औषधीय पौधों के वानस्पतिक नाम, पौधे के स्वरूप एवं उनके पारम्परिक औषधीय उपयोग के बारे में जानकारी के साथ-साथ उनके छायाचित्र भी दिए गये हैं।

1. एगनिशिया इंडिका (Aeginetia indica) : शाक : मम्स के उपचार कें इसके राइजोम के रस को बाहर से सूजे भाग पर लगाते हैं।
2. कैलीकारपा अरबोरिया (Callicarpa arborea): वृक्ष : अतिसार, पेट दर्द एवं विकार के उपचार में इसके छाल का रस पीने से आराम मिलता है।

3. कोस्टस स्पेसिओसस (Costus speciosus) : शाक : टौन्सिल एवं गले के सूजन के उपचार में इसके राइजोम एवं पत्तियों का रस पीने से आराम मिलता है।

4. करकुमा केसिया (Curcuma caesia) : शाक : चर्म रोग एवं घाव के उपचार में इसके राइजोम का लेप लगाते हैं।

5. डिलेनिया इंडिका (Dillenia indica): वृक्ष : अतिसार एवं पेट दर्द उपचार में इसके फल के लसलसे भाग को खाते हैं।

6. अम्बलिका आफिसीनेलिस (Emblica officinalis) : वृक्ष : अतिसार, कब्ज एवं पेट सम्बन्धी अन्य विकारों के निदान हेतु इसके फल को खाते हैं।

7. सराका अशोका (Saraca asoca) : वृक्ष : प्रसूति उपरान्त व्याधियों के निदान हेतु छाल काढ़े के रूप में एवं फूल खाने के लिऐ देते हैं।

8. हैलमिन्थोस्टेकिस जिलैनिका (Helminthostachys zelanica) : शाक : राइजोम : अतिसार, पेट दर्द एवं मलेरिया ज्वर के उपचार में इसके राइजोम का रस लेने से आराम मिलता है।

9. गारसिनिया लेन्सिफोलिया (Garcinia lanceaefolia) : वृक्ष : मिसील्स के उपचार में इसकी पत्तियों को पानी में उबालकर नहाने से आराम मिलता है।

10. सोलेनम टोरवम (Solanum torvum) : झाड़ी : दॉत दर्द के उपचार में इसके बीजों को पीसकर दांतों पर लगाते हैं।

11. मूकुना प्रूरियनस (Mucuna pruriens) : लता : अतिसार एवं उदरकृमि के निदान में इसके जड़, फल एवं बीज का प्रयोग करते हैं।

12. मूकुना इम्ब्रिकेटा (Mucuna imbricata) : लता : ज्वर एवं गले के दर्द के उपचार में इसके बीज का प्रयोग करते हैं।

13. ममोरडिका कोचिनचिनेनसिस (Momordica cochinchinensis) : लता : ज्वर एवं सर्दी जुकाम के उपचार में इसके बीज का प्रयोग करते है।

14. ओरोज़ाइलम इण्डिकम (Oroxylum indicum) : वृक्ष : अतिसार, पेट सम्बन्धी अन्य बीमारियों एवं पाइल्स के उपचार में इसके बीज एवं कोमल फल को खाते हैं।

15. पडेरिया स्केन्डेन्स (paederia scandens) : लता : अतिसार एवं पेट सम्बन्धी अन्य परेशानियों के उपचार में इसकी पत्तियों का रस लेने से आराम मिलता है। इसके अलावा पत्तियों का रस हरपीस रोग में बाहर से लगाने से जलन कम होती है।

16. कलिरोडेन्ड्रम कोलिब्रोकियेनम (Clerodendrum colebrookianum) : झाड़ी : उच्च रक्तचाप के उपचार में इसकी पत्तियों का रस लेते हैं एवं पत्तियों की सब्जी बनाकर भी खाते हैं।

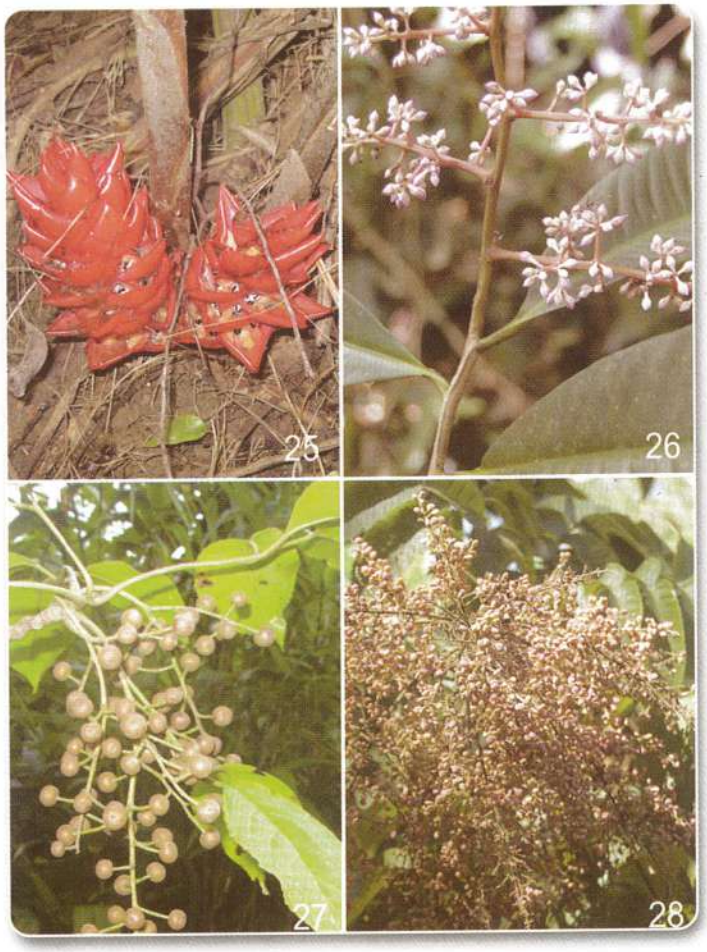

विचित्र, दुर्लभ, संकट ग्रस्त एवं उपयोगी वनस्पति - कीड़ा घास

बी. एस. खोलिया व ए. ए. अन्सारी
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, गांतोक

प्रकृति जीवन का आधार है, आदिकाल से ही मनुष्य की सम्पूर्ण आवश्यकताएं प्रकृति पर जाकर ठहर जाती हैं तथा वहीं से वह उनकी आपूर्ति करता है। वैदिक युग में भी प्रकृति एवं मानव को एक दूसरे का पूरक माना गया है। मनुष्य के मन में हमेशा स्वस्थ व जवान बने रहने की लालसा रही है। जिसके लिए वह आदिकाल से ही विभिन्न प्रकार की जड़ी बूटियों एवं प्राकृतिक पदार्थों का सेवन करता आ रहा है। इन्हीं जड़ी बूटियों में से एक है उच्च हिमालयी क्षेत्रों मे पायी जाने वाली वनस्पति-कीड़ा घास।

आखिर क्या है यह कीड़ा घास–कीड़ा या घास। वर्षो तक मनुष्य इसे समझ न पाया। यह जाड़ों में जमीन के अंदर कीड़े सदृश होती है तथा गर्मी में घास की तरह प्रस्फुटित होकर ज़मीन से बाहर निकल आती है किन्तु इसका रंग हरा न होकर भूरा काला या हल्का नीलापन लिए रहता है। आधुनिक वैज्ञानिक खोजों से यह सिद्ध हो गया है कि यह विचित्र जीव एक फफूँद (कवक) व एक शलभ (पतंगा) का सहवास है जिसमें फफूँद शलभ की इल्ली (लारवा)पर परजीवी है। इसका मुख्य शरीर कोरडाइसेप्स साइनेंसिस नामक कवक ही है। यह कवक उपजगत एस्कोमाइसिटीज, गण पाइरिनोमाइसिटीज व कुल क्लेविसिपिटीसी का सदस्य है। कोरडायसेप्स की लगभग 300 प्रजातियाँ हैं। जो इल्लियों पर परजीवी होती है तथा अधिकांशतः हिमालयी क्षेत्रों में पाई जाती हैं, किन्तु जो सर्वाधिक उपयोगी प्रजाति है वह है कोरडायसेप्स सायनानसिस। प्रायः लोग अधिक धन के लालच में इसकी दूसरी प्रजाति कोरडायसेप्स मिलिटेप्सि को भी कीड़ा घास के स्थान पर उपयोग व व्यापार में लाते हैं।

बहु उपयोगी औषधीय पौधा कीड़ा घास (कोरडायसेप्स सायनानसिस) मध्य हिमालय में भारत, नेपाल व चीन के तिब्बत प्रान्त में पाया जाने वाला दुर्लभ पौधा है। भारत में यह कुमायूँ हिमालय (उत्तराखण्ड) में जनपद पिथौरागढ़ के धास्चूला व मुनस्यारी तहसील मे तल्ला जौहार, मल्ला जौहार, दारमा, व्यास व चौढाँस घाटियों में बुग्यालों के बीच बहुतायत से पाया जाता है। यद्यपि गढ़वाल क्षेत्र, सिक्किम व हिमाचल प्रदेश में भी इसके पाए जाने की सूचनाए हैं।

कीड़ा घास का बनना एक अजीब सी प्राकृतिक घटना है। शलभ (हिपेटिलस आरमोनिकनस) की इल्ली जब पौधों की जड़ों को खाने के लिए मिट्टी के अंदर प्रवेश करती है तो कोरडायसेप्स सायनानसिस नामक कवक के जाल (मायसेलिया) उसके शरीर के ऊपर अपनी बस्ती बना लेते हैं तथा धीरे धीरे ये कवक जाल पूरी इल्ली के ऊपर फैलकर उसी का आकार ग्रहण कर लेते हैं व इसे जकड़ लेते हैं तथा उससे अपना भोजन ग्रहण करते हैं। मृत इल्ली का शरीर परिरक्षित शव की तरह है। यह सारी प्रक्रिया जमीन के अंदर होती है। गर्मी की ऋतु के आने पर मृत इल्ली के सिर के हिस्से की ओर से कवक का छत्रक (फ्रूटिंग बाडी) जमीन के अंदर से घास की तरह प्रस्फुटित होता है। इसीलिए इसका नाम कीड़ा घास रखा गया है क्योंकि इसका आधा शरीर कीड़े के समान है जो जमीन के अंदर है तथा आधा हिस्सा घास की तरह है जो गर्मी में प्रस्फूटित होता हैं। तिब्बती भाषा में इसका नाम यार्शिया गम्बू है यार्शिया का अर्थ है जाडा व गम्बू का गर्मी अर्थात यह जाड़ों में कीड़ा व गर्मी में पौधा है। चीनी भाषा में इसे डोंग झिया चाओ कहते हैं जिसका अर्थ भी यही है गर्मी में पौधा जाड़ा में कीड़ा।

कहा जाता है कि इस पौधे के विशिष्ट गुणों की जानकारी सदियों पूर्व से ही हिमालयी चरवाहों को थी। उन्होंने यह महसूस किया कि जब उनके पशु (याक) वर्षा ऋतु में उच्च हिमालयी क्षेत्रों में चरने के लिए जाते हैं तो वे एक विशेष प्रकार के कवक को बड़े चाव से चरते हैं तथा उसको खाने से ये याक पुष्ट व बलशाली बनते हैं। इसी आधार पर इसके औषधीय गुणों की खोज हुई। इसका औषधीय प्रयोग चीन, हिमालय व नेपाल वासियों द्वारा सदियों से किया जा रहा

हैं। प्राचीन चीनी राजा महाराजाओं द्वारा इसे बलवर्धक व यौन वर्धक औषधि के रूप में लिया जाता था तथा इस गुप्त ज्ञान को मौखिक रूप से वैद्यों द्वारा अपनी अगली पीढ़ी को हस्तान्तरित किया जाता था। इसके लिखित प्रमाण पन्द्रहवीं सदी में तिब्बती वैद्य जरखार नमन्थी (1439-1475) की पुस्तक में मिलते हैं जिसमें इसके सम्पूर्ण औषधीय गुणों का वर्णन है। सन् 1993 में जर्मनी में चीनी धावकों एवं धाविकाओं द्वारा नौ विश्वकीर्तिमान स्थापित किए गए तथा बाद में पता चला कि सभी धावक कीड़ा घास से बनी औषधि का सेवन करते थे। इस समाचार ने रातों रात कीड़ा घास को नई बुलंदियों पर पहुँचा दिया।

जनपद पिथौरागढ़ (उत्तराखण्ड) के हिमालयी क्षेत्रों में रहने वाले शौका व भोटिया जनजाति के वैद्यों को भी इसकी जानकारी प्राचीन समय से थी तथा 1962 से पूर्व तिब्बत व्यापार के समय सूती वस्त्र, लट्ठे का कपड़ा, गुड़, अनाज, दाल आदि के साथ कीड़ा घास का भी विनिमय किया जाता था जिसके बदले नमक, सुहागा, ऊन, ऊन से बने थुल्मे, चुटके, कालीन, पशमीना शाल, बकरियाँ आदि प्राप्त करते थे। नब्बे के दशक में तिब्बत व्यापार के पुनः खुलने व जर्मनी में चीनी धावकों द्वारा कीर्तिमान बनाने के बाद पुनः हिमालयी क्षेत्र में इसका अंधाधुंध दोहन होने लगा।

आज कुमायू मण्डल के उच्च हिमालयी क्षेत्रों एवं बुग्यालों में से स्थानीय लोग इस बूटी को पूरे वर्षा ऋतु में एकत्र करते हैं। जिसके लिए वे पूरे 3-4 महीने तक अपना टेन्ट, बिस्तर व खाने पीने के सामान के साथ जंगल में ही रहते हैं तथा कीड़ा घास एकत्र करते हैं। इसके संग्रह के प्रमुख क्षेत्र हैं डम्फिया धूरा, लोई धूरा, लल्पिया धूरा, कलगंगा धूरा, ऊण्टा धूरा, रालम, सिनला, वेलचा, कुंगरी-विंगरी, कियो धूरा, मंग्स्या धूरा, न्यूधूरा, छिपलाकोट, बौन, रूंग, जौलिंगकांग, रालम, गिर्थी आदि। पूरे वर्षा ऋतु में एकत्र किए गये माल को ये कच्चा या सुखाकर स्थानीय दलाल को बेच देते है तथा जिसे तस्करों द्वारा नेपाल के रास्ते या सीधे ही चीन भेज दिया जाता हैं। प्रायः सुनने में आता है कि अंतर्राष्ट्रीय बाजार में इसकी कीमत 2 से 3 लाख रूपये प्रति किलो तक हैं।

इस कवक की इतनी अधिक कीमत व मांग ही पुरवा प्रमाण है कि यह एक अत्यधिक उपयोगी एवं दुर्लभ औषधि है। इसका उपयोग बलवर्धक व वीर्यवर्धक के रूप में प्राचीन काल से ही चला आ रहा है तथा जर्मनी में हुई दौड़ प्रतियोगिता ने इस पर मुहर लगा दी। उपरोक्त उपयोगों के अतिरिक्त वैज्ञानिक खोजों व प्रयोगों द्वारा भी यह सिद्ध हो चुका है कि यह बल व यौन वर्धक के अतिरिक्त भी कई असाध्य रोगों में कारगर है। यह तनाव मुक्त कर शरीर में नई ऊर्जा का संचार करता है तथा साथ ही यकृत, फेफड़े गुर्दे की बीमारियों को ठीक भी करता है। इसके लगातार सेवन से समस्त बीमारियों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता बनी रहती है। कैंसर व दमा में भी यह कारगर सिद्ध हुआ है।

आज बाजार में यह पाउडर व केप्सूल के रूप में कई नामों यथा कोरडायसेप्स, कोरडायसेप्स ऐक्सट्रेक्ट, कोरडायसेप्स प्लस, कोरडायसेप्स सी. एस.4, कोरडायसेप्स-450 आदि नामों से उपलब्ध है एवं बिकता हैं। साथ ही इसका उपयोग अन्य यौनवर्धक दवाइयों में जेनसिग के साथ मिलाकर किया जाता है।

आज हमारे देश में इसका दोहन व व्यापार अवैध रूप मे चल रहा है तथा आवश्यकता है इसके उचित दोहन व प्रबंधन की। यदि इसी प्रकार प्रतिवर्ष दोहन होता रहा तो यह बहुमूल्य पौधा कुछ ही समय में विलुप्त हो जायेगा। क्योंकि बीजाणुओं के बनने से पूर्व ही सारे छत्रक व्यापार हेतु तोड़ लिए जाते हैं। पता नहीं कितने वर्षा तक यह कवक कायिक जनन से अपना अस्तित्व बनाए रखने में सक्षम रहेगा।

अतः आज इसके उचित दोहन व प्रबंधन की नितान्त आवश्यकता है। जिसके लिए सरकार व वनविभाग को आगे आना होगा जिसमें उच्च हिमालयी क्षेत्रों में इसकी खेती के लिए आधुनिक तकनीकी पर आधारित फार्म खोले जाएँ जहां कीट व कवक को साथ साथ संरक्षित किया जा सके। प्रकृति से इसका दोहन भी सरकार की देखरेख में हो जिसके लिए स्थानीय नागरिकों को कुछ समय के लिए परमिट जारी किया जाय। साथ ही निर्देश दिए जाए कि लगभग 10% तक छत्रकों को बीजाणु बनने हेतु छोड़ दिया जाय। परमिट अलग-अलग स्थानों में अलग-अलग वर्षों के लिए निर्गत

किए जाए व एक स्थान को अगले 2-3 बर्षो के लिए प्रतिबंधित कर दिया जाए जिससे कि पर्याप्त मात्रा में बीजाणु व कवक जाल मिट्टी के अंदर बना रहे। साथ ही पतंगे के संरक्षण पर भी ध्यान दिया जाए। यदि पतंगे की वंश वृद्धि रूक जाएगी तो कवक छत्रक नहीं बन पाएगा। बेहतर यह होगा कि इसका निर्यात करने के बजाय हमारे देश में ही इससे औषधि का निर्माण किया जाए जिससे स्थानीय लोगों को रोजगार के साथ ही विदेशी मुद्रा का अर्जन हो सके।

नीला नम हो, निर्मल नीर।
धरा हरी हो, स्वच्छ समीर।।

* * *

वन से वंचित न हो जीवन।
बिगड़े नहीं प्राकृतिक संतुलन।।

* * *

प्रदूषण फैलाना महा कुकर्म।
पर्यावरण रक्षा मानव धर्म।।

* * *

बंजर धरती रहे न खाली।
सब मिलकर लायें हरियाली।।

पूर्वोत्तर भारत के बिगोनिएसी कुल की आर्थिक उपयोगिता

एमाद उद्दीन एवं संध्याज्योति फुकन
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

भारत में बिगोनिएसी कुल का एक ही वंश बिगोनिआ (Begonia) तथा लगभग 57 जातियां पायी जाती हैं। अर्मस्कार (1928) तथा डूरेनबोस (1998) की अव-वंशीय वर्गीकरण (infra-generic classification) पद्धति के अनुसार इन जातियों को 7 गण (Sections) में वर्गीकृत किया जा सकता है। भारत की बिगोनिआ जातियाँ मुख्यतः हिमालय तथा पूर्वोत्तर राज्यों में ही पायी जाती हैं। थोड़ी सी जातियाँ पश्चिमी हिमालय और पश्चिम-घाट पर्वत (Western Ghats) से भी उल्लिखित हैं। अरूणाचल प्रदेश और सिक्किम में सबसे ज्यादा जातियाँ पायी जाती हैं। बिगोनिया वंश के सदस्य उष्ण-कटिबन्धीय (tropical forests) तथा उपोष्ण (subtropical) जंगलों के आर्द्र पर्यावरण में पाए जाते हैं जहां वर्षा भी आपेक्षाकृत अधिक होती है। मध्यवर्ती ऊँचाई (medium altitude) मे सागर सीमा से 350-1000 मीटर उपर तक (m.s.l.) ज्यादातर जातियाँ मिलती हैं। अवश्य इस से कम या अधिक ऊँचाई (altitude) से भी एक-दो जातियाँ दर्ज हैं।

बिगोनिआ जोसेफी

पूर्वोत्तर भारत दुनिया की जैव-विविधता तप्तस्थली (Biodiversity Hotspots) में से एक है। इस इलाके के बृहत वनाण्चल में, जो कि निम्न सावाना (savannah) से लेकर उच्च आलपाईन वन (alpine forests) तक विस्तृत है, अगणन उद्भीद तथा प्राणी जातियाँ पायी जाती है। ये वृहत जैव-विविधता आर्थिक सम्पदा का भी भण्डार हैं। फ्लोरा आफ इंडिया (Flora of India) परियोजना के अन्तर्गत बिगोनिएसी कुल की पुनरीक्षण (Revision of family Begoniaceae) के दौरान इस कुल की कुछ महत्वपूर्ण आर्थिक उपयोगिता के बारे में जानकारी सामने आयी है। भारत में पाये जाने वाली बिगोनिआ जातियों के लगभग दो-तिहाई सदस्य पूर्वोत्तर राज्यसमूह में मिलती है जो आर्थिक उपयोगिता में भी उल्लेखनीय है। इन उपयोगिताओं मे से कुछ का नीचे उल्लेख किया गया है।

बिगोनिआ पेडंकुलोसा

1. **औषधीय उपयोगिता** (Medicinal importance) :

क. आम्लीय प्राकृति (acidic) हेतु बिगोनिआ की अनेक जातियाँ पेट की

बिगोनिआ पिक्टा

(Begonia tessaricarpa) आदि इस गुण के लिए परिचित हैं।

ग. हल्के बुखार मे बिगोनिआ पामाटा (Begonia palmata) का रस फलदायक है।

घ. बिगोनिआ लंगिफोलिआ (Begonia longifolia) के पत्तों का रस खासी में लाभ देता है।

2. **पुष्प-कृषि में उपयोगिता** (Florilicultural importance) :

रंगारंग पत्तियों तथा खूबसूरत फूलों के साथ बिगोनिआ की अनेक जातियां अपने अन्दर पुष्प कृषि की सामर्थ्य रखती है। इसी कारण से

बिगोनिआ जेंथिया

समस्याओं पर फलदायक है। बदहजमी से हुए पेट दर्द तथा दस्त (डाएरिआ) में कच्चा डन्ठल इस्तेमाल किया जाता है। बिगोनिआ रोक्सबरघाई (Begonia roxburghii) बिगोनिआ टेसारिकार्पा (Begonia tessaricarpa) तथा बिगोनिआ हाटाकोआ (Begonia hatacoa) आदि उल्लेखनीय हैं।

ख. अत्याधिक गर्मी में जलशुष्कता से बचाव के लिये भी बिगोनिआ का डन्टल कच्चा खाया जाता है। गेदुदार जातियां जैसे बिगोनिआ आबोरेन्सिस (Begonia aborensis) बिगोनिआ जोसेफी (Begonia josephii) बिगोनिआ टेसारिकार्पा

बिगोनिआ रेक्स

अन्तर्द्वार (indoor) व बाह्य उद्यानों (outdoor gardens) में बिगोनिआ की अनेक जातियां और संकर भेद (hybrid varieties) लगायी जाती हैं। बिगोनिआ रेक्स (Begonia rex) इसमें प्रसिद्ध है जिसके हजारों संकर भेद दुनिया भर के उद्यान प्रेमियों की पहली पसन्द हैं। बिगोनिआ रेक्स के अलावा बिगोनिआ जेन्थिना (Begonia xanthina) बिगोनिआ पामाटा (Begonia palmata), बिगोनिआ थमसोनी (Begonia thomsonii), बिगोनिआ पिक्टा (Begonia picta), बिगोनिआ हाटाकोआ (Begonia hatacoa), बिगोनिआ सिक्किमेन्सिस (Begonia

sikkimensis) आदि पूर्वोत्तर भारत की कुछ पुष्प कृषि सामर्थ्य वाली बिगोनिआ हैं जिनकी कुछ जातियां तथा उनके संकर भेद आम तौर पर परिचित है और बाजार में भी मिलती है। बाकी कुछ जातियां अभी तक अन्वेषण से दूर (still unexplored) हैं।

3. खाद्य द्रव्य के रूप में उपयोगिता (Food) :

बिगोनिआ की चटनी खट्टी और स्वादिष्ट होती है जो पेट के लिये भी फायदा देती है। जंगलों के आस-पास के लोग मांस के साथ बिगोनिआ की चटनी खाते हैं। इसके आलावा मछली के साथ खट्टा जूस और भाजी बनाकर भी खाया जाता है।

4. पारिस्थितिक उपयोगिता (Environmental importance) :

वर्तमान के इस अध्ययन के दौरान भारत के सभी इलाका से बिगोनिआ को संग्रह किया गया है। इस बात को लक्ष्य किया गया है कि बिगोनिआ द्वितीयक अरण्यों (secondary forests) तथा भ्रष्ट अरण्यों (degraded forests) में ज्यादातर होती है। यह इस बात का पता देती है कि अरण्यों के पुनर्गठन तथा पराकाष्ठा गठन (climax formation) में बिगोनिआ की खास भूमिका है।

बिगोनिआ राक्सबर्गी

5. जोंक विकर्षक (Leech repellent) :

जोंक से दूर रहने के लिये बिगोनिआ की पत्तियां तथा डंटल को पीस कर बदन में मलना फलदायक हैं जो आदिवासी लोगों की रोजमर्रा की अभ्यास में से है। गाय–भैंस की नाक में से भी बिगोनिआ को पीस कर रस डालकर जोंक निकाला जाता है।

बिगोनिआ सिक्किमेंसिस

भारत मे प्राप्त बिगोनिआ जातियों में से 23 जातियां सीमित क्षेत्री (endemic) हैं जिनमें से 10 से अधिक तो संकटग्रस्त (endangered) हैं। अधिक संकटग्रस्त (critically endangered) 5 जातियां ऐसी हैं जिन्हें प्ररूप संग्रह (type collection) के बाद दोबारा संग्रह नहीं किया गया। इन जातियों में से 18 को "रेड डाटा बुक" (Red Data Book, 1990) के अन्तर्गत किया गया हैं जिनमें से बिगोनिआ ब्रेविकोलिस (Begonia brevicaulis) और बिगोनिआ फ्रिक्सोफाइला (Begonia phrixophylla) को अन्तःराष्ट्रीय प्रकृति एवं प्राकृतिक सम्पदा संरक्षण संघ (International Union for Conservations of Nature & Natural Resources, IUCN) से प्रकाशित रेड लिस्ट (1999) के अनुसार विलुप्त (extinct) होने का संदेह जताया गया है। पर्यावरण प्रदूषण, प्रकृतावास का नाश आदि कारणों से बिगोनिआ तथा अनेक वानस्पतिक सम्पदा दिन प्रतिदिन विलुप्त होती जा रही है। इनकी सुरक्षा की हर कोशिश हमारी जिम्मेदारी हैं।

नमभूमि विविधता : वानस्पतिक सर्वेक्षण, समस्याएं एवं समाधान

एस. एल. गुप्ता
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

नमभूमि मानवजीवन का आधार है। परितंत्र की समस्याओं एवं उनके संरक्षण की बात आते ही इसके विभिन्न घटकों एवं जैवविधिता का स्मरण होने लगता है। इसी में से एक महत्वपूर्ण घटक नमभूमि (वेटलैण्ड) की समस्याओं एवं सर्वेक्षण जनित संरक्षण की तरफ सन 1987 से ही पर्यावरण एवं वन मंत्रालय का ध्यान केंद्रित है क्योंकि जहाँ एक ओर नमभूमियां पारिस्थितकीय संतुलन बनाए रखने में महत्वपूर्ण योगदान करती है, वही दूसरी ओर इनके संरक्षण की ओर उठाए गए कदमों से जैव विविधता का संरक्षण अपने आप हो जाता है। वर्तमान में नमभूमि के अस्तित्व को खतरा प्राकृतिक आपदाओं की अपेक्षा मानव जनित क्रियाओं से ज्यादा है। इन दोनों क्रियाओं का तुलनात्मक विवरण इस प्रकार है :

मानव जनित क्रियाएं

1. भूमि निर्माताओं एवं किसानों द्वारा अतिक्रमण
2. किसानों द्वारा सिंचाई हेतु अत्यधिक जल का दोहन
3. नमभूमि के तटीय क्षेत्रों को पाटकर कृषि हेतु विकास
4. गाद का भरना (सल्टेशन)
5. मत्स्य उत्पादन हेतु अत्यधिक शोषण
6. प्रदूषण
7. जल गुणवत्ता में नाइट्रोजन एवं फास्फोरस के कारण बदलाव
8. पर्यटन का दबाव

प्राकृतिक आपदायें

1. सूखा
2. तूफान
3. मृदाक्षरण
4. खर–पतवार
5. कम संख्या में प्रवासी पक्षियों का आगमन

अर्ध शहरी क्षेत्रों में नमभूमि को वेस्टलैण्ड की तरह उपयोग किया जाता रहा है जिसका ज्वलंत उदाहरण भोपाल (म.प्र.) शहर के बीचों बीच स्थित अपर लेक है।

इसके विभिन्न पहलुओं को जानने से पहले नमभूमि के बारे में जांनना आवश्यक है। विजयन (2003) के अनुसार नमभूमि जलरोध वाले वे क्षेत्र हैं जिनका उपयोग बिना उनके जीव विविधता महत्वों को कम करके किया जा सकता है। हालांकि यह परिभाषा संरक्षण के महत्व को नहीं दर्शाता है। इसके पूर्व सन् 1971 में रामसार सम्मेलन (ईरान) के अनुसार ''नमभूमि निचली सतह वाले दलदली, कच्छभूमि, पंकभूमि, पीटलैंण्ड अथवा जल के वे क्षेत्र हैं जो प्राकृतिक या कृत्रिम हो, जल से स्थायी या अस्थायी रूप से भरा हो, स्थिर अथवा बहता हुआ हो ताजा या लवणीय हो, अथवा समुद्री जल वाला नमकीन क्षेत्र जिसकी गहराई 6 मीटर से ज्यादा न हो।''

नमकीन क्षेत्रों को महत्व देने एवं परिभाषित किये जाने के कारण यह परिभाषा न हो सकी। फलस्वरूप संयुक्त राज्य मत्स्य एवं वन्यजीव संस्था ने सन 1979 में कोवारडिन द्वारा दी गई इस परिभाषा को लागू किया : ''स्थल एवं जलीय तंत्र के मध्य की वह भूमि जहां जल स्तर या तो उसके पास हो अथवा वह भूमि जो छिछले पानी से युक्त हो।''

पृथ्वी के कुल 56.4 प्रतिशत क्षेत्र में लगभग 950 नमभूमियां अंतर्राष्ट्रीय महत्व की है जो 101 देशों में लगभग 73.4 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्रफल में फैली हुई है। इनमें से लगभग 50 प्रतिशत बिना किसी संरक्षण, 22 प्रतिशत पूर्णस्वरूप संरक्षित, 10 प्रतिशत अल्प रूप से संरक्षित व बाकी वन संरक्षित क्षेत्रों में है। पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के वार्षिक प्रतिवेदन के अनुसार नमभूमि संरक्षण कार्यक्रम के अधीन सन् 2006 में भारत में कुल 94 नमभूमियां 24 राज्यों में अवस्थित हैं। इनमें 39 नई नमभूमि शामिल हैं जिनको पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने 2004-05 में राष्ट्रीय सूची में शामिल करने हेतु अभिनिर्धारित किया है। ये नमभूमि देश के लगभग 7.6 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्रफल में फैली हुई हैं। इनमें से 3.6 मिलियन हैक्टेयर देश के भीतरी एवं 4.0 हेक्टेयर तटीय क्षेत्रों में अवस्थित हैं।

नमभूमि में वानस्पतिक एवं जीव विविधता :

संजप्पा (2003) ने नमभूमि की स्थानिक एवं लुप्तप्राय वानस्पतिक प्रजातियों का विस्तृत विवरण दिया है। इनके अनुसार नमभूमि में पाई जाने वाली पादप कुलों में प्रमुख है :– बाल्सामिनेसी, लाइथरेसी, लेन्टिबुलेरिएसी, पोडोस्टीमेसी, एरेसी, साइपरेसी एवं पोएसी। एल्फ्रेड (2003) ने नमभूमि में कुल 22 जातियों के आवासीय प्ररूप को चिन्हित किया है। इनके अनुसार कुल 89451 जैविक जातियों में से लगभग 5 प्रतिशत (17853) नमभूमियों में पाए जाते हैं। इसी क्रम में चौधरी (2003) के अनुसार नमभूमियां 47 प्रतिशत कशेरूकीय प्राणियों एवं 25 प्रतिशत जलीय वनस्पतियों को प्रदर्शित करती हैं। इन जलीय वनस्पतियों में 17500 एंजियोस्पर्म, 2000 ब्रायोफाईट एवं शैवालों की प्रजातियां शामिल हैं। गुप्ता (1995) ने स्वच्छ जल जैसे नदी, झील, तालाबों आदि में पाये जाने वाले शैवालों का विस्तृत विवरण दिया है। इसके अनुसार शैवालों के 390 वंश की लगभग 4000 जातियां इन क्षेत्रों में पाई जाती हैं। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण वंशो के नाम इस प्रकार हैं–एनासिस्टिप, स्पाइरोगाइरा, वॉल्वाक्स, क्लेमाइडोमोनास, हाइड्रीडिकटियान, वाउचेरिया, कारा एवं निटेला आदि। इनके अलावा गुप्ता (1995) तथा राव एवं गुप्ता (1995) ने उन प्रदूषण संकेतक शैवालों का भी विस्तृत विवरण दिया है जो साइनोफाइसी, क्लोरोफाइसी एवं डाएटम के अंतर्गत आते हैं। देश के पूर्वी एवं उत्तर पूर्वी क्षेत्रों की महत्वपूर्ण झीलों में पाई जाने वाली नील हरित शैवालों का विवरण गुप्ता (2002) द्वारा दिया गया है। इनमें से कुछ प्रमुख हैं :–

चिल्का झील, उड़ीसा – *एनाबिना, लिम्बिया, माइक्रोकोलियस, आसिलेटोरिया, फारमीडियम*
साल्ट लेक, कोलकाता–*आसिलेटोरिया* की 7 प्रजातियां सिमप्लोका, एनाबिना
लोकतक झील, मणिपुर–*एनाबीना* की दो एवं *आसिलेटोरिया* की एक प्रजाति

पश्चिम बंगाल में हुगली (गंगा) नदी में किए गये एक सर्वेक्षण में औद्यौगिक अपशिष्टों का भी प्रभाव शैवालों की उपलब्धता पर हुआ है (गुप्ता एवं नायर 1987) । स्पष्ट है कि नमभूमि अपने आप में विस्तृत जीव विविधताओं को समेटे हुए है। अतएव इनके संरक्षण हेतु विभिन्न कार्यक्रमों पर जोर दिया गया है। पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा नमभूमि पर एक राष्ट्रीय समिति का गठन किया गया है जिसकी संस्तुतिओं के आधार पर देश में 40 नमभूमियों (इनमें 17 शहरी क्षेत्रों में हैं) के प्रबंधन, अध्ययन एवं संरक्षण हेतु पहचान की गई, उनमें से कुछ इस प्रकार से हैं–वूलर (जम्मू एवं कश्मीर), हारिके (पंजाब), केवलादेव, साम्भर (राजस्थान), सुखना (चण्डीगढ़), नलसरोवर (गुजरात), चिल्का (उड़िसा) इत्यादि। इसके अलावा 34 वायुशिफ (मेंग्रूव) क्षेत्रों को भी इसमें शामिल किया गया है जिनमें से सुंदरवन, महानदी डेल्टा, गोदावरी डेल्टा एवं भीतर कनिका प्रमुख है। पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा 2000-05 में विभिन्न नमभूमि की 7 अनुसंधान परियोजनाओं, कच्छ वनस्पतियों (मैंग्रूव) एवं मूंगे की चट्टानों (कोरलरीफ) के 13 प्रस्तावों को वित्तीय सहायता दी गई। इस संदर्भ में गुप्ता (1995) द्वारा कच्छ वनस्पति विविधता पर प्रस्तुत सामग्री अवलोकनीय है।

नमभूमि संरक्षण में आने वाली समस्याएं

नमभूमि के संरक्षण में कई ऐसी समस्याएं हैं जिनका समाधान संरक्षण पूर्ण करना अति आवश्यक हैं। इनमें से कुछ इस प्रकार से हैं :–

1. नमभूमि का वृहद उपयोग
2. नमभूमि के सीमावर्ती क्षेत्रों में लम्बित व्यवस्थापन पहचान
3. अंतर्देशीय नमभूमि अपघटक
4. पादप जातीय विशेष के अभिनिर्धारण में रूकावटें
5. बढ़ते शहरीकरण एवं औद्योगीकरण का दुष्प्रभाव
6. नमभूमि की विविधता पर विस्तृत जानकारी का अभाव

नमभूमि संरक्षण

भारत सरकार द्वारा निर्देशित कार्ययोजना के मूलभूत आधार बिन्दु निम्नवत हैं :

1. सर्वेक्षण एवं मैपिंग के आधार पर नमभूमि की स्पष्ट सीमा तैयार करना जिससे अतिक्रमण रोका जा सके।
2. संपदा सूची बनाने का कार्य एक बहु आयामी सदस्यों की संस्था द्वारा करना जिससे संरक्षण का ठोस आधार बनाया जा सके।
3. शोध, 'सर्वेक्षण', अध्ययन के बाद प्राप्त आंकड़ों का सूची बद्ध संग्रहण करना जिससे नमभूमि में प्रदूषण के साथ–साथ मानव जनित क्रियाओं आदि पर भी रोक लगाया जा सके।
4 नमभूमि के संग्रहण क्षेत्र में प्रवासी पक्षियों के आगमन एवं प्रवास की व्यवस्था कराना जैसा कि चिल्का झील के नलवन क्षेत्र में हुआ है।
5. शिक्षा के द्वारा स्थानीय लोगों में जागरूकता पैदा करना जिसमें गैर सरकारी संस्थाओं की भी सक्रिय भागीदारी हो सके।

भारत सरकार ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक सम्मेलनों में भाग लिया है। इनमें मनीला में दिसम्बर 1998 में आयोजित एशियन क्षेत्रीय संगोष्ठी तथा कोस्टारिका में मई 1999 में आयोजित सम्मेलन भी शामिल है। इस संदर्भ में गीर फाउण्डेशन की ओर से नमभूमि संरक्षण पर एक कार्यशाला गांधीनगर में फरवरी 2003 में आयोजित की गई।

इसके अलावा फरवरी, 2005 के दौरान भुवनेश्वर में एशियन नमभूमि संगोष्ठी का आयोजन किया गया जिसका उद्देश्य नमभूमियों के विवेकपूर्ण उपयोग करने के लिए सभी घटकों के मध्य सहयोग सृजित करना था। एशिया के रामसर पक्षों की एशियन क्षेत्रीय बैठक भी भुवनेश्वर (फरवरी 2005) में आयोजित की गई जिसमें कुल 43 देशों ने भाग लिया। नमभूमि के संरक्षण हेतु पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा शत प्रतिशत अनुदान के रूप में सहायता दी जाती है। इन क्रियाओं में आंकड़ों का संग्रहण, समस्याओं की पहचान करना, प्रदूषण की समस्या दूर करना, खर पतवार का नियंत्रण, वन्य जीव संरक्षण, मत्स्य उद्योग का सतत विकास, नमभूमि पर्यावरण के प्रति जागरूकता पैदा करना, नमभूमि परितंत्र का अध्ययन तथा इसके विभिन्न पहलुओं पर शोध कार्य करना आदि शामिल हैं।

हाल ही में अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं आई. यू. सी. एन., बार्ड इंटरनेशनल, विश्व वन्य जीव कोष द्वारा संयुक्त रूप से आयोजित पक्षकार सम्मेलन–9 बैठक की पैनल चर्चा में मारत ने भी भाग लिया जिसमें निर्णय लिया गया कि भारत में पहले से घोषित रामसर स्थलों के मूल्यांकन पर बल दिया जाए। सूची में और नाम जोड़ने के बजाय उनकी परिस्थिति की समीक्षा करने पर जोर दिया गया। इसके अलावा संरक्षण प्रक्रिया में समुदायों की सहभागिता तथा नमभूमियों के पास में रहने वाले लोगों की आजीविका को बढ़ाने के उपाय पर भी जोर दिया गया।

उपरोक्त के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय नमभूमि संरक्षण योजना के अंतर्गत राज्य एवं जिला स्तर पर नमभूमि की पहचान के अलावा ग्राम स्तर पर भी योजना को बढ़ावा देना होगा जिससे स्थानीय समुदाय की भागीदारी सुनिश्चित हो सके। इस हेतु एक बहु सदस्यीय प्राधिकरण की स्थापना आवश्यक है जिसमें सभी सम्बद्व विभागों जैसे सिंचाई, पंचायत, वन के अलावा गैर सरकारी संगठनों के प्रतिनिधि शामिल हो जिससे संरक्षण की महत्ता एवं आवश्यकता दोनों की पूर्ति हो तभी हम सतत विकास के साथ नमभूमि को बचा पाएंगे।

———

भारत के कुछ विशेष संकटग्रस्त एवम् लुप्तप्राय पौधे

पी. लक्ष्मी नरसिमहन एवं नन्दलाल तिवारी
केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा

एबुटिलन राणाडेई

गोवार्टस (2001), ब्रामवेल (2002) के अनुसार विश्व में लगभग 4,22,000 बीज पत्रीय पौधे विद्यमान हैं। बाल्टर व गिलेट (1998) के अनुसार लगभग 34000 जाति के पौधे विश्व में संकटग्रस्त हैं तथा लुप्त होने के कगार पर है, जब कि ब्रामवेल (2002) के अनुसार लगभग 75800 पुष्पीय पौधे संकटग्रस्त हैं। आई यू. सी. एन. रेड डाटा सूची 2006 के आधार पर विश्व में लगभग 11900 सूचीबद्ध संकटग्रस्त पौधों में भारत के लगभग 365 पौधे हैं। जब पौधों के प्राकृतिवास पर प्रतिकूल भौगौलिक परिस्थितयाँ व जलवायू का दुष्प्रभाव, अधिक दोहन, बाह्य दबाव, भूमिक्षय इत्यादि कुप्रभाव एवम् स्वयं के पैत्रिक गुण स्वरूप प्रजनन व प्रसारण में कमी हो जाती है जिसके फलस्वरूप पौधे संकटग्रस्त हो जाते हैं। कार्तीकेयन (2007) के अनुसार भारत में लगभग 17100 जाति के पुष्पीय पौधे हैं जिसमें नायर (1996) ने लगभग 5,725 जाति के पौधों को ''स्थानिक'' सूची बद्ध किया है अर्थात जो एक विशेष भौगौलिक प्राकृतिवास, वातावरण, जलवायु में ही फूलते एवम् फलते है, तथा एक सीमित क्षेत्र में ही पाये जाते हैं। भारत में कुल लगभग 1700 जाति के संकटग्रस्त पुष्पीय पौधे हैं। भारत अधिकतम जैव विविधता वाले देशों में विश्व में 17 वां स्थान रखता है। विश्व के 34 सघन जैव विविधता वाले, वर्गीकृत क्षेत्रों में भारत में तीन क्षेत्र हिमालय क्षेत्र, भारत-म्यांमार तथा भारत के पश्चिमी समुद्र तट श्री लंका क्षेत्र भी आता है। जैन व शास्त्री द्वारा प्रकाशित स्टेट आफ दी आर्ट रिपोर्ट (1980) में कुल 134 संकटग्रस्त पौधों का वर्णन है, जैन व शास्त्री (1984) में कुल 125 संकटग्रस्त पुष्पीय पौधों को रेड डाटा सीट्स बुक खण्ड-1 में प्रकाशित किया है। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण द्वारा रेड डाटा बुक का प्रकाशन नायर व शास्त्री द्वारा 1987,1988 व 1990 में किया गया जिनमें 622 संकटग्रस्त पौधे उल्लेखनीय हैं।

बार्लेरियागिब्सोनिआइडिस व टेक्सोकार्पस कोंकेनेन्सिस

जैव विविधता के विनष्टीकरण का मुख्य कारण प्रकृतिवास को क्षति पहुँचाना विशेष कर उनका आर्थिक दृष्टिकोण स्वरूप

गहन दोहन, संपदा को बहुआयामी विकास कार्य जैसे खान हेतु खनन, बाँध, सड़क, नहर एवम् वन बिजली जैसी परियोजनाओं हेतु नष्ट करने से पौधों पर संकट मंडराता नजर आ रहा है जिसके चलते या तो ये अल्प संख्या में होते जा रहे हैं या फिर कालान्तर में ये पौधे संकटग्रस्त होकर बिलुप्त होने के कगार पर पहुँच जाते है। भारत के कुछ विशेष संकटापन्न एवम् लुप्तप्राय पौधों को तालिका में दर्शाया गया हैं।

क्रम सं	जातियाँ	कुल	व्याप्ति	स्थिति
1	अबुटिलान रानडिई	मालवेसी	आम्बाघाट, राधानगरी (कोल्हापुर जिला) शिलिम मुल्सी, राजगढ वेल्हे व टोनी वेल्हे (पूना जिला) बसोरा किला (सतारा जिला) व अम्वोली (सिन्ध दुर्ग जिला) महाराष्ट्र	संकटापन्न, लुप्त अथवा सम्भवतःलुप्त।
2	आकटी नोडाप्ने बाउर्नीए	लाउरेसी	पलानि पर्वत, कोडाई कनाल मदुरै जिला (तमिलनाडू)	संकटग्रस्त, प्ररूप (1897) के बाद संग्रह नहीं।
3	आकटीनोडापने लानाटा	लाउरेसी	नीलगिरि (तमिलनाडु)	संकटग्रस्त, प्ररूप (1884) के उपरांत समूह नही।
4	एनोएक्टों चिलुस राटुन्डि	आर्किडेसी	मदुरै जिले की उच्च पर्वत मालाएं (तमिलनाडू)	संकटग्रस्त, सम्भवतः लुप्त
5	एफिल्लोर्किस गोलानाइ	आर्किडेसी	टेहरी-गढ़वाल (उत्तरांचल)	संकटग्रंस्त, सम्भवतः लुप्त
6	आर्डीसीआ व्लाटेरी	मीर्सीनेसी	ट्रावनकोर (केरल) मदूरै की उच्च पर्वतमालाए वकालाक्काड मुन्डान्थराई तिरुनेलवेली (तमिलनाडू)	अति संकटग्रस्त
7	बार्लेरिया गिब्सोनिओइडस	एकेन्थेसी	कतरज घाट(पूणे जिला) गोडावली पंचनानी से उमील सतारा जिला महाराष्ट्र	संकटापन्न, दुर्लभ
8	बिगोनिया अलीसीआई	बियोनियेसी	इदूकी (केरल) व देवलारोला नीलगिरि (तामिलनाडू)	सम्भवतः लुप्त
9	बेन्टेन्किआ निकोबारिका	रटीकेशी	ग्रेट निकोबार द्वीप	संकटग्रस्त, नवीन संग्रह नही
10	बिगोनिया अन्नामालायाना	बिगोलियेसी	अन्नामलाई पर्वत–कोयम्बटूर के सन्निकट (तमिलनाडु)	सम्भवतः लुप्त (प्ररुप संग्रह 1864 के उपरान्त पुनः नही)
11	बिगोनिया ब्रेविकाइलिस	बिगोनियेसी	खासी तराई (मेघालय)	संकटग्रस्त या सम्भवतः लुप्त (प्रारुप संग्रह 1864 से ही प्राप्त)

क्रम सं	जातियाँ	कुल	व्याप्ति	स्थिति
12	बिगोनिया कानाराना	बिगोनियेसी	मेंगालूर, कनारा (कर्नाटक)	संकटग्रस्त, सम्भवतः लुप्त (प्ररुप संग्रह से केवल ज्ञात)
13	इबगोनिया वाट्टीई	बिगोनियेसी	नागा पर्वतमाला (नागालैण्ड)	संकटग्रस्त, सम्भवतः लुप्त(केवल प्ररुप संग्रह से ही ज्ञात)
14	बुकनानिया बार्वेरइ	एनाकार्डिएसी	नाडाराई, नेडुमान्गेडु तालुक पालोड, तिरुवनन्तपुरम (केरल)	अति संकटग्रस्त
15	कारुम विल्लौसुम	एपिएसी	रामनगर सैन्डस्टोन पर्वतमाला (बिहार) उत्तरी चम्पारण	सम्भवतः लुप्त (जंगल मे) प्ररुप के बाद पुनः संग्रह नही हो सका)
16	कारेक्स रेपान्डा	साइपरेसी	मेघालय	सम्भवतः लुप्त
17	कान्ड्रिल्ला सेटुलोसा	स्टेरेसी	जम्मू व काश्मीर	विरल, दुर्लभ (मात्र प्ररुप से ही ज्ञात)
18	सिस्सुस स्पेकटाबिलिस	वाइरेसी	सिक्किम का तराई, सिलगोड़ पन्चकित (पश्चिम बंगाल)	संकटग्रस्त 1875 के बाद कोई संग्रह नहीं
19	सीलोगाईन ट्रइरेलराइ	अर्किडेसी	सिक्किम – हिमालय	सम्भवतः लुप्त
20	क्राइनम ब्राकीनेया	एमेरिलिडेसी	कास, महाबलेश्वर (काटसप्वाइन्ट) सतारा जिला महाराष्ट्र	संकटापन्न
21	क्राइनम बुडरोवई	एमेरिलिडेसी	काट्स प्वाइन्ट (महाबलेश्वर) सातारा जिला	संकटापन्न, सम्भवतः लुप्त
22	डेयेइक्सीआ सीयलेन्सिस	पोएसी	शिमला (हिमाचल प्रदेश)	सम्भवतः लुप्त
23	डेस्यास विटिडीफ्लोरुस	एन्नोनेसी	आनामालाई (कोयम्बटूर) (तमिलनाडू) पीरमेडे, इदुक्की, पोपपारावारामें बिकुलम वन्यजीव अभयारण्य पालक्क जिला बशोलया त्रिसुर जिला (केरल)	लुप्त (1903 के बाद पुनः संग्रह नही)
24	इरिया क्राइसिस रंगाचराई	पोएसी	पाटूकाटा–नीलगिरि जिला तामिलनाडु	सम्भवतः लुप्त

क्रम सं	जातियाँ	कुल	व्याप्ति	स्थिति
25	इडमेनिया सिंगम्पाट्टिआना	मिर्टेसी	सिंगमपट्टी पर्वतमाला व पापनाशम पर्वत, तिरूनेलवल्ली (तमिलनाडू)	संकटग्रस्त, सम्भवतः लुप्त
26	इउजेनिया अर्जेन्टिया	मिर्टेसी	कुशीचीयर माला, वाइनाँड जिला केरल	संकटग्रस्त, सम्भवतः लुप्त
27	इउनीमुस सेराटीफालियस	सेलास्ट्रेसी	नीलगिरि व आनामलाई पर्वत (तमिलनाडू)	संकटग्रस्त, सम्भवतः लुप्त
28	प्रेरिया इण्डिका डाल्जेल	एपोसाइनेसी	गन्धा जलप्रपात (अहमद नगर जिला) गिम्बाकेश्वर अंजनेरी पर्वत (नासिक जिला, शिवनेरी किला, जुन्तारमुल्सी, गैगोरवाड़ी पिपरीझील, बजीरगढ़, पुरंधर (पूणे जिला) शिबधगिल (राजगढ़ जिला) महावालेश्वर में स्थित काटस प्वाइंट, सज्जानगढ़, सतारा जिला, महाराष्ट्र	संकटापन्न लुप्त
29	हाप्लोथीस्मीआ एकसान्नुलाटा	वर्मानियेसी	पारम्बिकुल्म वन्यजीव अभयारण्य (केरल)	लुप्त
30	हेडियोटिस हिर्सुटिस्सिमा	रुबियेसी	नीलगिरि (तामिलनाडू)	सम्भवतः लुप्त
31	हिल्डेगार्डिया पोपुलीफोलिया	स्टर्कुलियेसी	कोरोमण्डल का समुद्रतट, जिगाडी पर्वत (नागरी पर्वत), कड़प्पा (आन्ध्रा प्रदेश) धर्मापूरी), कुल्लू कुरीकी (कलरायनस) दक्षिण आर्कटि (तमिलनाडू)	लुप्तप्राय
32	हबार्डिया हेप्टानेउरान	पोएसी	श्रावस्ती नदी का मार्सूया जलप्रपात, नार्थ कतारा (कर्णाटक) तिलारी घाट, कोल्हापुर जिला (महाराष्ट्र)	सम्भवतः लुप्त
33	इलेक्स गार्डनेरिआना	एक्वि फालिएसी	नीलगिरि का सिम्पारा घाट (तमिलनाडू) व मन्नावन शौला, इस्की जिला केरल	सम्पूर्णतया संकटग्रस्त (प्ररूप 1859 के बाद संग्रह नही)
34	इम्पाटियन्स नीलगिरिका	बालसमिनेसी	नीलगिरि (तमिलनाडू)	संकटग्रस्त, प्ररुप 1931 के बाद कोई संग्रह नही
35	इम्पाटियन्स अनाइमुडिका	बालसमिनेसी	इदुकी (केरल)	संकटग्रस्त, सम्भवतः लुप्त प्ररुप 1933 के उपरांत कोई संग्रह नही

क्रम सं	जातियाँ	कुल	व्याप्ति	स्थिति
36	इम्पाटियन्स जॉनी	बालसमिनेसी	कालार, इदूकी (केरल)	संकटग्रस्त या सम्भवतः लुप्त, प्ररुप 1931-37 के पश्चात कोई संग्रह नही
37	इम्पाटियन्स मैक्रेकार्पा	बालसमिनेसी	देदीकोलम, इटूकी (केरल)	संकटग्रस्त या सम्भवतः लुप्त, प्ररुप 1910 के बाद संग्रह नही
38	इम्पाटियन्स मुन्नारेन्सिस	बालसमिनेसी	मुन्नार कन्नियामलाइ इदुकी (केरल)	संकटाग्रस्त या सम्भवतः लुप्त1931-37 (प्ररुप के उपरांत संग्रह नही हो सका
39	इन्डोट्रिस्टिका तिरुनेलवेलियामा	पोडास्टेमेसी	तिरुनेलवेली पर्वत (तमिलनाडू)	दुर्लभ व नष्ट होने के पथ पर
40	कोर्थालसिआ रोगसई	एरीकेसी	दावेलोक, बुर्मानुल्लाह (दक्षिण अण्डमान द्वीप)	दुर्लभ
41	लीगुस्टिकम अल्बो-अलाटुम	एलिएसी	छोटानागपुर, नेतरहाट पर्वतमाला राँची (बिहार)	समक्भवतः लुप्त 1940 के बाद कोई संग्रह नही
42	मधुका इनसीग्नीस	सैपोटेसी	मैंगालूर, पाडुगांव, काड़प के सन्निकट उडुप्पी (दक्षिण कनारा कर्नाटक)	सम्भवतः लुप्त
43	मधुका बोइर्डील्लोनी	सैपोरेसी	अरिन्कारु, शोन्दूर्नी, कट्टालपरा वन्यजीव अभयारण्य। कोलम जिला व बेलअमाईमाला व वाजहनी त्रिसूर जिला (केरल)	संकटग्रस्त, सम्भवतः लुप्त
44	मिटिओरोमीर्टुस लाइनाडेन्सिस	इमर्टेसी	बाइनड थीर्थुन्डीयाला पेरियो (केरल) नीलगिरि पर्वत (तमिलनाडू)	संकटग्रस्त
45	नेउराकान्धुस नीसीआनुस	एकान्थेसी	नार्थआकटि (तमिलनाडू)	संकटग्रस्त या सम्भवतः लुप्त। प्ररुप के बाद संग्रह नही

क्रम सं	जातियाँ	कुल	व्याप्ति	स्थिति
46	नोथापेगिआ आइरीओ-फूल्वा	एनाकार्डिएसी	तिरुनैलवल्ली पर्वत (तमिलनाडू) व रोजमाला सेन्डुसनी वन्यजीव अभयारण्य कोलम जिला (केरल)	संकटग्रस्त, प्ररुप के बाद संग्रह नही
47	आफियोराइजा वार्नेसीई	सबिएसी	इदुकी (कालार) केरल	सम्भवतः लुप्त। अति लुप्तप्राय
48	आफियोराइजा ब्रुनोन्यिस	सबिएसी	पारम्बिकुलम वन्यजीव अभयारण्य, केरल	सम्भवतः लुप्त
49	आफियोराइजा पाईकारेन्सिस	सबिएसी	नीलगिरि (तमिलनाडू)	सम्भवतः लुप्त
50	पावेटा बाइटीआई	सबिएसी	नीलगिरि, अनामलाई पर्वत (तमिलनाडू)	सम्भवतः लुप्त, बिशेष लुप्तप्राय,
51	पिनान्गा आन्डामानेन्सिस	एरीकेसी	अन्डमान द्वीप	दुर्लभ
52	पिंम्पीनेला इबालुय	एपिएसी	नागापर्वत श्रेणी (जाकृपो)	सम्भवतः लुप्त, प्ररुप के उपरांत पुनः संग्रह नही हो सका
53	पिंपीनेला पुलेनेएन्सिस	एपिएसी	पलती पर्वतमाला (तमिलनाडू) इदूकी जिला (केरल)	सम्भवतः लुप्त
54	पिंपीनेला टोंगलोमन्सिस	एपिएसी	सिंगालीला पर्वतमाला दार्जिलिंग (सिक्किम हिमालय)	लुप्तप्राय, 1857 तथा 1868 के बाद संग्रह नहीं
55	प्लियोनी लागेनारीया	आर्किडेसी	मेघालय	सम्भवतः लुप्त
56	प्लेवट्रैन्युस बिशोपियटानुस	लैमिएसी	पलानी पर्वत, कोड़इकनाल (तमिलनाडु)	सम्भवतः लुप्त, मात्र प्ररुप संग्रह 1899 व 1901 से ही ज्ञात
57	पोगोस्टेमॉन निलगिरीकुस	लेमिएसी	नीलगिरि पर्वत (तमिलनाडू)	संकटग्रस्त, 1923 के बाद कोई संग्रह नही

क्रम सं	जातियाँ	कुल	व्याप्ति	स्थिति
58	पोगोस्टेमॉन पाजुडोसुस	लैमिएसी	नीलगिरि पर्वत (तमिलनाडू)	संकटग्रस्त, 1833 व 1885 के बाद संग्रह नही
59	सारोरांइमा ग्रान्डीफ्लोरा	एलीनेसी	कट्टा लापारा सैंडुरूमी वन्यजीव अभयारण्य कोन्नीवन कोलम जिला (केरल)	संकटग्रस्त या सम्भवतः लुप्त
60	सैलेसिया मालाबारिका	एलास्ट्रेसी	कुर्ग (कर्नाटक) व त्रावनकोण पर्वत माला (केरल)	संकटग्रस्त, सम्भवतः लुप्त
61	सेनेसिओं मेपुराइ	एस्टेरेसी	कीम्योआओनाड़ी पर्वतमाला (कर्नाटक)	दुर्लभ, केवल प्ररुप संग्रह से ही ज्ञात
62	स्टर्कुलिया खासियाना	स्टर्कुलिएसी	खासी पर्वत माला, मेघालय	सम्भवतः लुप्त, 1877 के उपरांत कोई संग्रह नही
63	सीजीजियम पालघाटेन्स	मिर्टेसी	पालघाट पर्वत मालाएं पारम्बी कुलम वन्यजीव अभयारण्य (केरल)	सम्भवतः लुप्त
64	सीजीजियम बाउर्डील्लोनी	मिर्टेसी	मूकीस्टान (तिरुवन्तपूरम जिला)व काँलीरोर्पोले (पैदान जिला) केरल,	सम्भवतः लुप्त संकटाग्रस्त
65	टोक्सोकार्पुस कोकान्यिस	स्पोसाईनेसी	बाबाबूडान पर्वत शिरवर (चिकमंगलर जिला व आन्शी राष्ट्रीय, उत्तर कन्नड़ा (कर्नाटक)	संकटापन्न
66	उटलेरिया सालीसीफोलिआ	पेरीप्लाकेसी	अनामलाई पर्वत कोयम्बटूर (तमिलाडू) इरूम्बुपालम नेलीएम पेकी व एन्नापास्डी, पारमबिलुकम वन्यजीव अभयारण्य पल्लकड (पालघाट) जिला (केरल)	संकटग्रस्त
67	उबारिआ उउसीनाश	एलोनेसी	शुमसूट फारेस्ट, रुसेलकोन्डा पर्वत, गंजम (ओडीसा)	संकटग्रस्त, प्ररुप 1880 के बाद संग्रह नही
68	वान्डा वाइटाई	आर्किडेसी	नीलगिरि पर्वत (तमिलनाडु)	सम्भवतः लुप्त
69	बर्नोनिआरेकुमा	एस्टेरेसी	अनामलाई (तमिलनाडु)	संकटग्रस्त सम्भवतः लुप्त
70	बेन्डलान्डिआ अल्गुस्टीकोलिआ	सबिएसी	कोर्टालम व तिरुनेलवेली (तमिलनाडु)	सम्भवतः लुप्त
71	जेउकसाने पुलचरा	आर्किडेसी	लाचुंगघाटी (दक्षिण सिक्किम व खासी पर्वत (मेघालय)	संकटग्रस्त, सम्भवतः लुप्त

अबुटिलांन रानाडीई

क्राइनम वुड्रोई बेकर

उटलेरिया सलीसीफोलिया

क्राइनम ब्रेकिनेमा

हाप्लोथीस्मीया एकसन्नुलाटा

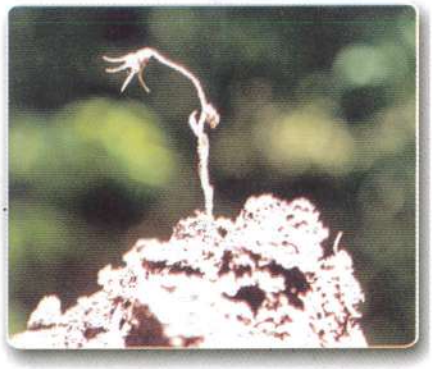

हाप्लोथीस्मीया एकसन्नुलाटा

डेसमोस विरिडीफ्लोरस

इलेक्स गाडेनेरियाना

हाप्लोथीस्मीया एकसन्नुलाटा

फ्रेरिया इन्डिका डाल्जेल

फ्रेरिया इन्डिका

सागेराइया ग्रान्डीफ्लोरा

यूजीनिआ अजेलन्टिया

मधुका बोउर्डीलोनी

मधुका बोउर्डीलोनी

पिम्पीनेला पुलेनेएन्सिस

हबार्डिया हेप्टानयुरान

फ्रेरिया इन्डिका डाल्जेल

हबार्डिया हेप्टानयुरान

यूजीनिआ अजेलन्टिया

नोथोपेगिया आइरीओ-फुल्वा

सीजीजियम पालघाटेन्स

हिल्डेगार्डिया पोपुलीफोलिया

मिटिओरोमीर्टुस लाइनाडेनसिस

उटलेरिया सलीसीफोलिया

हिल्डेगार्डिया पोपुलीफोलिया

टोक्सोकार्पुस कोंकानीयस

सीजीजियम पालघाटेन्स

टोक्सोकार्पुस कोंकानीयस

क्राइनम ब्रेकिनेमा

या रमणीय पुष्प जैसे सर्पगंधा, मिश्मीतीता, अतीस, कुछ वन बैगन, कुटली, रेवन्द चीनी, जटामांसी ब्रह्मकमल एवम् आर्किड समूह इत्यादि का निर्यात भी प्रतिबंधित कर दिया गया हैं। इसके अलावा वन संपदा को बचाने के लिये कई तरह के अध्यादेश वन व पर्यावरण मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा पारित किये गये है जिससे कोई भी किसी प्रकार का पौध व्यापार, औद्योगिक प्रतिष्ठान तथा परियोजनाओं को स्थापित करने से पूर्व अनुमति प्राप्त करना नितान्त आवश्यक हो गया हैं।

उपरोक्त प्रकार के पौधों का संरक्षण, प्रसारण, प्राकृतिवास से संग्रहकर वनस्पति उद्यान तथा प्रायोगिक उद्यानों में आधुनिक ढंग से तथा ऊतक संवर्धन विधि द्वारा किया जाता है जिसमें उनकी संख्या में वृद्धि के साथ-साथ विनाश से रक्षा हो सके।

सुझाव : विरल, संकटग्रस्त, लुप्तप्राय पौधो के संरक्षण व विकास हेतु उनका सही आकलन करना नितान्त आवश्यक हो जाता है। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण बड़ी ही गंभीरता पूर्वक आंकलन, सूचीबद्ध तथा प्रकाशन समय-समय पर कर रहा है। भारत सरकार का वन एवम् पर्यावरण मंत्रालय इसके लिये ''जहाँ है जैसे की स्थिति'' रखने हेतु बायोस्फीयर रिजर्व, राष्ट्रीय उद्यान, राष्ट्रीय अभयारण्य व पावन वन निर्धारित व घोषित किया है जिससे मानव प्रवेश वर्जित है, जिससे पौधों को बाहरी (बाह्य) तथा अंदर किसी भी प्रकार की क्षति नही हो सके। औषधीय पौधे जिनका विशेष दोहन उनके औषधीय गुण स्वरूप

क्राइनम वुडरोवई

पर्यावरण बचाना है धर्म हमारा।
वृक्षरोपण करना है कर्म हमारा।

वृक्षरोपण धर्म महान।
एक पेड़ सौ पुत्र समान।।

चक्रसिला वन्यजीव अभयारण्य : एक दृष्टिकोण

रनजित दैमारी एवं सन्ध्याज्योति फुकन
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

चक्रसिला वन्यजीव अभयारण्य का एक दृश्य

चक्रसिला वन्यजीव अभयारण्य असम राज्य के पश्चिमी कोकराझार जिले में स्थित है। असम सरकार ने इसकी स्थापना सन् 1994 जुलाई 14 को की थी। यह अभयारण्य भौगोलिक 26.11° उत्तरी अक्षांश तथा 90.41° पूर्वी देशान्तर के बीच स्थित है जिसका कुल क्षेत्रफल 45.658 वर्ग कि.मी. है। कोकराझार शहर के दक्षिणी ओर लगभग 10 कि.मी. दूरी पर स्थित है यह अभयारण्य जिसके पश्चिमी तरफ हैं पश्चिम बंगाल और दक्षिण में धुबरी जिला।

यह अभयारण्य मुख्यतः एक पहाड़ है जिसकी ऊँचाई समुद्र तल से 250 मीटर से 450 मीटर तक है। पूर्वी हिमालय, जिसे विश्व के जैव विविधता का तप्तस्थल माना जाता है, इसी के अंतर्गत भूतान पहाड़ के कुछ ही दूरी पर दक्षिणी भाग में यह अभयारण्य स्थित है। इसलिए पादप भूगोल की दृष्टि से इस अभयारण्य में एक विशिष्टता पायी जाती है। भारत के पश्चिमी घाट विश्व के अन्य एक प्रसिद्ध जैव विविधता का तप्तस्थल है।

इस पहाड़ी अभयारण्य के दोनों तरफ हैं दिपलाई और धिर झील जो इस अभयारण्य की सुन्दरता बनाये रखे है। दिपलाई झील एक पर्यटक का स्थान है जहाँ विभिन्न प्रान्त के लोग इस अभयारण्य की प्राकृतिक सुन्दरता को देखने आते हैं। इस अभयारण्य के अन्य मुख्य स्थान हैं भालुकझरा, जरनाग्रा, सिखिसिख्ला, बावखुंग्री शिखर, दिबिल थाकुर शिखर, दानदुफुर, गसाइ भिता, तिलतिला, दामोदर, सालगसा आदि।

असम राज्य का यह एकमात्र ऐसा अभयारण्य है जिसमें मानव निवास हैं। इस अभयारण्य के भीतर लगभग 20 गाँव हैं और यहाँ के लोग पूरी तरह इस अभयारण्य पर निर्भर है। यहाँ रहने वाले लोगों में से जनजाति लोग जैसे बोड़ो, राभा, गारो, राजबंसी आदि प्रधान हैं। यहाँ के लोग वन के भीतर रहने के कारण आधुनिक औषधियों के बारे में इतनी जानकारी प्राप्त नहीं होती जिसके कारण छोटी मोटी बीमारियाँ या महामारी में औषधीय पेड़ का इस्तेमाल करते हैं। इसलिये इसकी वनस्पति और लोगोंके बीच एक परस्पर संबंध है। औषधीय और आर्थिक महत्व के पेड़ पौधों के बारे में ये लोग पूरा ज्ञान रखते हैं और इसलिये यह जगह लोक वनस्पति के अध्ययन का एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

वनस्पतिक सर्वेक्षण :

चक्रसिला वन्यजीव अभयारण्य में वानस्पतिक सर्वेक्षण कार्य अब तक पूरी तरह से नहीं हो पाया है।इसलिये अभयारण्य का वानस्पतिक सर्वेक्षण एवं अध्ययन करना अत्यावश्यक है। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग के प्रस्तुत लेखक सन् 2006 से इसका सर्वेक्षण कर रहे हैं जहां से विभिन्न प्रकार के उपयोगी पौधे पाये गये हैं। असम वन्यजीव विभाग और स्थानीय गैर सरकारी संस्थान द्वारा भी इस अभयारण्य का सर्वेक्षण किया गया हैं लेकिन इसकी वनस्पति डाटा अपूर्ण है। विभिन्न प्रकार के ओषधीय, आर्थिक सामर्थ्य, सजावटी एवं दुर्लभ जातियों के पौधों से भरपूर है यह अभयारण्य। वनस्पति विज्ञानियों, जीव विज्ञानियों अैर भूगर्भ विज्ञानियों के लिये अध्ययन का केंद्र है यह अभयारण्य।

वनस्पति :

चक्रसिला वन्यजीव अभयारण्य के वनों को निम्नलिखित वर्गो में बाँटा जा सकता है :

1. **उष्णकटिबन्धीय अर्धसदाहरित वन :** यह वन समुद्र तल से 300 मीटर से 450 मीटर की उँचाई तक पाये जाते हैं। इस वन में पाई जानेवाली मुख्य वनस्पतियाँ हैं टर्मिनेलिया बेलिरिका, स्तारकुलिया भिलसा, फाइकस बेंगालेनसिस, फाइकस लेभिस, दिलेनिया पेन्टागाइना, कसतास स्पेसियसस, बितनेरिया एसपेरा, इलियकरपस टेकट'रियस, दाइस'जाइलम बाइनेकटेरिफेरम, पेन्देनस फरकेटस, मेल'टस फिलिपेनसिस, गारसिनिया लेनसिफ'लिया, मेल'सिया करकरिफलिया, ग्लाइकसमिस पेन्टाफाइला, टारपिनिया नेपालेनसिस, एरिथ्रिना फुसका, एलबिजिया लुसिदा, साइक पिस ग्रिफिथियाना, मिलेटिया पेकिकरपा, भिलेब्रुनिया इनटेग्रिफलिया, एरियपसिस पेलटेटा, नारभिलिया अरागवाना, पेलियसेनथ'स तेता, फ्राइनियम केपिटेटम, एरिप्ट'लकिया रक्सबरधियाना आदि।

2. **उष्णकटिबन्धीय पर्णपाती साल वन :** इस वन की उँचाई समुद्र तल से 150 मीटर से 200 मीटर तक होते हैं। इस वन मे पाई जानेवाली प्रधान वनस्पतियाँ हैं सरियारबसता, लेजरस्त्रमिया रेजिना, बेरितनिया एकुतंगुला, केरिया अरबरिया, सिमा वालिसि, काइदिया केलिसिना, एमपेल'सिसस बरबेता, लिया एसपेरा, सेमेकरपस एनाकरडियम, बुटिया पारभिफ्ल'रा, देसम'डियम गंगेटिकम, इउरेरिया रुफेसनस, टाइफनियम ट्राइल'बेटम, बसेनबर्जिया लंगिफ्ल'रा, एनजेलहारडिया स्पिकेटा, कुयेरकस लेनसिफलिया आदि।

3. **अनूप वन :** इस वन में पाई जाने वाली प्रधान वनस्पतियाँ हैं पलिगनम अरियसनटल, मन'करिया हेसतेता, आइप'मिया लिनिफलिया, आइप'मिया एकुवाटिका, अलपिनिया एलुघास, लुद उइजिया प्रसट्रेता, हाड्रसेरा ट्राइफल'रा, अबसेकिया नेपालेनसिस, ट्रापा नेतेनस आदि।

4. **घासवन :** इस वन में पायी जाने वाली प्रधान वनस्पतियाँ हैं साइपरस कमप्रेसस, बालबस्ताइलिस बारबेता, इमपेरेता सिलिनड्रिका, पेनिकम हिउमिदराम, सेक्करम नारेंगा, अरून्द दनेक्स, फिमब्रिस्ताइलिस दाइकतमा, माइकस्तेजियम सिलियेटम, पेसपेलिडियम पलेभिडम आदि।

इसके अलावा औषधीय पौधे जैसे हलेरहेना पिउबेससनस, एब्रमा अगसता, अलस्ट'निया स्कलारिस, एन्द्रग्राफिस पेनिकुलेता, इलिफेन्ट'पस स्केबर, अर'जाइलम इन्दिकम, राउलफिया सरपेन्टिना, एकाइरेनथस एसपेरा, क्लर'फाइटम अरुनदिनेसियम और आर्थिक महत्व के पोधे जैसे तेकटना ग्रानदिस, मेलिना अरबरिया, टरमिनेलिया अरजुना, तुना सिलियेटा आदि भी इस अभयारण्य में पाये जाते हैं।

वन्यजीव :

यह अभयारण्य गोल्डेन लंगूर का मुख्य निवास है। पूरे असम में पश्चिमी कोकराझार जिले यानी चक्रसिला वन्यजीव अभयारण्यं में ही गोल्डेन लंगूर अधिकतम पाये जाते हैं। इस अभयारण्य को स्थापित करने का प्रमुख उद्देश्य है गोल्डेन लंगूर का संरक्षण करना। स्थानीय, देशी या विदेशी पर्यटकों के लिये गोल्डेन लंगूर यानी यह पहाड़ी अभयारण्य एक आकर्षण बन गया है। अन्य वन्यजीव जैसे बाघ, भालू, अजगर, बंदर, लोमड़ी और पक्षी जैसे बुलबुल, तोता, मैना आदि भी इस अभयारण्य में पाये जाते हैं।

संरक्षण :

वनस्पति एक प्राकृतिक सम्पत्ति है और इसलिये इसका संरक्षण करना या बचाये रखना आवश्यक है। पेड़ पौधें न केवल मनुष्य के लिये उपयोगी होते हैं वरन पूरी पृथ्वी के जीव-जन्तुओं को जीवन का आधार प्रदान करते हैं।

चक्रसिला वन्यजीव अभयारण्य की मुख्य समस्या है इसके बीच रहने वाले लोग जो इस अभयारण्य के विनाश का एक प्रधान कारण बन गये हैं क्योंकि ये पूरी तरह से यहाँ के वनों व वनस्पतियों पर निर्भर है। इन लोगों का दिन प्रतिदिन बढ़ता अतिक्रमण इसके अस्तित्व को चुनौती दे रहा है। अतः सरकार को इस दिशा में कड़े कदम उठाने या अभयारण्य के अंदर संरक्षण की अधिकतम व्यवस्था करने की आवश्यकता है जिससे जैव विविधता के इस क्षेत्र को संरक्षित किया जा सके।

नाकरेक जीवमंडल में पाये जाने वाले कुछ उपयोगी पौधे

बिकारमा सिंह, विवेक नारायण सिंह, बिपिन कुमार सिन्हा एवं संध्याज्योति फुकन
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

टबेरिमोन्टाना डाइवेरिकाटा

जैव विविधता के दृष्टिकोण से भारत का पूर्वोत्तर क्षेत्र अपनी दुरुह भौगोलिक संरचना, अनूठी जलवायु एवं प्राकृतिक सुंदरता के लिये जाना जाता है। इसी क्षेत्र के राज्य मेघालय में रहने वाली गारो जनजाति के लोग अपनी वेश-भूषा, संस्कृति व प्रकृति प्रेम द्वारा जैव विविधता को संरक्षित रखने के लिए विख्यात है। नाकरेक जीवमंडल भारत के 14 जीवमंडलो में से एक है, जिसकी स्थापना 1 अक्टूबर 1988 को की गई। यह जीवमंडल मेघालय के तीन जिलों : पूर्वी गारो हिल्स, पश्चिमी गारो हिल्स एवं दक्षिणी गारो हिल्स में फैला हुआ है, जिसका कुल क्षेत्रफल 820 वर्ग किमी. है। यह जीवमंडल 25°15' - 25°29' उत्तरी अक्षांश और 90°13-90°35' पूर्वी देशान्तर के बीच स्थित है। गारो

केस्टोनोप्सिस इन्डिका

अजेरेटम कोनिजॉइडिस

जनजाति के लोग अपनी आवश्यकताओं के लिये पूर्णतया प्रकृति पर तथा जीवमंडल के आसपास के जंगलों पर निर्भर हैं। इस जीवमंडल से वे अपनी दैनिक जीवन की आवश्यकताओं (जैसे जलावन की लकड़ी, चारा, औषधि, जंगली फल व सब्जी एवं काष्ठ आदि) की वस्तुयें प्राप्त करते हैं। प्रस्तुत लेख में इस जीवमंडल में पाई जाने वाली कुछ उपयोगी वनस्पतियों के संदर्भ मे विवरण प्रस्तुत किया गया है।

बाहुनिया वैरिगाटा

(क) औषधि प्रदान करने वाली वनस्पतियाँ:

1) एलोकेसिया मेक्रोराइजा (Alocasia macrohiza) : गारो जनजाति के लोग, इसकी टहनी से रस निकालकर कान के रोग मे प्रयोग करते हैं तथा कंद को पीसकर घाव पर लगाते हैं।

2) निपेन्थिस खासियाना (Nepenthes khasiana) : इसके घट में जमे रस से आँखो की चिकित्सा की जाती है।

3) सेन्टेला एसियाटिका (Centella asiatica) : यह शक्तिवर्धक एवं स्नायु तन्त्रों को ठीक करने में सहायक होने के साथ-2 पानी में उबाल कर पीने से पेट सम्बंधी परेशानियों में उपयोगी है।

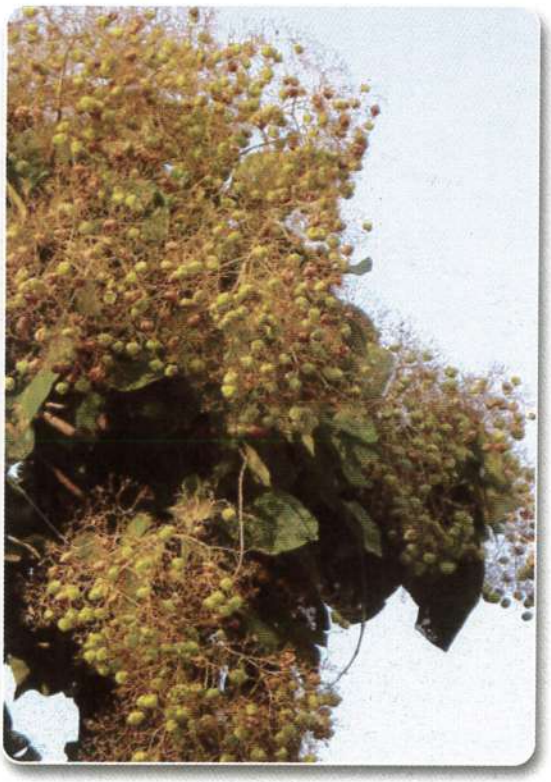

टेक्टोना ग्रेन्डिस

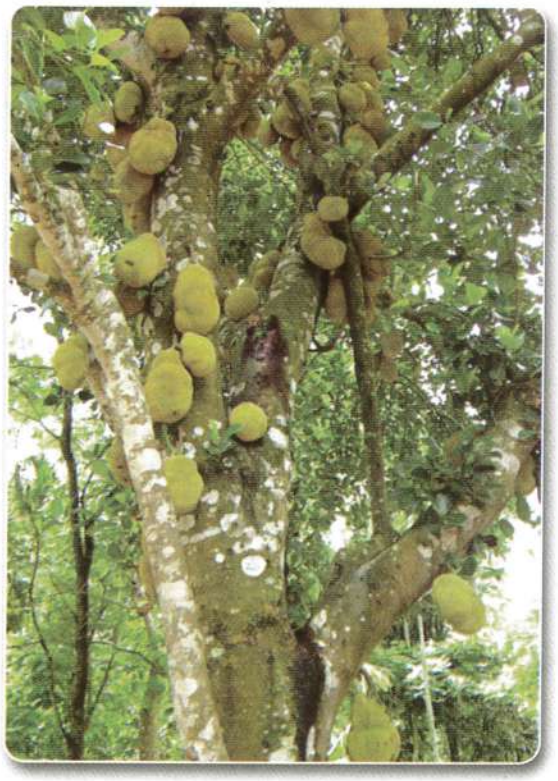

आर्टोकार्पस हेटेरोफाइलम

सिट्रस मेडिका

4) क्लीरोडेन्ड्रोन कोलीब्रुकियानम् (Clerodendron colebrokianum) : पानी में इसकी कोमल पत्तियों को उबाल कर पीने से उच्च रक्तचाप कम होता है। यहां के लोग इसे पीस कर गठिया रोग में भी प्रयोग करते हैं।

5) कोस्टस स्पीशियोसस (Costus specious) : इसकी जडें और कंद शोधक एवं कृमिनाशक कार्य करती हैं।

6) डायोस्कोरिया पेन्टाफाइला (Dioscorea pentaphylla) : इसके कंद का उपयोग बवासीर रोग एवं पेट के कीड़े मारने में किया जाता है। इसके अलावा कंद मछली को मारने हेतु भी प्रयोग होता है।

7) लिटसिया मोनोपिटेला (Litsea monopetala) : इसके फल का उपयोग सर दर्द, चक्कर आने, मिरगी, पक्षाघात एवं विस्मृति के उपचार में उपयोगी है।

8) वायोला बेटोनिसीफोलिया (Viola betonicifolia) : इसके सम्पूर्ण पौधे का उपयोग उल्टी को रोकने के लिये करते हैं। यहां के लोग इसके अलावा इसे पागलपन के उपचार में भी उपयोग करते हैं।

9) एजीरेटम कोनिजॉइडिस (Ageratum conyzoides) : यहां के लोग प्रसव के समय इसकी पत्तियों को पीस कर गर्भवती स्त्री के पेट पर रखते है, जिससे प्रसव आसानी से हो जाता है। बुखार होने पर इसकी पत्तियों को अदरक के साथ पीस कर सिर में बाँधने से बुखार कम हो जाता है।

10) अमरेन्थस स्पीनोसस (Amaranthus spinosus) : शाखाओं सहित पत्तियों को पीस कर जोड़ों के दर्द में बाहर से लेप करने से दर्द ठीक हो जाता है।

11) आरटिमीसिया निलागारिका (Artemisia nilagarica) : असाध्य पीलिया रोग में इसकी पत्तियों के रस को लगाने से यह रोग ठीक हो जाता है।

12 केसिया टोरा (Casia tora) : इस जनजाति का मानना है कि इसकी पत्तियों को मसलकर इसके रस को निकालकर पशुओं को खिलाने से किलनी नहीं लगती है।

सिजीजियम कुमुनि

13) बिक्सा ओरेलाना (Bixa orellana : इस जनजाति की स्त्रियाँ सुगम प्रसव हेतु सूखी पत्तियों को पीस कर गर्भवती स्त्री के पेट पर मलती है।

14) जाट्रोफा कर्कस (Jatropha curcas) : पत्तियोंका रस पीलिया रोग मे प्रयोग होता है।

15) यूरेना लोबाटा (Urena lobata) : कोमल पौधों का काढ़ा पीलिया रोग में प्रयोग करते हैं।

16) साइडा रोम्बीफोलिया (Sida rhombifolia) : सम्पूर्ण कोमल पौधे को पीसकर इसके रस को पानी के साथ पीने से मधुमेह में लाभ होता है।

निपेन्थिस खासियाना

17) सिजीजियम कुमुनि (Syzygium) : पेड़ की छाल का रस निकाल कर पीने से मधुमेह में लाभ मिलता है।

18) हेडयोटिस स्केन्डेन्स (Hedyotis scandens) : पौधे के कोमल पत्तियों का रस आंख लाल होने पर डालने से लाभ मिलता है।

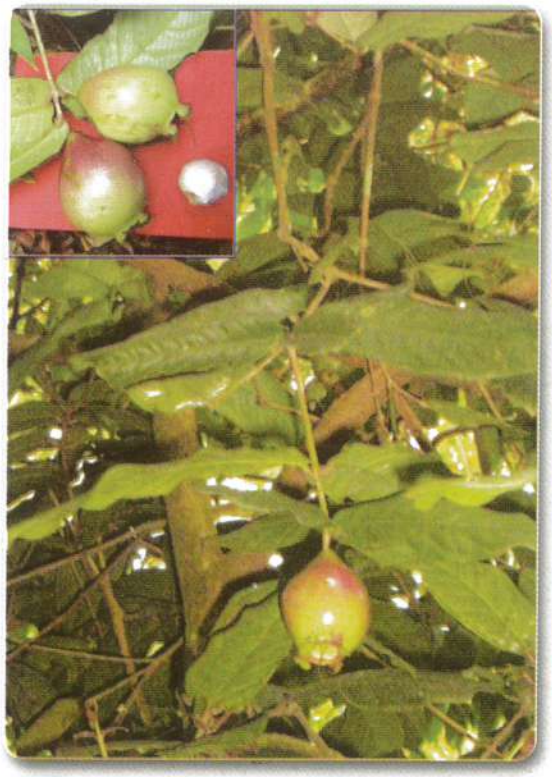

सिजीजियम मालासेन्स

19) सिनामोमम तमाला (Cinnamomum tamala) : इसकी पत्तियों को चबाने से खाँसी में आराम मिलता है।

20) मिलास्टोमा मालाबाथ्रिकम (Melastoma malabathricum) : पत्तियों का रस कट जाने पर या चोट आदि घाव के लिये लाभकारी होता है।

21) एजाडायरेक्टा इन्डिका (Azadirachta indica) इस पेड़ की छाल का प्रयोग घाव के उपचार में करते हैं। छाल को पीसकर लगाने से घाव जल्दी ठीक हो जाता है।

22) टाबेरनिमोन्टाना डाइवारिकाटा (Tabernaemontana divaricata) : पौधो की कोमल पत्तियों को पीसकर कपड़े में लपेटकर सिर दर्द या बुखार होने से मस्तक में बांधते हैं जिससे रोग ठीक हो जाता है।

23) माईक्रोमेलम इन्टेगेरियम (Micromelum integerrimum) : यहां के लोगों का मानना है कि पेड़ की छाल को दिन में 2 से 3 बार चबाने से दाँत का दर्द ठीक हो जाता है।

24) मेसुआ फेरीआ (Mesua ferrea) : पेड़ की छाल को

अदरक एवं लौंग के साथ दिन में 3 से 4 बार चबाने से खाँसी में आराम मिलता है।

25) सिनामोमम अब्टुसिफोलियम (Cinnamomum obtusifolium) : पेड़ की छाल को पीसकर रस निकाल कर पीने से गुर्दे की पथरी को गलाने हेतु प्रयोग किया जाता हैं। इसके अलावा इसका उपयोग मूत्र करते समय दर्द होने में उसे ठीक करने हेतु भी करते हैं।

26) ईमबिलिका औफिसिनेलिस (Emblica officinalis) : ये लोग इस वृक्ष के फल का रस निकाल कर आँख लाल होने पर आँखों में डालते हैं।

(ख) फल और सब्जियाँ प्रदान करने वाली वनस्पतियाँ :

फल :

27) सिजीजियम मालासेन्स (Syzygium malaccense) : फल के पतले खट्टे छिलके को खाते हैं।

28) माईरिका इस्कुलेन्टा (Myrica esculenta) : पके फल को नमक के साथ खाते हैं, कच्चे फलों का उपयोग अचार बनाने में करते हैं।

29) केस्टानोप्सिस इन्डिका (Castanopsis indica) : यहां के लोग फल के उपरी भाग को छीलकर भूरे या सफेद रंग के दाने को खाते हैं।

30) रुबस रुगोसस (Rubus rugosus) : लाल फलों को ये लोग अपनी प्यास बुझाने हेतु खाते हैं।

31) अरेका कटेचू (Areca catechu) : फल की गोटी को काट कर पान के साथ चबाते हैं। इससे लोगों को गर्मी मिलती है और काम करने में स्फूर्ति आती है।

32 इलिगनस लेटिफोलिया (Elaegnus latifolia) : पके फल खाने व अचार बनने के काम में आता है।

33. सिट्रस मेडिका (Citrus medica) : पके फलों को छीलकर खाते हैं तथा अचार एवं जूस बनाने के काम में लाते हैं।

34. आरटोकार्पस हिट्रोफिल्ला (Artocarpus heterophylla) : पके फलों को छीलकर तथा सब्जी बनाकर खाते हैं।

35. डेब्रिजेसिया लोंगिफोलिया (Debregeasia longifolia) : यहां के लोग इसके पके लाल फलों को खाते हैं।

शाक व सब्जियाँ :

36. एन्टिडेस्मा एक्यूमिनेटम (Antidesma acuminatum) : कोमल पत्तियों को काटकर सब्जी बनाते हैं।

37. इरिन्जियम फोइटिडम (Eryngium foetidum) : कोमल पौधों की पत्तियों को कच्चा खाते हैं व अन्य सब्जियों के साथ भी इसे उबाल कर चावल के साथ खाते हैं।

38. कोलोकेसिया अफिनिस (Colocasia affinis) ये लोग इसे पानी में उबाल कर खाते हैं।

39. मूसा रिलिजियोसा (Muss religiosa) केले के फूल को पानी में उबाल कर छोटे-छोटे टुकड़े करके फल सहित नमक डालकर खाते हैं।

40. मूसेन्डा रोक्सबर्गी (Mussaenda roxburghii) : पौधों की कोमल पत्तियों को काटकर सब्जी बनाते हैं।

इसके अलवा कुछ अन्य वनस्पंतियाँ जो इस नाकरेक जीवमंडल में पायी जाती हैं, उनका भी प्रयोग गारो जनजाति के लोग अपने ढंग से करते हैं। इनमें से कुछ वनस्पतियों के नाम और उपयोग निम्नलिखित है–

(क) **काष्ठ के लिये** : टेकटोना ग्रेन्डिस, माइकेलिया चंपका, सोरिया रोबास्टा आदि,

(ख) **मसालों के लिये** : सिनामोमम तमाला, एलियम सटाइबम, जिंजिबर ओफिसिनेलिस आदि,

(ग) **रंगो के लिये** : एकासिया कटेचू, मेलोटस फिलिपेन्सिस, अरेका कटेचू आदि,

(घ) **ईंधन हेतु** : बॉस की अनेको प्रजातियाँ, अन्य अनेकों पेड़ो की सूखी टहनियॉ,

(ङ) **चारे हेतु** : बॉस, बाहुनिया वैरिगाटा, फाइकस हिस्पिडा, केले की सभी प्रजातियाँ, अनेकों घास प्रजातियां आदि,

(च) **सजावट हेतु** : केलामस इरेक्टा, साईकस, बॉस प्रजातियँा, आर्किड की अनेक प्रजातियाँ,

(छ) **धार्मिक कार्य हेतु** : क्यूप्रेसस, कॉवार्कस इन्डिका, केलामस की कई प्रजातियाँ,

उपरोक्त दिये गये विवरणों से हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि, नाकरेक जीवमंडल प्राकृतिक रुप से कितना धनी है। अपनी सुन्दरता व जैव विविधता के कारण विश्व जीवमंडलों में अपना स्थान रखता है। इसके अतिरिक्त यह गारो जनजाति के लोगों को जीवन का आधार भी प्रदान करता है, इस प्राकृतिक वरदान का युक्ति संगत संदोहन करना अति आवश्यक है जिससे अपने देश की इस अनमोल धरोहर को आने वाले युगों के लिये संजोकर रखा जा सके।

धुआं, गंदगी और शोर ।
तोड़ रहे जीवन की डोर ।।
हरे भरे जंगल कटवाकर
सोचो क्या मिलजाता है ?
एक तुच्छ स्वार्थ पूर्ति से
कितना कुछ खो जाता है ।।

नोकरेक जीव मंडल की बागवानी योग्य जंगली वनस्पतियाँ

बसन्त कुमार सिंह एवं हिमाद्रि शेखर देवनाथ
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

प्रकृति की गोद में बसा नोकरेक, भारत के चौदह जीवमण्डलों में से एक है। 820 वर्ग कि.मी. में फैला नोकरेक जीवमंडल मेघालय के उत्तर पश्चिम में 25°20' से 25°29' उ. अक्षांश तथा 90°13' से 90°35' पू. देशान्तर के बीच में स्थित है। अपनी भौगोलिक सुन्दरता के साथ-साथ, प्राकृतिक सुन्दरता का नमूना नोकरेक विभिन्न प्रकार की वनस्पति विविधता से सम्पन्न है तथा अलग-अलग प्रकार की वनस्पतियों एवं जन्तुओंका आवास बना हुआ है। नोकरेक जीवमंडल विश्व के 25 उत्तप्त स्थलों में से एक के दायरे में आता है। उच्च तुंगता, नम और आर्द्र जलवायु इसे जैव विविधता के लिए आदर्श स्थान बनाता है। यहाँ वनों को मुख्य रूप से सदाबहार, समसदाबहार, पतझड़, घास के मैदान और बांस वन प्रकारों में बांटा जा सकता है। कोऑर्डिनेटिंग प्रोजेक्ट फॉर नोकरेक बायोस्फेयर रिजर्व के अन्तर्गत सर्वेक्षण के दौरान यह पया गया कि इस जीवमंडल में कुछ इस प्रकार की जंगली वनस्पतियाँ पाई जाती हैं जो अपने फूल, पत्तों या आकारगत बनावट के लिए काफी आकर्षक लगती हैं और वागवानी के लिए प्रयोग में लाये जा सकते हैं। ऐसे प्रयोगों से, तथा वन के आर्थिक दोहन से यहां के जनजातियों को झूम कृषि का एक दूसरा विकल्प मिलेगा, जो यहाँ के लोगों के आर्थिक विकास तथा वन के संरक्षण की दिशा में एक सकारात्मक कदम होगा। प्रस्तुत लेख नोकरेक जीवमंडल में पाये जाने वाले ऐसे ही कुछ आकर्षक पौधों का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत है।

एजीरेटम हास्टोनिआनम

एजीरेटम हास्टोनिआनम (Ageratum houstonianum)

कुल : एस्टरेसी

पलास फूल के नाम से जाना जाने वाला यह पौधा एक वर्षीय क्षुप है जो लगभग 60 से.मी. तक लम्बा होता है। इसकी त्रिकोणीय-लट्वाकार पत्तियाँ सम्मुख पत्र विन्यास में सजी होती हैं। पत्तो में तीन मुख्य शिराएँ, आधार से शीर्ष को जोड़ती हैं। पत्तों की दोनों सतहें रोम युक्त होती हैं। पुष्प मूण्डक अनेक विम्ब पुष्पकों से युक्त होते हैं। पुष्पक मुख्यतः नीलाभ-श्वेत रंग के होते हैं। यह वर्ष भर पुष्पों से सुसज्जित रहता है।

अरजेरिया नरवोसा

अरजेरिया नरवोसा (Argyreia nervosa)

कुल : कॉनवोलवुलेसी

ऊली मोर्निंग ग्लोरी के नाम से प्रचलित यह पौधा रोम युक्त आरोही है। पत्र हृदयाकार होते हैं तथा एकान्तर क्रम से सजे होते हैं। पत्तों के निचले सतह पर रोम पाये जाते हैं। पुष्प आकार में बड़े होते हैं और पत्तो के कक्ष में पाये जाते हैं। दलपुंज कीपाकार और गुलाबी रंग के होते हैं।

बाउहिनिया परपुरिया (Bauhinia purpurea)

कुल : सिजलपिनियेसी

बटर फ्लाइ पेड़ के नाम से प्रचलित यह पौधा हेमन्त ऋतु में सफेद पुष्प से लद जाता है एवं यह 10-16 मी. तक लम्बा एक सदाबहार पेड़ है जिसे इनके अधोमुख हृदयाकार पत्तों के कारण बड़ी आसानी से पहचाना जा सकता है। इसके पुष्पों का व्यास लगभग 6 - 8 से.मी. तक होता है।

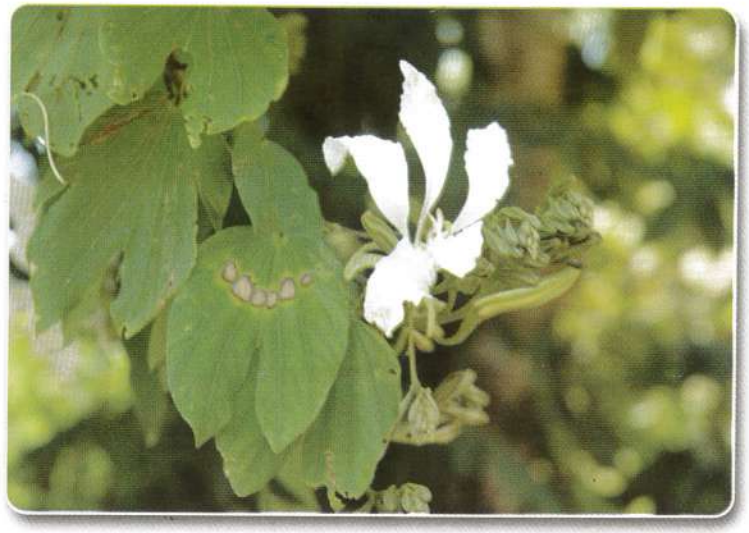

बाउहिनिया परपुरिया

कैशिया जावानिका (Cassia javanica)

कुल : सिजलपिनियेसी

पिंक फ्लावर के नाम से जाना जाने वाला मध्यम ऊँचाई का यह पेड़ गुलाबी रंग के फूलों से ढका एक छतरीनुमा आकृति बना लेने के कारण काफी आकर्षक लगता है। नोकरेक के जंगलों में इसे अप्रैल-जून के महीने में देखा जा सकता है। इसकी हरे रंग की संयुक्त पत्तियाँ इसे और भी सुन्दर बना देती हैं।

पुंकेशर की संख्या 10 तक होती है।

कैशिया जावानिका

क्राइनम अमोइनम (Crinum amoenum)

कुल : अमारिलडेसी

अंग्रेजी में क्राइनम के नाम से जाना जाने वाला यह पौधा शल्क कन्द से उत्पन्न होता है जो भूमिगत रहता है। पुष्पदण्ड एकल में पत्तों के कक्ष से निकलते हैं जिनपर 3 - 12 पुष्प छत्रक क्रम में लगे रहते हैं। इसके पुष्प आकार में बड़े, लगभग 6 - 12 से.मी. के व्यास वाले श्वेत रंग के होते हैं। इसके पुंकेशर गाढ़े लाल रंग के होते हैं। इसका पुष्प भी अप्रैल-अगस्त के महीने में प्रस्फुटित होता है।

क्राइनम अमोइनम

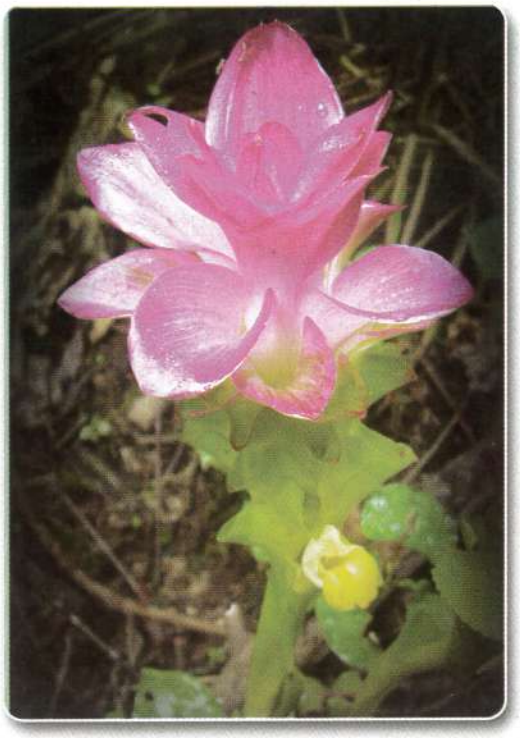

करकुमा एरोमेटिका

करकुमा एरोमेटिका (Curcuma aromatica)

कुल : जिन्जिबरेसी

एक बीज पत्री यह पौधा जंगली हल्दी के नाम से प्रसिद्ध है। इसके पत्ते दीर्घवृत्ताकार होते हैं जिसकी निचली सतह रोम युक्त होती है। इसका पुष्पदण्ड भूमिगत आकंद से निकलता है। इसके शीर्ष पर गुलाबी या लाल रंग के निपत्रों का गुच्छा होता है जो इसे कमल फूल के सदृश्य बनाता है। दलपुंज कीपाकार और पीले होते हैं।

डेन्ड्रोबियम क्राइसेन्थाम (Dendrobium chrysanthum)

कुल : ऑरकिडेसी

यह पौधा आरोही होता है जिसका तना नीचे की तरफ झूलता रहता है। पत्ते दीर्घवृत्ताकार होते हैं और एकान्तरक्रम में सजे रहते हैं। पुष्प पीले रंग के होते हैं और लम्बे पुष्प-दण्डों पर लटकते रहते हैं। पुष्प के भीतरी भाग में दो गाढ़े लाल रंग के धब्बे इसे और अधिक आकर्षक बनाते हैं।

डेन्ड्रोबियम क्राइसेन्थाम

डेन्ड्रोबियम सल्केटम

डेन्ड्रोबियम सल्केटम (Dendrobium sulcatum)

कुल : ऑरकिडेसी

यह पौधा भी ऊपरिरोही होता है जिसका तना लम्बवत् रूप से दूसरों के तने के साथ जुड़ा रहता है। इसके पत्र लट्वाकार-दीर्घायत होते हैं। दलपुंज पीले रंग का होता है जिनमें गहरे लाल रंग की शिराएँ होती हैं।

दुरान्ता रिपेन्स (Duranta repens)

कुल : वरबीनेसी

गोल्डेन डिउ ड्रॉप के नाम से प्रचलित यह पौधा शाखा-प्रशाखा युक्त झाड़ी है। इसकी गाठ पर नुकीले कण्टक पाये जाते हैं। पत्र लट्वाकार होते हैं। पुष्प मंजरियों में निकलते हैं। दलपुंज हल्के नीले रंग के होते हैं।

दुरान्ता रिपेन्स

यूफोरबिया पलचेरिमा (Euphorbia pulcherrima)

कुल : यूफोरबियेशी

क्रिसमस फ्लावर या पोएन्सेटिया के नाम से परिचित यह पौधा 1.5-3 मी. लम्बा बहुबर्षीय क्षुप है। पत्र लट्वाकार, दीर्घवृत्ताकार, चिकने गहरे हरे रंग के होते हैं। पुष्प तने के शीर्ष में लगते हैं। इसके निपत्र लाल या सफेद रंग के होते हैं और देखने में काफी आकर्षक होते हैं। निपत्र एकाधिक क्रमों में सजे होते हैं।

यूफोरबिया पलचेरिमा

हेडाइचियम स्पाइकेटम

हेडाइचियम .स्पाइकेटम (Hedychium spicatum)

कुल : जिन्जिबरेसी

मई-जून के महीने में नोकरेक की शोभा बढ़ाने वाला यह पौधा एक-वर्षीय क्षुप है। इसके पत्ते दीर्घायत होते हैं। पुष्प शाखाओं के शीर्ष भाग में पुष्प मंजरियों में निकलते हैं जो एक शंकु का आकार बनाते हैं। पुष्प सफेद रंग के होते हैं और पुंकेशर लाल रंग के होते हैं।

होल्मस्किओलडिया सैंग्युनिया (Holmskioldia sanguinea)

कुल : वरबीनेसी

चाइनीज हैट-प्लान्ट के नाम से परिचित यह पौधा एक झाड़ी नुमा आरोही है जिसका तना नीचे के तरफ झूलता रहता है। पत्र लट्वाकार होते हैं। पुष्प अक्षीय या शीर्ष मंजरियों में निकलते हैं। दलपुंज और वाह्यदलपुंज घंटानुमा और लाल होते हैं। ये देखने में काफी आकर्षक लगते हैं।

होल्मस्किओलडिया सैंग्युनिया

हाइपोएस्टिस फाइलोस्टेकिया

हाइपोएस्टिस फाइलोस्टेकिया (Hypoestes phyllostachya)

कुल : एकेन्थेसी

पोल्का डाट के नाम से प्रसिद्ध यह एक छोटा सा क्षुप है जो छायादार, नम जगहों पर होता है। इसके पत्र गाढ़े हरे रंग के होते है जिन पर लाल, गुलाबी या हल्के हरे रंग के धब्बे बने होते हैं। पत्तों की यही सुन्दरता इस पौधे को बागवानी के लिए खास महत्वपूर्ण बनाती है। पुष्प गुलाबी या हल्के बैगनी रंग के होते हैं और पत्तों के कक्ष से निकलते हैं।

लन्टाना कमारा (Lantana camara)

कुल : बरबीनेसी

लन्टाना या स्पेनिश फ्लैग के नाम से जाना जाने वाला यह पौधा उष्णकटिबंधीय अंचल का निवासी है लेकिन अपनी अद्भुत अनुकूलन क्षमता के कारण इसे आज हर जगह देखा जा सकता है। नोकरेक जीव मण्डल में भी यह पौधा 1200 मी. की ऊँचाई तक पाया जाता है। इसके रंग-बिरंगे पुष्प बागवानी की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण हैं।

लन्टाना कमारा

मेलास्टोमा मालाबाथ्रिकम

मेलास्टोमा मालाबाथ्रिकम (Melastoma malabathricum)

कुल : मेलास्टोमेटेसी

भारतीय रोडोडेन्ड्रॉन के नाम से प्रसिद्ध यह पौधा, एक 2 मीं लम्बा क्षुप है। इसके पत्ते दीर्घायत या लट्वाकार होते हैं तथा दोनों सतहों पर रोमयुक्त होते हैं। पंखुड़ियाँ हल्के बैगनी या गुलाबी रंग के होती हैं।

मुसान्डा फ्रन्डोसा (Mussaenda frondosa)

कुल : रुबियेसी

यह शाखा-प्रशाखा युक्त झाड़ी है जिसकी उचाई 2 मी तक होती है। इसका तना रोम-युक्त होता है। पत्र लट्वाकार या दीर्घवृत्ताकार होते हैं। पुष्प शीर्ष मंजरियों में निकलते हैं और नारंगी रंग के होते हैं। इसमें कुल 5 पंखुड़िया होती हैं जिसमें एक पंखुड़ी फैला हुआ और सफेद रंग का होता है जो इस पौधे को बागवानी के लिए उपयुक्त बनाता है।

मुसान्डा फ्रन्डोसा

ओग्जालिस मार्टिआना

ओग्जालिस मार्टिआना (Oxalis Martiana)

कुल : ओग्जालिडेसी

लाइलेक ओग्जालिस के नाम से जाना जाने वाला यह एक छोटा सा क्षुप है जो भूमिगत शल्क से प्रसारित होता है। पत्र-वृन्त लम्बा होता है। पत्र-फलक अधोमुख-हृदयाकार होते हैं। पुष्प, पुष्पदण्ड पर छत्रक के रूप में सजे होते हैं। पंखुडियाँ हल्के गुलाबी रंग की होती हैं। पुंकेसर की संख्या 10 होती है। इसके पुष्प मई से फरवरी के महीने में होते हैं।

पाइपर ग्रिफिथाइ (Piper griffitthii)

कुल : पाइपरेसी

यह एक आरोही पौधा है जो अपने मूल की सहायता से दूसरे पौधों पर चढ़ता है। पत्र लट्वाकार या भालाकार होते हैं और एकान्तर क्रम में सजे रहते हैं। पुष्प दण्ड 1.5 - 6 से.मी. तक लम्बा होता है। यह पौधा अपने गहरे हरे रंग के सुन्दर चमकदार पत्तों के लिए बागवानी में आरोही के रूप में प्रयोग में लाया जा सकता है।

पाइपर ग्रिफिथाइ

पोराना पैनिकुलाटा

पोराना पैनिकुलाटा (Porana paniculata)

कुल : कॉनवोलवुलेसी

ब्राइडल क्रीपर के नाम से चर्चित यह पौधा इंडो-मलाया अंचल का मूल वासिंदा है। यह एक आरोही पौधा है। पत्र हृदयाकार होता है जिनका उपरी सतह चिकना और निचला सतह रोमयुक्त होता है। पुष्प छोटे और सफेद रंग के होते हैं लेकिन सघनता से पुष्प दण्ड पर लगे होने के कारण काफी सुन्दर दिखते हैं। नवम्बर-दिसम्बर के महीने में नोकरेक जंगलों में इस लता को फूलों से लदा देखा जा सकता है।

टैबरनेमोन्टाना डाइवेरिकाटा

टैबरनेमोन्टाना डाइवेरिकाटा (Tabernaemontana divericata)

कुल : एपोसाइनेसी

कैप जेस्मीन के नाम से प्रचलित यह पौधा एक शाखा-प्रशाखा युक्त बहुवर्षीय झाड़ी है। पत्र दीर्घ-वृत्ताकार या दीर्घायत चमकीले हरे रंग के होते हैं। पुष्प ससीमाक्षी पुष्पक्रम में सजे होते हैं। दलपुंज सफेद रंग के होते हैं। यह वर्ष भर फूलों से लदा रहता है।

थनबर्जिया ग्रान्डीफ्लोरा

थनबर्जिया ग्रान्डीफ्लोरा (Thunbergia grandiflora)

कुल : एकेन्थेसी

बंगाल ट्रम्पेट के नाम से प्रसिद्ध एक आरोही पौधा है और भारत का मूल वासिंदा है। पत्र लट्वाकार या हृदयाकार होता है जिसका दोनों सतह खुरदरा होता है। पुष्प कक्षीय मंजरी में एकल रूप में निकलते हैं। पुष्प आकार में बड़े और सफेद रंग के होते हैं।

टिथोनिया डाइभर्सिफोलिया (Tithonia diversifolia)

कुल : एस्टरेसी

मेक्सिकन सनफ्लावर के नाम से परिचित यह पौधा मैक्सिको का मूल निवासी है। यह 6 मी. तक लम्बा होता है। पत्र लट्वाकार या 3 - 7 पाणिवत् विदरों में विभक्त होते हैं। पुष्प मुण्डक में पाये जाते हैं जिनका व्यास लगभग 08 - 12 से.मी. तक होता है। रश्मि और बिम्ब पुष्पक चमकीले पीले रंग के होते हैं। इसे सितम्बर से मार्च तक खिलते देखा जा सकता है।

टिथोनिया डाइभर्सिफोलिया

विडेलिया चाइनेन्सिस

विडेलिया चाइनेन्सिस (Widelia chinensis)

कुल : एस्टरेसी

यह जमीन पर प्रसारित हाने वाला क्षुप है। तना लाल रंग का होता है। पत्र स्पेचुलाकार होता है जिसकी दोनों सतहें रोमश होती हैं। रश्मि और बिम्ब पुष्पक पीले रंग के होते हैं।

बारूदी सुरंग के सन्धान में आनुवंशिक रूप से रूपान्तरित पादप का योगदान

अरविन्द प्रामाणिक
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

प्रकृति एवं जमीन के अन्दर छुपे हुए विभिन्न प्रकार की खनिज एवं हानिकारक रासायनिक पदार्थो की उपस्थिति से अनेक अप्रिय घटनाएं हो जाती हैं। पादप की सहायता से बहुत सरल उपाय से उनकी जानकारी मिल सकती है।

आज आंतकवादियों के कारण देश की आम जनता बारूदी सुरंग के भयानक कारनामों के संबंध में बहुत कुछ जानती है। बारूदी सुरंग साधारणतः जमीन के अन्दर छुपा के रखी जाती है और बहुत दूर से रिमोट कंट्रोल द्वारा जरूरत के अनुसार उसका विस्फोट किया जाता है।

''आरेसा'' डेनमार्क के कोपेनहेगेन में स्थित एक जैव तकनीकी कंपनी है। इस संस्था के वैज्ञानिक सरसों (Mustard) कुल के ''थैले क्रेस'' नामक शाकीय पौधे जिसका वानस्पतिक नाम सीसिम्ब्रीयम थालियानम (Sisymbrium thalianum) पर लगातार तीन साल तक शोध कार्य करने के दौरान आनुवंशिक रूप में रूपान्तरित एक आश्चर्य चकित करने वाला पादप विकसित करने मे समर्थ हुए हैं।

यह पादप अपना हरा रंग लाल रंग में बदल कर बारूदी सुरंग की उपस्थिति की चेतावनी देता है। हरे रंग का लाल रंग में बदल जाना खतरे की घंटी है।

थैले क्रेस की व्याप्ति सामान्यत अफगानिस्तान, पश्चिम एशिया, मध्य यूरोप (Central Europe) भूमध्यसागरीय (Mediterranean) आदि स्थानों में है। अब यह उत्तर व दक्षिण अमेरिका (North & South America) तथा दक्षिणी अफ्रिका एवं ऑस्ट्रलिया में प्रकृतिस्थ (Naturalised) हो चुका है। इसे हिमालय में काश्मीर से भूटान तक 3,300 मी. की. ऊँचाई तक पाया जाता है।

यह पादप सीधा औसतन 45 से. मी. तक ऊँचा होता है। इसकी अरीय पत्तियां (radial leaves) रोसेट्ट (rosette) अधोमुख, अंडाकार व स्पेचुलाकार दीर्घवृत्ताकार होती हैं। स्तंभिक पत्तियां (cauline leaves) अछिन्न, छोटा, वृन्तहीन और दीर्घायत होती हैं। इसके फूल का रंग सफेद, कूटपटीक (silique) फल रेखाकार (linear) उपसंपीड़ित (subcompressed) बैंगनी (violet) तथा घास के रंग (straw coloured) का होता है। बीज अनेक, सूक्ष्म (minute), युवयड (ovoid) हल्का धूसर (pale brown) रंग का होता है।

स्पेन देश में ये पौधे मुँह के क्षति की औषधि के रूप में उपयोग किया जाता है। बारूदी सुरंग की सूचनादेने में सक्षम आनुवंशिक रूप से रूपान्तरित पौधे की वार्षिक व हाइबरनेटिग द्विवार्षिक (hibernating biennial) जड़ विस्फोटक में व्यवहृत नाइट्रोजोन संबंधित रसायन के संसर्ग में आने पर इसका रंग परिवर्तित होने लगता है। इस विशेष गुण को ध्यान मे रखते हुए इस पौधे के उपयोग का प्रयास किया गया है।

आज सारे विश्व में किसी बहाने आतंकवादी तोड फोड़ और नरसंहार की भयानक घटनाएं हो रही है। इसके लिए जिन उपायों का सहारा लिया जा रहा है उनमें प्रमुख है बारूदी सुरंग। कम से कम 75 देशों में दस करोड़ से भी अधिक बारूदी सुरंग मिट्टी के नीचे हैं। उन जगहों पर खेती के लिए, सफाई व खुदाई आदि बहुत खतरनाक साबित हो सकती है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक ओस्टरगार्ड के अनुसार इस दिशा में बोस्निया, श्रीलंका एवं आंशिक रूप से अफ्रीका आदि स्थानों में विस्तार से प्राथमिक खोज किया जाएगा।

यह देखा गया है कि आनुवंशिक रूप से रूपान्तरित इस पौधे की जड़ बारुदी सुरंग के संसर्ग में आने के तीन

से पाँच सप्ताह के अन्दर हरे से लाल हो जाती हैं। वैज्ञानिकों का मत है कि लोगों की सहायता के बिना इस पौधे का विस्तार संभव नहीं है। ओस्टरगार्ड ने यह भी कहा है कि ये पौधे जहां भी उगाए जांए इनकी निगरानी बहुत महत्वपूर्ण है।

डेनमार्क के रेड क्रॉस एसोसिएशन ने इस पौधे को युगान्तकारी घोषित करते हुए कहा है कि इसका सही उपयोग होने से हजारों निर्दोष लोगों के प्राणों की रक्षा हो सकती हैं।

विज्ञान का जन्म मानव कल्याण के लिए हुआ। परन्तु इसकी असीम क्षमता का उपयोग विनाश के लिए होने लगा। कहा गया है कॉटे से कॉटा निकलता है (विषस्य विषमोषधम)। विज्ञान का सहारा लेकर विनाश के लिए बारूदी सुरंगों के जाल बन रहे हैं तो उनसे बचने का भी सरल उपाय दे रहा है विज्ञान। हमें यह मान लेना चाहिए कि विज्ञान भक्षक नहीं, रक्षक है। भक्षक तो उसे हम अपने स्वार्थ के लिए बना रहे हैं।

(मूल सूत्र : एग्रीकलचर न्यूज, जनवरी - फरवरी 2004)

पेड़ उसे हम कहते हैं।
विष लेकर अमृत देते हैं।।

* * *

प्रदूषित जल, भोजन और वायु।
करते कम मानव की आयु।।

पूर्वोत्तर भारत में वेणु

पुष्पा कुमारी एवं परमजीत सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

भारत का पूर्वोत्तर भाग जैव विविधता की दृष्टि से, विश्व के प्रमुख क्षेत्रों में से एक है। यहाँ पाए जाने वाले वेणु (बाँस), इस क्षेत्र की वानस्पतिक धरोहर के अमूल्य अवयव हैं जो अपने अनोखे गुणों के कारण कई क्षेत्रों में एक भरोसेमंद विकल्प के रूप में उपयोग में लाए जाते रहे हैं।

बाँस – कुछ उपयोग

वेणु (बाँस) पोएसी कुल के सदस्य हैं। विश्व में लगभग 110 वंशों में इनकी लगभग 1140 जातियाँ पायी जाती हैं। हमारे देश में इनके 18 वंश तथा लगभग 128 जातियाँ विद्यमान हैं जिनमें से अधिकांश (13 वंश और 80 जातियाँ) पूर्वोत्तर भारत के राज्यों में पायी जाती हैं। वैसे तो संपूर्ण भारत में बाँसों का प्रयोग होता है, मगर मुख्यतः पूर्वोत्तर राज्यों की जनजातियाँ अपनी जीविका के लिए और अपने दैनिक कार्यों के लिए इन पर निर्भर हैं। वस्तुतः बाँसों की विविधता और उनके विविध रूपों में उपयोग इन राज्यों की विशेषता है। इस क्षेत्र के मुख्य 10 वंशों के अन्तर्गत आने वाली करीब 20 जातियों का इस्तेमाल व्यवसायिक तौर पर किया जाता है, जिनके विवरण तथा लक्षणों का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है। साथ ही एक सचित्र जाति कुंजी भी दी जा रही है, जिससे उनकी पहचान सरल रूप से की जा सके।

बम्बुसा – भारत में पाये जाने वाले वंशों में सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण वंश। इसके सदस्यों में पर्व-आवरण (Culm-sheath) की चौड़ाई सामान्यतः लम्बाई से अधिक होती है और इसके कर्ण (auricles) पूर्ण विकसित (अपवाद *ब. बालकुआ* और *ब. मल्टीप्लेक्स*) होते हैं। इनमें पौधे पुंजमय, घने समूह में होते हैं तथा तना निचली गाँठों (nodes) से शाखित होता है। इनकी शाखाएँ 3 गुणक में होती हैं।

बाँस – कुछ उपयोग

इनके सदस्यों में *ब. वल्गेरिस* की उपजाति *स्ट्राएटा* के तने का रंग पीला होता है और उसमें हरी लम्बी धारियाँ होती हैं जो उसे आकर्षक रूप देती हैं। *ब. वामिन* में मुख्य तना घट की तरह अकृत होता है। *ब. बरमानिका* के तने लगभग पूरे भरे होते हैं जो उन्हें मजबूती देते हैं। *ब. मल्टीप्लेक्स* के चिकने और पतले तने विभिन्न हस्तकला कार्यों में उपयोगी होते हैं। *ब. बैम्बोस* और *ब. बालकुआ* के छोटी पर्वों (Internodes) वाले तने अपनी मजबूती के लिए भारी, इमारती कार्यों में उपयोगी होते हैं।

कीमोनोबम्बुसा – यह वंश भारत में सिर्फ पूर्वोत्तर क्षेत्र में ही वितरित है। इसके तने दूर-दूर निकलते है। मुख्य

बाँस – कुछ उपयोग

होता है और पर्व भी छूने से कंटीला प्रतीत होता है।

डेन्ड्रोकैलेमस – इस वंश में बाँसों के विशाल सदस्य हैं जिनमें पर्व-आवरण सामान्यतः लंबे, कम चौड़े, कर्ण छोटे और पर्व आवरण पतल सीधे, या पीछे की ओर मुड़े हुए होते हैं। मुख्य तना सामान्यतः उपरी गाँठों पर शाखित होता है और निचली गाँठे मूलिका वलित होती हैं।

डेन्ड्रोकैलेमस गिगान्टियस इस वंश में एक विशिष्ट जाति है जो 30 मीटर तक लम्बी और 20-30 से. मी. व्यास वाली होती है।

बाँस – कुछ उपयोग

तने की गाँठों से काँटे निकले रहते है और उपरी गाँठों से सामान्यतः तीन, समान शाखाएँ निकलती हैं। पर्व-आवरण पतल (Culm-sheath blade) बहुत छोटी होती हैं।

पूर्वोत्तर क्षेत्र में पाया जाने वाला, यह एक महत्वपूर्ण वंश जिसमें यहाँ पहले मात्र एक *कीमोनो-बम्बुसा कैलोजा* विदित थी, परन्तु फिलहाल के सर्वेक्षण द्वारा इसकी एक और जाति *(की. क्वाड्रैन्गुलेरिस)* पायी गयी है। *की. क्वाड्रैन्गुलेरिसस* वर्गाकार तने वाली ज़ाति है, जिसकी गाँठो पर छोटे तथा मुड़े हुए काँटों का घेरा

बाँस – कुछ उपयोग

गिगान्टोक्लोआ – इस वंश में पुंजमय तने वाली, खड़ी या जमीन पर झुकी हुई जातियाँ हैं, जिनमें पर्व-आवरण पतल ऊर्ध्व या पीछे की तरह मुड़ी और पर्णपाती होती हैं। इसके कर्ण सामान्यतः छोटे नेमि (low rim) या पालि (lobe) की तरह होते हैं। व्यवसायिक तौर पर मुख्य रूप से इनकी जातियों का निर्माण कार्य में इस्तेमाल किया जाता है।

मेलोकैलामस – इस वंश में बाँस की वैसी जातियाँ हैं, जो दूसरे वृक्षों के उपर चढ़ कर फैलती हैं। इनकी गाँठ बहुल उभरी हुई और वलित होती है जहाँ से संवलित पर्व-आवरण, लिपटी रहती है। कर्ण पूर्ण विकसित होता है और शाखाओं में एक मुख्य शाखा होती है जो तने के बराबर विकसित हो सकती है। इनका उपयोग मुख्यतः विभिन्न प्रकार की मजबूत और टिकाऊ टोकरियों के निर्माण में होता है।

मेलोकेना – पूर्वोत्तर भारत के बाँस के वंशों में यह एक महत्वपूर्ण वंश है, जिसकी एक जाति *मे. बैक्कीफेरा* एक बड़े क्षेत्र में फैली हुई है। इसके पौधे दूर-दूर फैले हुए, सीधे खड़े खोखले और चिकने तने वाले होते हैं जो उपरी गाँठों पर शाखित होते हैं। शाखाएँ पतली ओर समान होती हैं। पर्व-

आवरण संवलित, पतल पीछे की तरफ मुड़ी तथा कर्ण अनुपस्थित होते हैं। इस जाति का जीवन-चक्र 40-45 वर्षों का है जो इसके फलने के बाद पूरा होता है। पिछले 4-5 वर्षों के दौरान यह पुर्वोत्तर भारत के लगभग सभी राज्यों में फल-फूल चुकी है।

फाइलोस्टैकिस – इसकी जातियाँ दूर फैलने वाले पौधों की हैं, जिनमें पर्व शाखाओं की तरफ वाली सतह पर चिपटी होती है। शाखाएँ असमान जोड़े में होती हैं। इस वंश की जातियों का मुख्यतः हस्तकला में व्यवसायिक तौर पर इस्तेमाल होता है।

रेसिमोबेम्बोस – इस वंश में भारत में पायी जाने वाली दो जातियाँ हैं जो मुख्यतः पतले, लचीले तने वाली हैं और दूसरे वृक्षों के उपर फैलती हैं। इनमें पर्व-आवरण पतली होती है और कर्ण अनुपस्थित होता है। इस वंश में भी एक मुख्य शाखा होती है जो मुख्य तने के बराबर विकसित हो सकती है।

इनके लचीले स्वभाव के कारण इनका प्रयोग हस्तकला कार्यों में और रस्सी के स्थान पर किया जाता है।

साइजोस्टैकियम – इस वंश की जातियों में विविधता है। इसके सदस्य सीधे खड़े या दूसरे पेड़ों पर फैलने वाले हैं। इनमें पर्व-आवरण सामान्यतः संवलित (अपवाद *सा. पोलिमॉर्फम, सा. डुलुआ*), पतल ऊच्च या पीछे मुड़े हुए और कर्ण बिल्कुल छोटे या अनुपस्थित होते हैं। गाँठ सामान्य पतली और समान सतह में होती हैं (अपवाद *सा. हेल्फेरी*)। कुछ जातियों में पर्व (internodes) विशिष्ट रूप से 1-1.5 मीटर तक लम्बा (*सा. अरूणचलेन्सिस, सा. डुलुआ*) होता है।

साइनारण्डीनेरिया – भारत में सिर्फ पूर्वोत्तर राज्यों में पाया जाने वाला एक प्रमुख वंश है। इसके सदस्य सामान्यतः झाड़ीनुमा तथा पुंजमय (अपवाद *सा. ग्रीफिथियाना*), चिकने तने वाले होते हैं जो घर बनाने, मछलियों के जाल बनाने में, तीर बनाने तथा विभिन्न हस्तकला कार्यो में उपयोग में लाए जाते हैं।

उपयोगी वेणु – जाति कुंजी :

1a. पौधों के तने आरोही, दूसरे वृक्षों पर फैलने वाले – 2

1b. पौधों के तने ऊर्ध्व, सीधे खड़े – 3

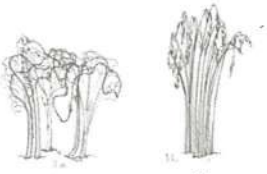

1a 1b

2a. पर्व पूरे भरे हुए, पर्व-आवरण पतल (culm-sheath ligule) अस्पष्ट, ऊर्ध्व – **रेसिमोबैम्बोस प्रेइनी**

2b. पर्व आधे भरे हुए; पर्व-आवरण पटल स्पष्ट, पीछे मुड़ी हुई – **साइजोस्टैकियम हेल्फेरी**

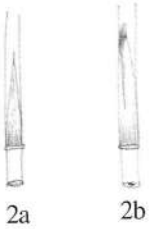

2a 2b

3a. पौधे दूर फैलने वाले – 4

3b. पौधे पुंजमय – 6

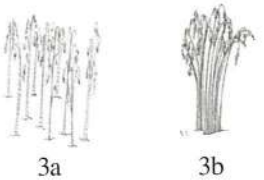

3a 3b

4a. गाँठ वलित – **कीमोनोबैम्बुसा कैलोसा**

4b. गाँठ अवलित – 5

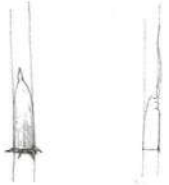

4a 4b

5a. पर्व गोल – **मेलोकेना बैक्कीफेरा**

5b. पर्व शाखाओं की तरफ चिपटी– **फाइलोस्टैकीस मानी**

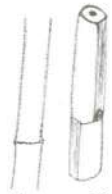

5a 5b

6a. पर्व-आवरण कर्ण पूर्ण विकसित और स्पष्ट – 7

6b. पर्व आवरण कर्ण अविकसित ओर अस्पष्ट – 16

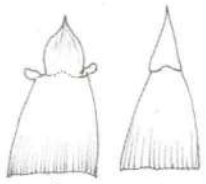

6a 6b

7a. पर्व-आवरण कर्ण समान, लगभग बराबर – 8

7b. पर्व - आवरण कर्ण असमान, भिन्न – 13

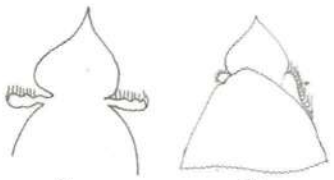

7a 7b

8a. पर्व-आवरण गुम्बदनुमा – 9

8b. पर्व-आवरण त्रिकोणाकार – 10

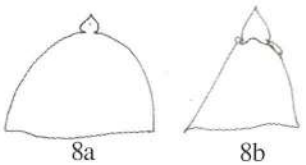

8a 8b

9a. पर्व-आवरण बाहरी सतह पर रोमिल, रोंयें "V" आकार में सज्जित; पतल उर्ध्व; कर्ण छोटे, गोल, शूकमय – **डैन्ड्रोकैलामस हुकेरी**

9b. पर्व-आवरण सतहों पर अरोमिल या बहुत थोड़े रोंयें वाले; पतल पीछे की तरफ मुड़े हुए; कर्ण लहरदार, अशूकमय – **डे. गिगान्टीयस**

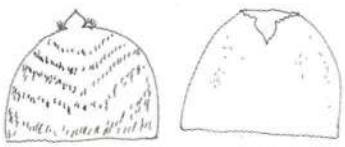

9a 9b

10a. पर्व-आवरण मुख्य, शीर्ष पर शूंडित; पर्ण बाहर की तरफ निकले हुए; पतल, पर्व-आवरण मुख्य के बराबर या उससे लम्बी – **बम्बुसा पैलीडा**

10b. पर्व-आवरण मुख्य, शीर्ष पर उत्तलीय; कर्ण उर्ध्व; पतल पर्व-आवरण से छोटे – 11

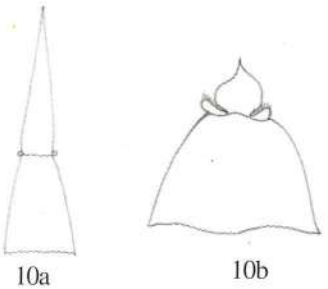

10a 10b

11a. पर्व-आवरण अरोमिल; कर्ण बहुत छोटे, पर्णपाती रोंयें वाले – **ब. बालकुआ**

11b. पर्व-आवरण रोमिल; कर्ण बड़े और चौड़े, शूकमय – 12

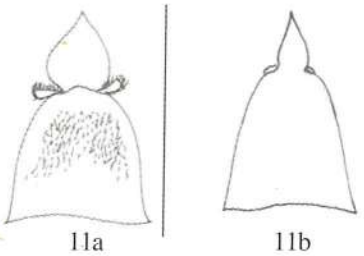

11a 11b

12a. पर्व-आवरण सतह के रोंयें काले; कर्ण चिपटे; पर्ण-आवरण (leaf-sheaths) रोमिल – **ब. वल्गेरिस**

12b. पर्व-आवरण सतह के रोंयें सफेद या पीले -भूरे; कर्ण तरंगनुमा उभरे हुए; पर्ण-आवरण अरोमिल – **ब. पोलिमॉर्फा**

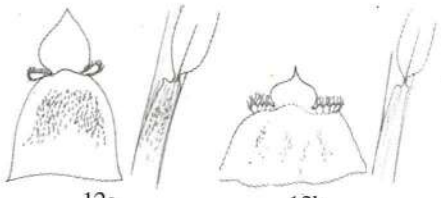

12a 12b

13a. पर्व-आवरण पटल की आंतरिक सतह सघन, काली रोयेंदार; शाखाओं की गाँठ कंटक युक्त– **ब. बैम्बोस**

13b. पर्व-आवरण पटल की आंतरिक सतह विरल, पीली रोंयेंदार; शाखाओं की गाँठ कंटक रहित – 14

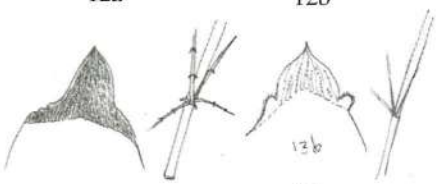

13a 13b

14a. पर्व-आवरण की बाहरी सतह रोंयेंदार; कर्ण तरंगनुमा उभरे हुए; पटल के किनारे नीचे की तरफ पक्ष्माभिकामय – **ब. टुल्डा**

14b. पर्व-आवरण की सतह अरोमिल; पर्ण चिपटे; पटल के किनारे चिकने – 15

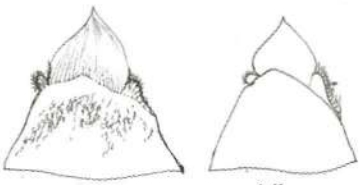

14a 14b

15a. मुख्य तना 2-3 मीटर लम्बा; पर्व-आवरण मुख्य शीर्ष पर गोल-शुंजित; कर्ण पर्णपाती – **ब. मल्टीप्लेक्स**

15b. मुख्य तना 8-10 मीटर लम्बा; पर्व-आवरण मुख्यशीर्ष पर उत्तलीय; कर्ण स्थायी – **ब. जैन्तीयाना**

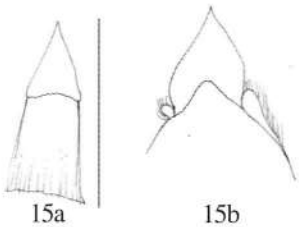

15a 15b

16a. तने की गाँठ समान सतह में, बिना मूलिका वलय के; पर्व पतली दीवार वाले; शाखाएँ लगभग एक समान– 17

16b. तने की गाँठ उभरी हुई, मूलिका वलय के साथ; पर्व मोटी दीवार वाले; शाखाएं भिन्न, असमान – 18

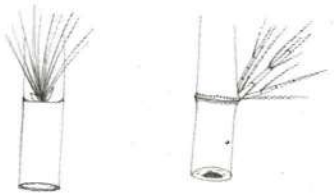

16a 16b

17a. पर्व-आवरण मुख्य, शीर्ष पर शुंडित; पटल उर्ध्व तथा अनुप्रस्थ शिरा–जाल युक्त; पर्ण-आवरण झिल्ली (leaf-sheath ligule) अरोमिल – **सा. पोलिमॉर्फम**

17b. पर्व-आवरण मुख्य, शीर्ष पर गोल-उत्तलीय; पटल पीछे की तरफ मुड़ी तथा अनुप्रस्थ शिरा रहित; पर्ण-आवरण झिल्ली रोमिल – **सा. डुलुआ**

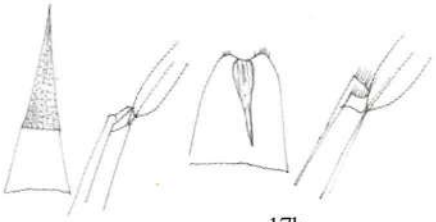

17a 17b

18a. पर्व - आवरण पटल आंतरिक सतह पर सघन रोमिल; पर्ण-आवरण झिल्ली शुंडित, अस्पष्ट – **डे. स्ट्रीक्टस**

18b. पर्व - आवरण पटल आंतरिक सतह पर अरोमिल; पर्ण-आवरण झिल्ली ऊर्ध्व, स्पष्ट – **डे. हैमिल्टोनाई**

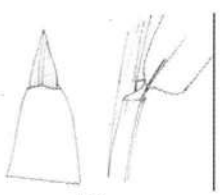

18b

बम्बुसा बालकुआ – सघन, पुंजमय तने वाले पौधे। तने की लम्बाई 15-20 मीटर तथा व्यास 8-15 से.मी.। तने की दीवार मोटी तथा नीचे की गाँठों से शाखित होती है, जो कठोर, काटेनुमा होती हैं। इसके पर्व-आवरण पर्व से लम्बे तथा बहुत कम और विरल रोंयें वाले होते हैं जो बाद में बिल्कुल चिकने हो जाते हैं। यह जाति *ब. बैम्बोस* से काफी मिलती है किन्तु दोनों के पर्व-आवरण बिल्कुल भिन्न हैं इसकी शाखाओं की गाँठ पर काँटे नहीं होते हैं। इसके तने काफी मजबूत और टिकाऊ होते हैं और व्यवसायिक स्तर पर इसका इस्तेमाल मुख्य रूप से भारी इमारती कार्यों और बाँस-काष्ठ उद्योग में होता हैं।

ब. बम्बोस – सघन, पुंजमय। तने की लम्बाई 15-25 मीटर तथा व्यास 10-15 से.मी.। तने की दीवार मोटी और नीचे की गाँठों से शाखित। इसके पर्व-आवरण पटल तथा कर्ण आंतरिक सतह पर अत्यधिक सघन, काले, रोंयें से भरे होते हैं तथा इनकी शाखाओं से 2-3 काँटे निकले होते हैं, जो इनकी पहचान के मुख्य लक्षण हैं। यह जाति मुख्य रूप से निर्माण कार्यों तथा कागज उद्योग में इस्तेमाल की जाती है।

ब. जैन्तीयाना – पुंजमय पौधे। तने कर लम्बाई 8-10 मीटर तथा व्यास 2-3 से.मी., दीवार पतली और सतह चिकनी होती है। यह *बै. टुल्डा* से मिलती-जुलती जाति है, परन्तु इसके पर्व-आवरण बिल्कुल चिकने होते हैं। इसका इस्तेमाल हस्तकला उद्योग में बड़ी कुशलता के साथ किया जाता है।

ब. मल्टीप्लेक्स – सघन पुंजमय, झाड़ीनुमा पौधे। तने की लम्बाई 2-4 मीटर तथा व्यास 1.5-2.0 से.मी., दीवार मोटी और सतह चिकनी होती हैं। पर्व-आवरण पतले, बिल्कुल चिकने तथा पर्णपाती कर्ण वाले होते हैं। इसका इस्तेमाल मुख्य रूप से टोकरियों के निर्माण तथा हस्तकला कार्यों में होता है।

ब. पैलीडा – सघन पुंजमय। तने की लम्बाई 10-12 मीटर, व्यास 5-8 से.मी., दीवार पतली और सतह चिकनी होती है। इसके पर्व-आवरण जो त्रिकोणाकार होते हैं और जिस पर बहुत छोटे समान कर्ण होते हैं, इसकी पहचान को बिल्कुल आसान बना देते हैं। इसका इस्तेमाल लगभग सभी प्रकार के सामान्य कार्यों में होता है।

ब. पोलिमॉर्फा – सघन, पुंजमय, विशाल वृक्षनुमा सुंदर पौधे। तने की लम्बाई 15-25 मीटर तथा व्यास 8-15 से.मी.। इसमें शाखाएँ सिर्फ ऊपरी गाँठों पर होती हैं। इसके पर्व-आवरण बाहरी सतह पर घने सफेद रोंयेदार होते हैं जिनमें हँसिये के आकार वाले लहरदार शूकमय कर्ण होते हैं। पटल कपनुमा होता है जिसके किनारे भी शूकमय होते हैं। इस जाति की विशिष्ट यांत्रिक विशेषताओं की वजह से इसका उपयोग कई महत्वपूर्ण कार्यों में किया जाता हैं जैसे–तन्तुरहित तखता, मकानों के फर्श, दीवार तथा छात की पट्टिया बनाने, हस्तकला कार्यों में आदि। इसके साथ ही इसकी नई कोपलें स्वादिष्ट अचार और सब्जी बनाने के लिए बहुत अच्छी होती हैं और इसका सुंदर रूप बागीचों की सुंदरता के लिए भी इसकी मांग बढ़ाते हैं।

ब. टुल्डा – सघन पुंजमय। तने की लम्बाई 15-20 मीटर, व्यास 5-10 से.मी.; दीवार मोटी। पर्व-आवरण त्रिकोणाकार और बाहरी सतह पर काले रोंयें होते हैं। पटल कपनुमा, त्रिकोणाकार, किनारे शूकमय; कर्ण भिन्न तथा असमान और शूकमय। इस जाति का इस्तेमाल मकान बनाने तथा इमारतों के ढाँचे बनाने में होता है। नई कोंपलें अचार बनाने के काम में आती हैं। भिन्न प्रकार के कागज उत्पादन तथा हस्तकला कार्यों में इसकी अच्छी मांग है।

ब. वल्गेरिस – पुंजमय पौधे। लम्बाई 8-20 मीटर तथा व्यास 5-10 से.मी., पर्व-आवरण बाहरी सतह पर काले-चमकीले रोंयेंदार तथा शीर्ष पर गोल-शुंडित होते हैं। इसके कर्ण चौड़े, समान और शूकमय होते हैं। इनका उपयोग कागज, निर्माण कार्य ढाँचे तथा हस्तकला कार्यों में होता है। इसके बने छल्ले मनिपुरी जनजातियों द्वारा कानों में पहने जाते हैं।

कीमोनोबम्बुसा कैलोसा – दूर फैलने वाले पौधे। तने की लम्बाई 5-6 मीटर तथा व्यास 2-2.5 से.मी., दीवार मोटी। तने की गाँठ उभरी हुई तथा काँटे और मखमली रोंयों की वलय के साथ होती हैं। इसके पर्व-आवरण पतले तथा बहुत पटल वाले होते हैं। इसके तने का उपयोग मछली पकड़ने वाले जाल तथा काँटे और झोपड़ियों के निर्माण में कुशलता से किया जाता है।

डेन्ड्रोकैलामस गिगान्टीयस – सघन पुंजमय, विशाल पौधे। तने की लम्बाई 20-30 मीटर, व्यास 20-30 से.मी. और ऊपरी गाँठों से शाखित होता है। पर्व-आवरण गुम्बदनुमा, कड़े और भंगुर होते हैं, जिसमें 1-1.5 से.मी. तक उँची झिल्ली होती है इसके कर्ण लहरदार तथा शुकरहित होते हैं। यह बाँसों की सबसे विशाल जाति है और इसके पर्व के कटे भाग का इस्तेमाल बाल्टी तथा अन्य बर्तन के रूप में सरलता से किया जाता हैं। इसके अतिरिक्त हस्तकला तथा कागज उद्योग में इसकी अच्छी मांग हैं।

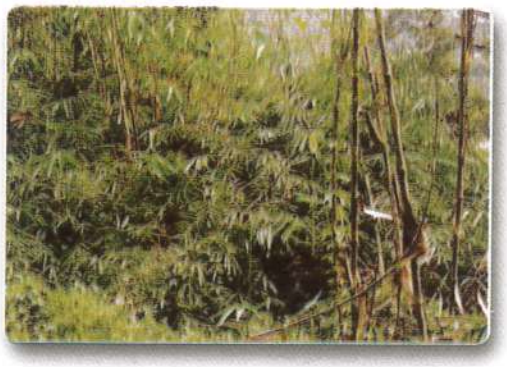

डे. हैमिल्टोनाई – पूर्वोत्तर राज्यों में पायी जाने वाली यह एक प्रमुख जाति है जिसके तने पुंजमय तथा ज्यादातर खड़े या झुके हुए होते हैं । इसकी लम्बाई 12-25 मीटर व्यास 5-15 से. मी. तथा दीवार मोटी होती है। इसके पर्व-आवरण लम्बे-त्रिकोणाकार और बाहरी सतह पर लगभग अरोमिल तथा बहुत छोटे, अस्पष्ट कर्ण वाले होते हैं। इनका इस्तेमाल मुख्य रूप से कागज उद्योग में तथा मकान बनाने के कार्य में होता है।

डे. हुकेरी–इसकी लम्बाई 15-20 मीटर, व्यास 10-15 से.मी. तथा दीवार मोटी होती है। पर्व-आवरण गुम्बद के आकार के होते हैं जिनके पृष्ठ पर घने और काले रोंयें 'V' आकार में सजे होते हैं। इसकी पटल बहुत छोटी होती हैं और कर्ण छोटे, गोल, शूकमय होते हैं। इनका उपयोग भी निर्माण कार्यो, तथा टोकरी और बाल्टी के रूप में होता हैं।

डे. स्ट्रीक्टस – सघन पुंजमय। तने की लम्बाई 8-16 मीटर, व्यास 2.5-8 से.मी. तथा पर्व लगभग ठोस, पूरे भरे होते हैं। पर्व-आवरण चर्मिल ओर कर्ण अनुपस्थित होते हैं। पटल आंतरिक सतह पर गहरे भूरे रंग के घने रोंये से भरी होती है। भारत में पायी जाने वाली जातियों में यह सबसे महत्वपूर्ण जाति है जिसकी उपयोगिता कागज उद्योग के साथ निर्माण और अन्य सभी कार्यों में है जिसमें मजबूती ओर टिकाऊपन की जरूरत होती है।

मेलोकैना बैक्कीफेरा – दूर फैलने वाले पौधे। इसके तने सीधे खड़े, 10-20 मीटर लम्बे, 3-7 से.मी. व्यास और पतली दीवार वाले होते हैं। ये ऊपरी गाँठों से शाखित होते हैं ओर शाखाएँ समान होती हैं। इसके पर्व-आवरण संवलित और पटल पीछे की ओर मुड़ी होती हैं। कर्ण अस्पष्ट तथा पर्णपाती शूकमय होते हैं। यह इस क्षेत्र की एक महत्वपूर्ण जाति है–जिसका उपयोग सर्वाधिक रूपों में होता है, जैसे–मकान बनाने, दीवार और छत की पट्टिका बनाने और विभिन्न हस्तकला उद्योगों आदि में। इसके फल त्रिपुरा की जनजातियों द्वारा खाए जाते हैं।

फाइलोस्टैकीस मानी – दूर फैलने वाले पौधे। तने की लम्बाई 5-6 मीटर तथा व्यास 2.5-3 से.मी. होती है। इसके पर्व शाखाओं की तरफ चिपटे होते हैं। पर्व-आवरण पतले और शीर्ष पर गोल होते हैं जिनके कर्ण मुड़े हुए और पर्णपाती शुकमय होते हैं। इसका इस्तेमाल मुख्य रूप से घेरों के लिए ओर छड़ी बनाने के लिए होता है।

रेसिमोबैम्बोस प्रेइनी – यह पतले और ठोस, लचीले तने वाली जाति है जो दूसरे वृक्षों पर फैलती है। इसके पर्व-आवरण पतले तथा खुरदुरे होते हैं ओर पटल अस्पष्ट होती है। इसका उपयोग टोकरियों के निर्माण तथा रस्सी के स्थान पर होता है।

साइजोस्टैकियम डुलुआ– तने की लम्बाई 6-9 मीटर, व्यास 2.5-7.5 से.मी. तथा दीवार पतली होती है इसमें पर्व की लम्बाई 1.2 मीटर तक देखी गई है। इसके पर्व आवरण शीर्ष पर गोल-अवतलीय होते हैं और पटल पीछे की तरफ मुड़े होते हैं। इसके पर्ण अनुपस्थित होते हैं। इसका इस्तेमाल छाता, चटाई, बड़ी टोपियों तथा पान रखने के डब्बे आदि बनाने में होता है।

सा. हेल्फेरी – पुंजमय, आरोही तने वाले। लम्बाई 6-15 मीटर, व्यास 1.5-2.5 से.मी. तथा दीवार बहुत मोटी होती है और पर्व लगभग ठोस हो जाते हैं। इसकी गाँठ उभरी हुई ओर वलित होती है। पर्व-आवरण संवलित तथा झिल्ली लम्बी शूकमय होती है। मुख्यतः टोकरीयों के निर्माण तथा समान कार्यों में उपयोगी है।

सा. पोलिमॉर्फम – पुंजमय झाड़ीनुमा, बड़ी पत्तियों वाले पौधे। तना 5-10 मीटर लम्बे, 3-3.5 से. मी. व्यास तथा पतली दीवार वाले होते हैं। पर्व-आवरण त्रिकोणाकार होते हैं जिसमें पर्व-आवरण मुख्य शीर्ष पर शुंडित होता है और उसके बराबर चोड़ाई की पटल भी सीधी जुड़ी होती है जिस पर अनुप्रस्थ शिरा जाल स्पष्ट दिखाई देते हैं। इसका उपयोग बड़े पैमाने पर हस्तकला उद्योग में होता हैं।

मादक पौधा ''कैनाबिस सेटाईवा'' के प्रति जागरूकता

आरती गर्ग एवं आर. के गुप्ता
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण,हावड़ा

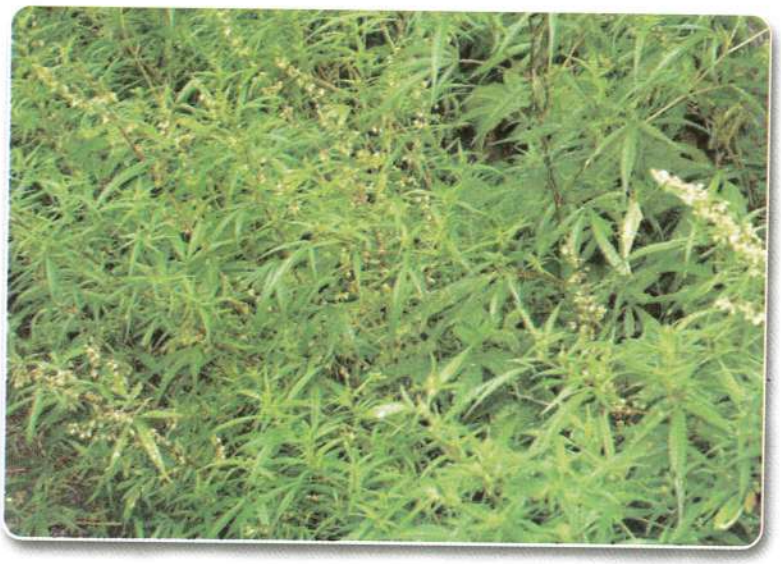

कैनाबिस सेटाईवा एल. की खेती

कैनाबिस जाति को सामान्यतः भाँग के नाम से जाना जाता है। इसकी उत्पत्ति मध्य एशिया में हुई लेकिन मनुष्यों द्वारा यह चीन, भारत तथा यूरोप में फैल गया। सर्वप्रथम इसे अर्टीकैसी अथवा मोरेसी कुल में रखा गया लेकिन अब इसे एक अलग कुल कैनाबेसी में रखा गया है। दो सदियों से यह एक विविदास्पद मुद्दा रहा है कि कैनाविस से अलग-अलग नस्ल मिलकर एकल प्रजाति सी. सेटाइवा का निर्माण करती हैं या इसकी अलग-अलग प्रजातियाँ है। स्मॉल और क्रॉन्क्विस्ट के अनुसार सभी कैनाबिस के पौधें कैनाबिस सेटाईवा प्रजाति के अंतर्गत आते हैं।

कैनाबिस जाति के सभी सदस्यों में लैंगिक जनन होता है। लिंग विभेद अलग-अलग लिंगो वाले पौधों में विशिष्ट होता है। बहुपयोगी हाने के कारण यह विशिष्ट पादप है। इससे तन्तु (रेशा), तेल, दवा तथा नशीले पदार्थ प्राप्त होते हैं। तन्तु विशेषकर नर पादपों से प्राप्त होता है जबकि मादा पादपों को खासकर नशीले पदार्थों की सम्पदा के रूप में उपयोग किया जाता है जिसके कारण इसकी खेती बाडी बड़े तादाद में तथा सामान्यतः अवैध रूप से की जाती है।

कैनाबिस सैटाइवा हैम्प के नाम से भी विख्यात है। इन पौधों का प्रत्येक भाग किसी न किसी रूप में उपयोगी होता है। यहाँ पर हम कैनाबिस सैटाइवा के मादा पौधे के उपयोग का वर्णन कर रहे हैं जो कि निरंतर प्रभीलक उत्पादन के कार्य में उपयोग किया जा रहा है।

कैनाविस सैटाइवा के मादा पौधों के फूलों को 'कली' कहा जाता है। यह रेसीम पुष्पक्रम में स्थापित होते हैं तथा बहुतायात में बीज उत्पादन करते हैं। मादा पौधे के रेज़िन में अधिक साईकोएक्टिव पदार्थ एकत्रित होते हैं। इनके सक्रीय रासायनिक यौगिक कैनाबिनोइड्स कहलाते हैं। यह पदार्थ औषधि निर्माण के मुख्य स्रोत हैं और इसका सेवन नशीले पदार्थो तथा औषधि के रूप में किया जाता हैं। फूलो और पत्तियों द्वारा निर्मित पदार्थ 'हशीश' कहलाते हैं जिन्हें धूम्रपान के उपयोग में लाया जाता है तथा इनका मौखिक अन्तर्ग्रहण भी किया जाता है।

कैनाबिस के पौधों से लगभग साठ केनावीनॉयड्स प्राप्त होते हैं। ये रासायनिक अवयव मनुष्य को मानसिक और शारीरिक रूप से सक्रीय करने वाले होते हैं। मुख्य मानसिक सक्रियता प्रदान करने वाला रासायनिक अवयव डेल्टा-9-टेट्राहाइड्रोकेन्नाबिनॉल (टी.एच.एस.) है जबकि केन्नाबिनॉल (सी.बी.डी.), जो विशेषकर उच्च सांद्र में पाया जाता है, खुद मानसिक सक्रीयता प्रदान नहीं करता है बल्कि टी.एच.एस. के प्रभाव को रूपांतरित करता है। कैनाबिस के पौधों से प्राप्त होने वाले मादक पदार्थो के मुख्य उत्पाद निम्नलिखित हैं :–

1. मारीजूआना:- इसकी पुष्पित शीर्ष (कलियाँ) तथा कभी-कभी पत्तियों का धूम्रपान के रूप में उपयोग किया जाता है।
2. हशीश :- इसे कलियों की राल गाँठ को दबाकर तथा पतले पर्दे से छानकर तैयार किया जाता है।
3. भाँग :- इसका उपयोग पेय के रूप में होता है तथा इसे नर एवं मादा स्कंध के सूखे हुए पत्तियों ओर फूलों से तैयार किया जाता है।
4. गाँजा :- यह विशेष सूखे हुए मादा अनिषेचित पुष्प क्रम से तैयार किया जाता है।
5. चरस :- कच्चे राल को चरस कहा जाता है तथा यह तेज़ मादक होता है।
6. हैश तेल :- इसे पौधे के मानसिक और शारीरिक रूप से सक्रीय करने वाले भागों से प्रायः तीव्र भागों से निकाला जाता है।
7. ब्लंत :- इसे मारीजुआना को तंबाकू में लपेटकर तथा सिगार बनाकर उपयोग किया जाता है।

ड्रग्स का मुख से सेवन करने से मननुष्य के शरीर पर तीव्र विषैला प्रभाव पड़ता है तथा इसके सेवन से मांसपेशियों में विरूपता, चक्कर आना, एकाग्रता में कठिनाई, व्याकुलता, चलने-फिरने मे कठिनाई, मुँह सूखना, निगलने में दिक्कत होना, दृष्टि दोष, अनिद्रा, उलटी होना इत्यादि की विकृति की समस्या हो सकती है। अत्यधिक मात्रा में इसका सेवन करना प्राणघातक हो सकता है तथा इससे मिरगी फिर अचेतनता एवं अंततः हृदय गति रुक जाती है जिसकी वजह मे मौत हो सकती है।

कैनाबिस या भाँग की खेती विभिन्न उद्देश्यों के लिए लगभग 4,500 वर्षों से भी अधिक समय से हो रही है। पुराने समय में इसे भूख़ मिटाने तथा चिंतन को प्रेरित करने के लिए लाभकारी माना जाता था और इस तरह से भारतीय हिंदू धर्म में इसका बहुत महत्वपूर्ण स्थान था एवं आज भी इसे भगवान शिव की पूजा के लिए पावन माना जाता है। भक्तगण ध्यान लगाने के लिए गाँजा का सेवन करते थे, आर्य लोग भाँग का व्यवहार अपने धार्मिक अनुष्ठानों में करते थे तथा ऐसा माना जाता था यह भूत प्रेतों से रक्षा करता है। भारत में ज्यादातर कैनाबिस के पौधों से तेल, मरीजूआना का पैदावार कुछ बाध्यकों को मानते हुए वैध है, फिर भी मादक के रूप में व्यवहार करने हेतु इसकी पैदावार करना गैर कानूनी है एवं इसकी खेती अवैध है। अन्ततः मादक पदार्थो की प्राप्ति हेतु कैनाबिस की खेती अवैध रुप से चोरी-छिपे की जाती है।

कैनाबिस में प्रजनन मुख्यतः बीजों के माध्यम से होता है लेकिन फिर भी इसके किसी भी भाग को काटकर लगाने से भी प्रजनन कर सकती है। परंतु ऐसे पौधे ज्यादा मज़बूत नहीं होते हैं। बीजों के माध्यम में प्रजनन की प्रक्रिया में सर्वप्रथम बीजों को ठंडे और सूखे जगह पर संचय करके रखा जाता है एवं इस तरह से बीज 2 वर्षो तक सहीसलामत रह सकते हैं। इसकी खेती करने की विधि अलग-अलग उद्देश्यों के लिए अलग-अलग तरह की होती है। अगर कैनाबिस के पौधों का व्यवहार नशीले पदार्थो के रूप में करना हो तो एसे पौधे छोट-छोटे, अधिक शाखाएँ वाले होते हैं तथा इनकी पत्तियाँ छोटी-छोटी ओर गहरे हरे रंग की होती है। ऐसे पौधों में बीमारियाँ, सूखापन, फफूँदी (फ़ंगस), उच्च तथा निम्न सांद्रता, कीटों, मल (लैटराइट), सूक्ष्म जीवाणु (माईक्रोबैक्ट्रिया), अनुपजाऊ भूमि, ढाल एवं खर-पतवार को बर्दाश्त करने की क्षमता अधिक होती है जिसके कारण इसकी खेती सभी तरह की विषम परिस्थितियों में हो सकती है। ये उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में अच्छी तरह से उगते हैं और अधिक ड्रग्स बनाई जाती हैं। एक बार फसल कट जाने के बाद, पौधों के तनों, पत्तियों और कलियों को अलग-अलग किया जाता है एवं अंततः इसे उँच्चा करके या तो इन्हें धूम्रपान करने के लिए मरीजुआना तैयार किया जाता है या हशीश तैयार किया जाता है। कैनाबिस के पौधों के उत्पादों को वजन के भाव से बिक्री की जाती है।

कैनाबिस की खेती बंद एवं खुले दोनों तरह के जगहों पर सम्भव है। बंद जगह पर उगाई गई कैनाबिस बेहतर गुणवता वाली होती है क्योंकि उन्हें उपयुक्त नियंत्रित वातावरण प्राप्त होता है। इस तरह की खेती सामान्यतः किराए

कैनाबिस सेटाईवा एल. की पत्तियां एवं पुष्पक्रम

पर लिए गए घरों में किया जाता है क्योंकि उत्पन्न/जनित उच्च ताप तथा आर्द्रता इन घरों को नष्ट कर देते हैं जिससे इनमें रहना सम्भव नहीं है। ऐसे घरों को रूपांतरित करके आर्द्र तथा गर्म किया जाता है। इस तरह से, समुचित प्रकाश तथा सिंचाई की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए भारी मात्रा में विद्युत शक्ति अनिवार्य है। इसलिए ऐसा कोई भी निवास-स्थान या घर जहाँ असाधारण तरीके से बिजली की खपत हो रही है, इस बात का संकेत है कि वहाँ पर कैनाबिस का मादक पदार्थ के उत्पादन के लिए अवैध खेती हो रही है और इस तरह इसके बारे में पता लगाया जा सकता है और रोकथाम की जा सकती है। असाधारण ताप की वृद्धि का पता लगाने के लिए की जाने वाली थर्मल(उष्णीय) छायाचित्र भी गुप्त फसलों का खुलासा करने में मददगार सिद्ध होते हैं। खुली जगहों पर कैनाबिस की खेती विशेषकर ऐसे संदिग्ध भूमि प्रदेशों पर की जाती है जो जंगलों के अंदर होते हैं या परित्यागित एवं एकांत होते हैं। वन विभाग द्वारा चलाए जा रहे कार्यक्रमों का यह परम उद्देश्य है कि भूमि प्रदेशों का पता लगाकर उन्हें नष्ट करे। कई मामलों में ऐसे भूमि प्रदेश इतने वृहत होते हैं कि फसलों को नष्ट करने के लिए नियंत्रित आग जलायी जाती है।

हाल के सालों में कैनाबिस की अवैध खेती बहुत ही कुख्यात हो गई है। पुलिस, सीमा शुल्क एवं उत्पाद विभाग ऐसे फसलों की खेती के बारे में पता लगाने तथा इनके अवैध व्यापार पर नियंत्रण करने के लिए पूरी मुस्तैदी से लगे हुए हैं एवं चूँकि इसकी खेती या व्यापार करना कठोर अपराध है तथा कानूनन दंडनीय है। पकड़े जाने पर जुर्माना या कारावास या दोनों की सजा हो सकती है। पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के अधीन भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण एक प्रमुख संस्था के रूप में कार्य करती है तथा ज़ब्त पौध सामग्रियों की पहचान कर उन्हें प्रमाणित करती है। भारत में पश्चिम बंगाल राज्य में, मुख्यतः नदिया, माल्दा, कूच बिहार एवं मुर्शिदाबाद जिलों में ऐसे पकड़े गए अनेक मामलों को प्रकाश में लाया गया है।

नशीले पदार्थो के विनाशकारी विषैलेपन से समाज की बहुत हानि हो रही है। देश के हर नागरिक का फर्ज है कि कैनाबिस मादक के विध्वंसकारी प्रभाव को रोकने की कोशिश करे। इस दिशा में सरकारी संस्थाओं द्वारा दिये गये निर्देशानुसार गुप्त रुप से की जाने वाली कैनाबिसके उत्पादन के बारे में पता लगाने में मदद करें। ऐसे मामलों की अनदेखी न करें बल्कि तुरंत नज़दीकी पुलिस चौकी या सीमा शुल्क/उत्पाद विभाग को यथाशीघ्र इसकी सूचना दें ताकि इस मामले में आगे की कार्यवाही की जा सके। अगर लोगों में इस तरह की जागरुकता हो जाए तो अवैध मादक पदार्थो के उत्पादन को जड़ से उखाड़ने में मददगार साबित होंगे तथा इससे संपूर्ण मानवजाति का बहुत बड़ा कल्याण होगा।

इसी प्रयास में, कैनाबिस का संरचनात्मक विवरण के अलावा कैनाबिस सेटाईवा की तस्वीर (चित्र सं 1 और 2) भी दी जा रही है ताकि इसकी पहचान स्पष्ट रूप से की जा सके :

यह लगभग 5 फीट लम्बा तथा भीतर से खोखला एक वार्षिक पौधा है, इसकी पत्तियाँ नीचे की तरफ विपरीत तथा ऊपर की तरफ एकांतर होती है। इसके फूल प्रायः छोटे, द्विलिंगी एवं फल दबे हुए गोल तथा बीज चपटे आकार के होते हैं।

———————

विधि विज्ञान एवं अपराध अनुसंधान में शैवाल का महत्व

प्रतिभा गुप्ता
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

आज अपराध अनुसंधान में विज्ञान का प्रयोग अत्यधिक बढ़ गया है । विज्ञान की सभी शाखाओं का प्रयोग न्याय शास्त्र एवं अपराध अनुसंधान में हो रहा है । आधुनिक अपराध अनुसंधान मुख्यतः भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, जैव रसायनिकी, जैव तकनीक, जन्तु विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, मानव विज्ञान, मनोविज्ञान इत्यादि पर निर्भर है । विज्ञान की विभिन्न विधाओं की सहायता से अपराधों की विवेचना प्रक्रिया को विधि विज्ञान कहा गया है, अर्थात विधि विज्ञान अपराध अनुसंधान की वह शाखा है जिसमें भौतिक प्रमाणों के आधार पर अपराध स्थल एवं संबंधित तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है । जिन अपराधों के स्पष्ट प्रमाण नहीं होते और अपराध एवं अपराधी के विषय में कुछ भी स्पष्ट न हो तो ऐसी स्थिति में अपराध अनुसंधान में विज्ञान की सहायता से एक ठोस परिणाम पर पहुँचा जा सकता है तथा हत्या, आत्महत्या या दुर्घटना को स्थापित एवं प्रमाणित कर सकते है । आधुनिक विधि विज्ञान में जीव विज्ञान का महत्व अत्यधिक बढ़ गया है । विशेष रूप से जैव रसायनिकी, जैव तकनीक, कीट विज्ञान, वनस्पति विज्ञान इत्यादि की सहायता से बहुत जटिल अपराधों की गुत्थी सुलझाई गई है ।

जैव रसायनिकी - इसका प्रयोग विशेष रूप विषाक्तता से संबंधित अपराधों में किया जाता है ।

जैव तकनीक - इसका प्रयोग आज कल बहुतायत से हो रहा है । इसमें जैव तकनीक विधियों की सहायता से घटना स्थल पर पाये गये जैविक प्रमाणों / सूत्रों के आर.एन.ए./डी.एन.ए./गुण सुत्री मिलान, आण्विक गठन की तुलना एवं पारस्परिक संबंध की सहायता से अपराध सूत्र ज्ञात सही अपराधी तक पहुँचा जाता है ।

कीट विज्ञान - अपराध अनुसंधान में की विज्ञान एक अत्यन्त महत्वपुर्ण साक्ष्य है विशेष रुप से मृत्यु के पश्चात समय अन्तराल ज्ञात करने में। सामान्यतः कही भी खुले स्थान पर पडे मृत शरीर पर मृतोपक्षी कीट पहुँच कर उसका भक्षण प्रारम्भ कर देते है और साथ ही साथ शरीर के खुले घावों एवं विभिन्न छिद्रों जैसे नाक, आंख व कान इत्यादि में अंड निक्षेपण भी करते है । इन कीटों में पूर्ण कायान्तरण होने के कारण अंडों से डिम्भक एवं प्यूपा तथा अन्ततः वयस्क बनते ही ये डिम्भक भी बहुत तेजी से ज्यादा खाने वाले होते है और उसी मृत शरीर का भक्षण करके अन्ततः उसे एक सडे हुए कंकाल युक्त मलवे में परिवर्तित कर देते हैं । अंडे के डिम्भक और उससे प्युपा बनने का समय अन्तराल लगभग निश्चित होता है । अतः ये मृत भक्षी कीट किस अवस्था में है जान कर मृत शरीर की मृत्यु का अनुमानित समय ज्ञात किया जाता है ।

वनस्पति विज्ञान - न्याय शास्त्र एवं विधि विज्ञान में अब पादप विज्ञान की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हो गई है । पौधों का प्रत्येक अवयव जैसे पराग कण, मकरन्द, बीज, फल, पत्तियां काष्ठ तथा जीवाणु, शैवाल, कवक, ब्रायोफाइट, टेरिडोफाइट, इत्यादि की सहायता से अनेक जटिल अपराधों की विवेचना एवं विश्लेषण कर वास्तविक अपराधी का पता लगाने में पादप वैज्ञानिकों ने श्रम साध्य अध्ययनों द्वारा अकाटय प्रमाण प्रस्तुत किये । अतः अपराधी को पकड़ने एवं अपराध स्थल की सही पहचान करने में पादप विज्ञान की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती है । एक अपहरण एवं हत्या के अपराध में संदिग्ध अपराधी ने घटना स्थल पर कभी भी न जाने की बात कही परन्तु उसकी कार में रखे कम्बल में लगे बीज जिस पौधे के थे वे केवल घटना स्थल पर ही पाये जाते थे । इन बीजों से सिद्ध हो गया कि अपराधी झूठ बोल रहा था । न्यायालय ने पादप वैज्ञानिक के निष्कर्ष को आधार मान कर अपराधी को दंडित किया।

विधि विज्ञान एवं शैवाल - विशेष रूप से शैवाल विधि विज्ञान में एक महत्वपूर्ण सुत्र एवं आधार माने जाते है । मुख्यतः जल में डूबने से हुई घटनाओं में अथवा जलाशयों, नदियों झरनों अथवा समुद्र के समीप हुई घटनाओं में शैवाल का महत्व इसलिए और भी बढ़ जाता है क्योंकि -

- शैवाल सर्वव्यापी है एवं पृथ्वी पर लगभग सभी स्थानों में पाये जाते हैं ।
- शैवाल पूरे वर्ष पाये जाते है । तापक्रम और ऋतु के प्रभाव से इनकी सांद्रता एवं जातियों की संख्या पर प्रभाव पड़ता है ।

शैवाल का विधि विज्ञान में उपयोग निम्नवत है -

- जल में डूबने से हुई मृत्यु को प्रमाणित करने में।
- अपराध स्थल की पहचान करने में ।
- मृत्यु उपरान्त समय अन्तराल का अनुमान करने में ।

भारत में डूबने से हुई मृत्यु बहुत अधिक होती है मुख्यतः स्त्रियां पारिवारिक कलह, आवेश अथवा तनाव में आस पास की नदी, तालाब अथवा कुयें में कूद कर आत्महत्या कर लेती है । आज कल स्कूल जाने वाले बच्चों में परीक्षा / परीक्षा फल के तनाव के कारण, अथवा युवक युवतियों में आर्थिक, शैक्षिक एवं सामाजिक तनाव के कारण जल में कूद कर आत्महत्या करने की प्रवृति बहुत बढ़ गई है । इन आत्महत्याओं में जल में डूबने से हुई मृत्यु की पुष्टि में शैवालों का अत्यन्त महत्व है । हमारे देश में मुख्यतः उत्तर भारत में कुछ विशेष परिस्थितियों में शव को प्रवाहित कर देने की भी परम्परा है । इसके अतिरिक्त हत्या करके अपराध को छुपाने हेतु भी शव नदियों या जलाशयों में डाल दिये जाते है । कहीं भी जल में डूबा मृत शरीर कब कैसे और कहां से जल में पहुँचा यह निर्धारित करना और जानना अत्यन्त आवश्यक है कि -

1. क्या डूबने से मृत्यु हुई ।
2. डूबना दुर्घटना है या आत्महत्या अथवा हत्या ।
3. मृत शरीर कितने समय से जल में है ।

सामान्यता – कोई भी जीवित व्यक्ति चाहे वह आत्महत्या के उद्देश्य से जल में कूदा हो या दुर्घटना वश जल में गिर गया हो या हत्या की नियत से उसे जल में गिराया गया हो, डूबते समय श्वास अवराध की प्रक्रिया स्वरूप संघर्ष करता है, झटके से हाथ पैर चलाता है । लम्बी - लम्बी सांसे खींचता है जिसके परिणाम स्वरूप उसके फेंफड़ो एवं आमाश्य में अत्यधिक जल भर जाता है । इस जल में प्लवक शैवाल तथा अन्य सूक्ष्म जलीय पौधे, रेत, मिट्टी इत्यादि भी होते हैं । अतः डूबने से हुई मृत्यु में मृतक के श्वसन तंत्र, आहार नाल में अधिक मात्रा में जल तथा उसके साथ शैवाल, रेत, मिट्टी आदि भी पाये जायेंगे । परन्तु यदि मृत्यु के बाद शरीर जल में डाला गया हो तो मृत शरीर में श्वास अवरोध की प्रक्रिया संघर्ष न होने के कारण फेफडो व आमाश्य में जल की मात्रा नगण्य होगी । अतः डूब कर हुई मृत्यु में शैवाल एक महत्वपूर्ण प्रमाण सिद्ध होते है । डूबते समय शरीर में प्रवेश किये जल के साथ-साथ शैवाल भी प्रवेश कर जाते है इसमें से डायटम अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण रक्त वाहिनियों से होकर शरीर के विभिन्न अंगो जैसे मस्तिष्क, यकृत, पेशियों एवं अस्थि मज्जा में पहुँच जाते हैं । इन डायटम के चारो और सिलिका का कठोर आवरण होता है परिणाम स्वरूप मृत शरीर के अधिक दिन डूबे रहने और विघटित हो जाने पर ये नष्ट नहीं होते और अपराध अनुसंधान की एक महत्वपूर्ण कड़ी सिद्ध होते है । शरीर के विभिन्न अंगों में डायटम की उपस्थिति डूब कर हुई मृत्यु का पुष्ट प्रमाण है । डायटम की लगभग 15,000 जातियां है इनकी लगभग आधी जातियां समुद्री जल में पायी जाती है जबकि शेष स्वच्छ जल में मिलती है । यदि मृत शरीर जहां मिला वहां के जल में उपस्थित शैवाल तथा मृत शरीर के अन्दर पाये गये शैवालों की तुलना की जाये तो अपराध स्थल की पुष्टि हो सकती है । यदि कोई पानी में कुदा है या दूर्घटनावश पानी में गिर गया है तो उसके फेंफड़ो व आमाश्य में उपस्थित शैवाल डूबने से हुई मृत्यु की पुष्टि करेंगे । एक सामान्य स्वस्थ वयस्क मनुष्य को जल में उठा कर फेंकना आसान नहीं हैं जब तक उसे अचानक धक्का न दिया गया हो या उसे कोई नशीली वस्तु न दी गई हो । नशीले पदार्थ के प्राभाव में डूबने वाले व्यक्ति के फैफडों और आमाश्य में जल की मात्रा अपेक्षाकृत कम होगी साथ ही साथ मिट्टी में रेत, मिट्टी एवं शैवाल भी बहुत कम होंगे क्योंकि नशे की हालत में व्यक्ति अधिक हाथ पैर नहीं चला पाएगा और संघर्ष अपेक्षाकृत बहुत कम होगा । यदि किसी व्यक्ति को

मारने के बाद जल में फेंका गया है तो उसके मृत शरीर में चोट या आक्रमण के चिन्ह हो सकते है पर डूबते समय संघर्ष न करने के कारण उसके फेंफडों व आमाश्य एवं अन्य अंगों में जल अथवा शैवाल नहीं होगे अतः शरीर जल में मिलने पर भी डूब कर मृत्यु होने के प्रमाण नहीं मिलेंगे। घटना स्थल अथवा अपराध स्थल का स्थान निर्दिष्ट करने में भी शैवाल का अत्यन्त महत्व है यदि मृत शरीर के आमाश्य एवं फेंफड़ो में भरे जल में वही शैवाल है जो डूबे हुए मृत शरीर के चारों और के जल में है तो मृतक वही डूबा था जहां शरीर पाया गया परन्तु कभी-कभी जल प्रवाह के साथ-साथ शरीर घटना स्थल से अधिक दूर बह कर चला जाता है तो मृत शरीर में उपस्थित शैवालों व आस पास के जल के शैवालों में समानता नहीं होती उस जल प्रवाह में वे शैवाल नहीं मिलते है जो शरीर कें अन्दर पाये गये इसका पता लगा कर डूबने के सही स्थान का पता लगाया जा सकता है। एक अपराध में एक नदी के किनारे एक व्यक्ति पर जान लेवा हमला किया गया, उस व्यक्ति ने अपने ऊपर हमला करने वाले व्यक्ति की पहचान बताई संदिग्ध अपराधी ने पकड़े जाने पर उस स्थान पर कभी भी न जाने की बात कही परन्तु उसके जूतों की मिट्टी की पपड़ी में कई प्रकार के शैवाल पाये गए जिनमें से डायटम यूनोसिया की तीन दूर्लभ जातियां भी थी जो केवल घटना स्थल पर पाई जाती थी इस बात को एक सशक्त प्रमाण मान कर अपराधी से सघन पूछ ताछ करने पर उसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया।

विधि विज्ञान में शैवालों का एक अन्य महत्वपूर्ण उपयोग मृत्योपरान्त डूबे रहने का समय अन्तराल (पी. एम. एस. आइ. - पोस्ट मार्टम सबमरसन इनटरवल) का अनुमान लगाने में किया जात है। सामान्यतः डूबते समय शरीर जल से भारी होता है। अतः मृत्योपरान्त शरीर जल में डूब जाता है। लगभग 18-24 घंटे (वातावरण एवं जल के तापक्रम के अनुसार) में मृत शरीर में जैव रासायनिक क्रियाओं एवं जीवाणु के द्वारा आन्तरिक विघटन से बनी गैसे शरीर में भर कर उसे हल्का कर देती है परिणाम स्वरूप शरीर तैरेने लगता है। परन्तु मस्तिष्क वाला भाग सबसे ज्यादा भारी होने के कारण जल में डूबा रहता है। तैरते शरीर से गैसें छिद्रों या विघटन के कारण बनी दरारों से निकल जाती है और मृत शरीर पानी में पुनः डूब जाता है फिर यदि उसे निकाला नहीं गया तो कालान्तर में विघटित होकर कंकाल युक्त मलवे में परिवर्तित हो जायेगा।

डूबे हुए मृत शरीर पर विघटन के साथ शैवालों के समुदाय पनपने लगते है और लगभग तीन सप्ताह में शैवाल समुदाय स्थायित्व प्राप्त कर लेते हैं। कुछ महत्वपूर्ण शैवाल जैसे डायटम-नेवीकुला क्रिप्टोटिनेला आदि डूबे हुए मृत शरीर में लगभग 25 दिन में स्थायित्व प्राप्त कर लेते है। ऐन्किस्ट्रोडेसमस (हरित शैवाल) की जाति लगभग 30 दिनों के बाद भी नहीं वृद्धि करती है अतः इन्हें देरी से वृद्धि करने वाला शैवाल माना जाता है। ये शैवाल तापक्रम एवं ऋतु के अनुसार स्थायित्व ग्रहण करते है। इनके स्थायित्व काल की गणना कर डूबने के समय का (पी.एम.एस.आइ.) अनुमान किया जा सकता है। इसके लिए मृत शरीरों को जल में डूबा कर शैवाल वृद्धि की दर, अलग अलग तापक्रमों एवं विभिन्न ऋतुओं में इनके स्थायित्व काल की गणना करके, इनके तुलनात्मक विवरण का प्रयोग अपराध अनुसंधन एवं मृत्योपरान्त डूबे रहने का समय अन्तराल (पी.एम.एस.आइ.) ज्ञात करने में किया जाता है। शैवाल वृद्धि के इन तुलनात्मक आंको को प्राप्त करने के लिए मछली, चुहे, सुअर, कुत्ते, बिल्ली इत्यादि के शवों को जल में डुबा कर परीक्षण किये जाते है। जिसमें नितलस्थ (बेनथिक) शैवाल की वृद्धि दर एवं उनके मध्य पारस्परिक सामुदायिक अन्तर क्रिया एवं संबंध के अध्ययन से भी पी.एम.एस.आइ. गणना में सहायता मिलती है। डूबे हुए मृत शरीर पर लगभग तीन सप्ताह में कवक की एक मोटी पर्त उत्पन्न हो जाती है जो सामान्य शैवाल वृद्धि की दर को भी प्रभावित करती है इसके अतिरिक्त डूबे हुए मृत शरीर के चारों और जीवाणुओं के कारण एक पतला जैविक आवरण बन जाता है इस जैविक आवरण, कवक की पर्त एवं शैवाल वृद्धि के पारस्परिक संबंध एवं अन्तर क्रिया के संदर्भ में अभी भी एक विस्तृत प्रयोगात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता है।

मृत शरीर के फेंफड़ो तथा आमाश्य में भरे जल में उपस्थित शैवाल डूबने से हुई मृत्यु की पुष्टि करते है। परन्तु अभी तक जलाशय में उपस्थित शैवाल की जातियों एवं डूबे हुये शरीर में पाई गई शैवालों की जाति संख्या एवं सांद्रता के तुलनात्मक आंकड़े प्राप्त नहीं है जिनकी सहायता से समयान्तराल गणना को और सटीक बनाया जा सकता है। शैवाल वृद्धि की दर जल में उपस्थित मृत शरीर भक्षी जन्तुओं से भी प्रभावित होती है। ठहरे हुए जल तुलना में बहते हुए जल में

शैवाल वृद्धि की दर भिन्न होगी । शल्कीय क्राइसोफाट-मालोमोनास कोडाटा तालाब एवं झीलों के पानी में बहुतायत में पाये जाते है जबकि बहते हुए जल में यह नहीं मिलते । शरीर के खुले भागों व घावों पर जीवाणु जल्दी पनपेंगे । जबकि ढके अंगों पर शैवाल अधिक देर में पनपेंगे। जल प्रवाह की दिशा वाले शरीर के भागों पर शैवाल वृद्धि की दर प्रवाह की दिशा वाले भाग की तुलना में अधिक होगी । अतः शैवालों की विधि विज्ञान एवं अपराध अनुसंधन में महत्वपूर्ण भूमिका है । डूबने से हुई मृत्यु की पुष्टि हत्या, दुर्घटना, आत्महत्या में अंतर स्थापित करने, अपराध स्थल / दुर्घटना स्थल को चिन्हित करने एवं मृत्योपरान्त समय अंतराल गणना में सहायता मिलती है ।

इस ज्ञान को आगे बढाने के लिए डूबे हुए मृत शरीर एवं शैवालों के संबंध में बहुत से प्रयोगात्मक अध्ययनों एवं तुलनात्मक आंकड़ो की आवश्यकता है । परन्तु इस बात में कोई संदेह नहीं है कि अपराध अनुसंधान एवं विधि विज्ञान में शैवालों की उपयोगिता न्याय शास्त्र के लिए एक सुदृढ़ प्रमाण एवं अपराध अनुसधान को दिशा देने में एक महत्वपूर्ण सूत्र है ।

धूल-धुआं और बढ़ता शोर।
धरती चली विनाश की ओर।।

विशाल जलीय लिली (विक्टोरिया) के संकर (हाइब्रिड)

शिव कुमार
भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा

विशाल जलीय लिली, जिसे हम आज *विक्टोरिया* के नाम से जानते हैं के छः प्रकार के संकर (हाइब्रिड) अथक परिश्रम एवं प्रयास के उपरांत विभिन्न वनस्पतिज्ञ एवं उद्यानज्ञ द्वारा सफलता पूर्वक तैयार किए गए हैं। इन संकरों को जानने से पहले, हमें दुनिया के विशालतम अन्तंत मन-भावन, सुंदर तथा आश्चर्य चकित कर देने वाले जलीय लिली के पौधे के बारे में पूर्ण जानकरी होना अति आवश्यक है ।

विक्टोरिया की खोज सर्वप्रथम सन् 1801 ई. में एक जर्मन वनस्पतिज्ञ एवं प्राकृतिकज्ञ 'तेडियाँस हेंएके' ने आमेजन की सहायक मेमोर नदी में किया था तथा इसकी जानकारी/विवरण को बिना प्रकाशित किए सन् 1817 ई. में चल बसे। सन् 1819 ई. में एक फ्रांसीसी चिकित्सक से वनस्पतिज्ञ बने 'एईमी बोन्पलन्ड' तथा एक जर्मन प्राकृतिकज्ञ एवं साहसी बटोही 'एलेक्जेण्डर वॉन हमवोल्डट' के साथ मिलकर इसे कोरीऐंटीस, आर्जेटिना में पाया तथा सन् 1825 ई. में उन्होंने इसके बीज एवं पूर्ण विवरण को फ्रांस भेजा। सन् 1832 ई. में 'ईडूऑड पोइपिंग' ने पहली बार इस पौधे को द्विनाम पद्धति के अनुसार इयूराइले आमेजोनिका के नाम से प्रकाशित इस उद्देश्य से किया कि यह पौधा एशियाई इयूराइले फेरॉक्स का नजदीकी संबंधी 'चचेरा भाई' है। सन् 1836 ई. में इस पौधे को जर्मन वनस्पतिज्ञ 'रॉर्बट स्कामर्वध' ने बरबाईस नदी, ब्रिटिश गुयाना में तथा सन् 1838 ई. में अंग्रेज वनस्पतिज्ञ एवं उद्यानज्ञ 'जॉन लिण्डलेए' ने इसके वंश नाम इयूराइले को ग्रेट ब्रिटेन की रानी 'एलेक्जेण्डरीना विक्टोरिया' के सम्मान में 'विक्टोरिया' तथा जाति नाम 'रेजिया' रखा। इसके बाद सन् 1850 ई. तक इस पौधे को लोग विक्टोरिया रेजिया या विक्टोरिया रेजीना के नाम से पुकारते रहे तथा पुनः इसके नाम में परिवर्त्तन 'जे. सी. सार्वबी' द्वारा विक्टोरिया आमेजोनिका हुआ जिसे आज तक सभी इसी नाम से जानते एवं पुकारते हैं क्योंकि यह पौधा उष्णकटिबंधीय आमेजन में सामान्य रूप से बहुतायत में पाया जाता है। इसकी पत्तियाँ प्रायः सपाट, हरा-बैंगनी या कभी लाल-बैगनी की तरह, किनारा कम ऊँचाई जिसका बाह्य भाग बैंगनी एवं निचला भाग लाल अथवा बैंगनी होता है। परंतु एक दूसरा पौधा, जिसका पूरा आकारिकी विक्टोरिया आमेजोनिका की तरह ही है किंतु पत्तियों का रंग चमकीला हरा, किनारा अत्यधिक ऊँचा जिसका बाह्य भाग हरा या असामान्य अवस्था में लाल-बैंगनी रंग लिए हुए तथा निचला भाग बैंगनी होता है। सर्वप्रथम, इसे 'एलसिडे डी-ऑरविग्नि' ने सन् 1827 ई. में कोरीऐंटीस तथा पुनः सन् 1833 ई. में बोलीभीया में देखा एवं सन् 1840 ई. में बोलीभीया के 'सेनापति (जनरल) शांताक्रुज' के सम्मान में विक्टोरिया क्रुजीयाना के नाम से नामकरण किया।

दोनों पौधों के खोज के उपरांत, सन् 1848 ई. तक इन्हें विभिन्न वैज्ञानिक विधियों को अपनाते हुए उद्यानों में उगाने का हर संभव प्रयास जारी रहा, परंतु सफलता नहीं मिली। बाद में इसके बीज को एक बोतल में मीठा जल (विपरार्थ खारा जल) के साथ दो अंग्रेज चिकित्सकों 'रॉडी' एवं 'लक्की' ने रॉयल वनस्पति उद्यान, किऊ भेजा जो वहाँ सन् 1849 ई. के फरवरी महीना में पहुँचा। प्राप्त बीजों को एक विशेष रूप से निर्मित पौध घर (ग्रीन हाउस) में 'जोसेफ पैक्सटन' द्वारा लगाया गया। बीज सफलता पूर्वक अंकुरित हुए। पौधों के पूर्ण वयस्क होने पर प्राप्त प्रथम पुष्प (फूल) को 8 नवंबर, 1849 को 'रानी विक्टोरिया' को भेंट स्वरूप अर्पित किया गया। इस उपलब्धि के बाद, पौधों से प्राप्त बीजों एवं उगाने की विधि को पूरे यूरोप, एशिया एवं अमेरिका में इसके विस्तार के उद्देश्य से भेजा गया। फलस्वरूप, यह पौधा आज दुनिया के प्रायः प्रमुख 28 देशों में प्रत्येक वर्ष उगाया जाता है तथा दर्शक एवं पौधा प्रेमी इसकी मन-भावन नैसर्गिक सुंदरता का आनंन्द ले रहे हैं।

वैज्ञानिक पद्धतियों में लगातार हो रहे प्रायोगिक प्रयास एवं उपलब्धियों के कारण विभिन्न वैज्ञानिकों ने सन् 1961 ई. से लेकर सन् 2000 ई. तक विक्टोरिया के मन-भावन नैसर्गिक सुंदरता को और अधिक बढ़ाने के उद्देश्य से संकरण प्रक्रिया द्वारा छः प्रकार के संकर (हाइब्रिड) तैयार किए गए। इस प्रक्रिया में सामान्य पौधा के बीजाण्ड को दूसरे सामान्य पौधा के

पराग से तथा उल्टा-पुल्टा कर परागण कराकर दो 'प्राथमिक संकर' तथा प्राप्त दोनों प्राथमिक संकरों के बीजाण्ड को सामान्य पौधा के पराग से तथा उल्टा-पुल्टा कर परागण कराकर चार 'प्रतीप संकर' (बैक-क्रास हाइब्रिड) सफलता पूर्वक तैयार किए गए। संकरों को तालिका - 1 तथा संकरों के विभिन्न प्रकार को छायाचित्र समूह 1 में दर्शया गया है तथा उनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है।

1. विक्टोरिया 'लौंगवुड संकर'

पैट्रिक नट् ने सन् 1961 ई. में लौंगवुड उद्यान में सफलता पूर्वक पहली बार विक्टोरिया क्रुजीयाना के बीजाण्ड को विक्टोरिया आमेजोनिका के पराग से परागण कराकर संकर बीज प्राप्त किया। उन्होंने, सन् 1962 ई. में प्राप्त बीजों को सफलता पूर्वक उगाया एवं पौधे को 'लौंगवुड संकर' नाम से नामकरण किया गया। संकर पौधे में दोनों जनक (प्रभव) पौधों के गुण पाये गये। परन्तु धीरे-धीरे कालांतर में विक्टोरिया क्रुजीयाना (बीजाण्ड पाधा) का गुण अत्यधिक प्रबल हो जाता है। पत्तियों का रंग हरा/ताम्र, मध्यम ऊँचाई वाले किनारों के साथ जिसका बाह्य एवं निचला भाग गहरा लाल होता है। कलियाँ थोड़ी गोलाकार, बाह्यदल मध्यम गुलाबी जिसके ऊपर कांटों की संख्या थोडी होती है। पंखुड़ी थोड़ा गोलाकार, पुष्प खिलने वाले दिन के रात्रि तक क्रीम सफेद तथा दूसरे दिन के रात्रि तक मध्यम गुलाबी रंग का होता है।

2. विक्टोरिया 'एडभेंचर संकर'

सन् 1999 ई. में नॉट्स, स्टाईलर एवं सर्मस ने विक्टोरिया आमेजोनिका के बीजाण्ड को विक्टोरिया क्रुजीयाना के पराग से परागण कर 'एडभेंचर संकर' तैयार किया। संकर पौधा का गुण दोनों जनक पौधों के गुणों के बीच पाया गया परन्तु झुकाव विक्टोरिया आमेजोनिका (बीजाण्ड पौधा) के विशिष्ट गुणों के तरफ अत्यधिक हुआ। पत्तियों का रंग ताम्र/हरा, थोडा कम ऊँचाई वाले किनारा जिसका बाह्य एवं पत्ती का निचला भाग कथ्थई रंग का होता है। कलियाँ नुकीली, बाह्यदल मध्यम गुलाबी जिसके ऊपर अल्प संख्या में काँटे होते हैं। पंखुडी थोड़ी नुकीली जो खिलने वाले दिन के पहले रात्रि तक क्रीम सफेद तथा दूसरे दिन के रात्रि तक मध्यम गुलाबी रंग की होती हैं।

3. विक्टोरिया 'डिसकवरी संकर'

सन् 1999 ई. में नॉट्स ने 'लौंगवुड संकर' के बीजाण्ड को विक्टोरिया आमेजोनिका के पराग से परागण कराकर जो संकर प्राप्त किया उसमें विक्टोरिया आमेजोनिका के जैसा ही गुण पाए गए। पत्तियों का रंग कथ्थई/ताम्र/हरा थोड़े कम ऊँचाई वाले किनारे का होता है। कलियाँ नुकीली, बाह्यदल गहरा गुलाबी जिसके ऊपर थोड़े काँटे होते हैं। पंखुड़ी थोड़ा दुर्बल (दुबला-पतला), खिलने वाले दिन के पहले रात्रि तक सफेद तथा दूसरे दिन के रात्रि गहरे लाल रंग का होता है।

4. विक्टोरिया 'चैलेंजर संकर'

सन् 1999 ई. में नॉट्स एवं सर्मस ने 'लौंगवुड संकर' के बीजाण्ड को विक्टोरिया क्रुजीयाना के पराग से परागण कराकर विक्टोरिया क्रुजीयाना के गुणों जैसा हीं 'चैलेंजर संकर' प्राप्त किया। पत्तियाँ हरी तथा खडे लहरदार किनारे की ऊँचाई थोड़ी अधिक होती है। किनारे का बाह्य एवं पत्ती का निचला भाग लाल होता है। कलियाँ नुकीली, बाह्यदल मध्यम गुलाबी, थोड़े बहुत काँटों के साथ होता है। पंखुड़ी जरा गोलाकार जो खिलने वाले दिन के रात्रि तक क्रीम सफेद तथा दूसरे दिन के रात्रि तक हल्के गुलाबी रंग की होती है।

5. विक्टोरिया 'अटलांटिस संकर'

सन् 2000 ई. में नॉट्स ने 'एडभेंचर संकर' के बीजाण्ड को विक्टोरिया आमेजोनिका के पराग से परागण कराकर विक्टोरिया आमेजोनिका के गुणों को धारण किए हुए जो संकर प्राप्त किया उसे 'अटलांटिस संकर' कहा। पत्तियाँ कथ्थई/

विक्टोरिया आमेजोनिका

विक्टोरिया का 'लौंगवुड संकर' (*विक्टोरिया क्रुजीयाना* ♀ × *विक्टोरिया आमेजोनिका* ♂)

विक्टोरिया का 'एडभेंचर संकर' (*विक्टोरिया आमेजोनिका* ♀ × *विक्टोरिया क्रुजीयाना* ♂)

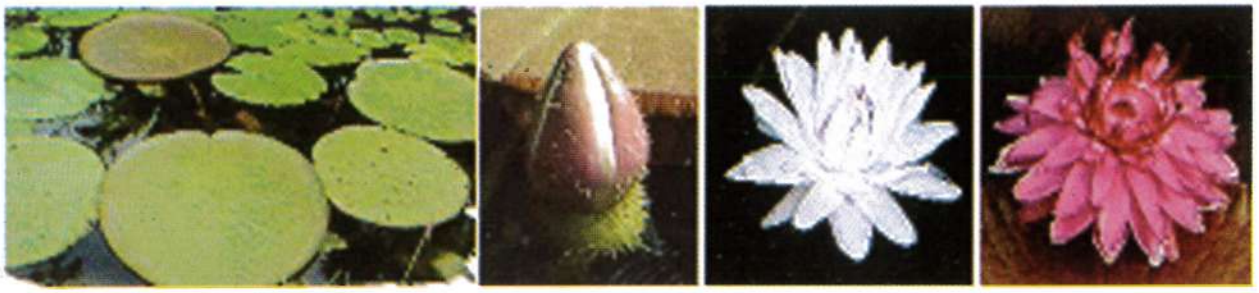

विक्टोरिया का 'डिसकवरी संकर' ('लौंगवुड संकर' ♀ × *विक्टोरिया आमेजोनिका* ♂)

छायाचित्र समूह 1 : विशाल जलीय लिली *(विक्टोरिया)* के विभिन्न संकर

विक्टोरिया क्रुजीयाना

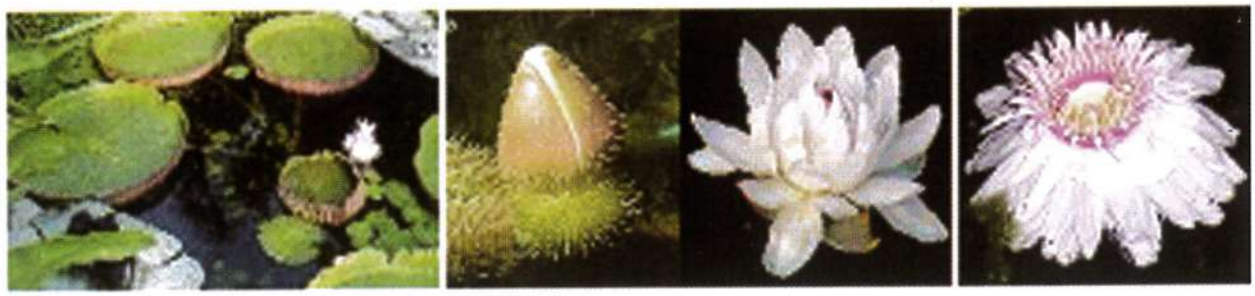

विक्टोरिया का 'चैलेंजर संकर' ('लौंगवुड संकर' ♀ × *विक्टोरिया क्रुजीयाना* ♂)

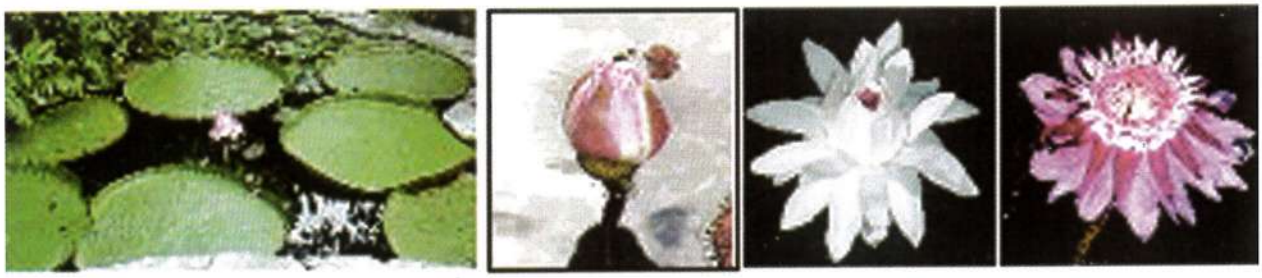

विक्टोरिया का 'अटलांटिस संकर' ('एडभेंचर संकर' ♀ × *विक्टोरिया आमेजोनिका* ♂)

विक्टोरिया का 'कोलम्बिया संकर' ('एडभेंचर संकर' ♀ × *विक्टोरिया क्रुजीयाना* ♂)

छायाचित्र समूह 1 : विशाल जलीय लिली *(विक्टोरिया)* के विभिन्न संकर

ताम्र/हरा जिसका किनारा थोडे कम ऊँचाई के साथ ढालुआ होता है। कलियों का बाह्यदल मध्यम गुलाबी जिसके ऊपर थोड़े काँटों के साथ नुकीला होता है। पंखुडी थोड़ा दुर्बल (दुबला-पतला), नुकीला, पुष्प खिलने वाले दिन के रात्रि तक सफेद तथा दूसरे दिन के रात्रि तक गर्म वातावरण के कारण गहरे लाल रंग का होता है। सर्दियों के मौसम में पुष्प खिलने के दूसरे दिन के रात्रि में बाहर की तरफ की पंखुडियों का रंग गंदला गुलाबी तथा केन्द्र के तरफ की पंखुडियों का रंग कथ्थई होता है।

6. विक्टोरिया 'कोलम्बिया संकर'

सन् 2000 ई. में ही नॉट्स ने 'एडभेंचर संकर' के बीजाण्ड को विक्टोरिया क्रुजीयाना के पराग से परागण कराकर विक्टोरिया क्रुजीयाना की तरह का 'कोलम्बिया संकर' सफलता पूर्वक प्राप्त किया। पत्तियों का रंग चमकीला हरा, जिसके किनारे अत्यधिक ऊँचाई वाले, जो अंदर की तरफ झुके होते हैं। कलियों का बाह्यदल मध्यम गुलाबी जिसके बाह्य भाग पर थोड़े-बहुत काँटों के साथ हल्का नुकीला होता है। पंखुडियाँ थोड़ी गोलाकार, पुष्प खिलने के पहले दिन के रात्रि तक क्रीम सफेद तथा दूसरे दिन के रात्रि तक हल्के गुलाबी रंग की होती है।

तालिका - 1

जनक (प्रभव) पौधे एवं उनसे प्राप्त संकरों के प्रकार

क्रम संख्या	जनक (प्रभव) पौधे		संकरों के प्रकार	
	बीजाण्ड पौधा	पराग पौधा	संकरों के स्तर	संकरों के नाम
1.	विक्टोरिया क्रुजीयाना	विक्टोरिया आमेजोनिका	प्राथमिक संकर	'लौंगवुड संकर'
2.	विक्टोरिया आमेजोनिका	विक्टोरिया क्रुजीयाना	प्राथमिक संकर	'एडभेंचर संकर'
3.	'लौंगवुड संकर'	विक्टोरिया आमेजोनिका	'प्रतीप संकर' (बैक-क्रास हाइब्रिड)	'डिसकवरी संकर'
4.	'लौंगवुड संकर'	विक्टोरिया क्रुजीयाना	'प्रतीप संकर' (बैक-क्रास हाइब्रिड)	'चैलेंजर संकर'
5.	'एडभेंचर संकर'	विक्टोरिया आमेजोनिका	'प्रतीप संकर' (बैक-क्रास हाइब्रिड)	'अटलांटिस संकर'
6.	'एडभेंचर संकर'	विक्टोरिया क्रुजीयाना	'प्रतीप संकर' (बैक-क्रास हाइब्रिड)	'कोलम्बिया संकर'

———————

डैफ्ने पेपाइरैसिया : अरूणाचल प्रदेश के परंपरागत कागज का एक उत्तम स्त्रोत

हिमांशु शेखर महापात्र
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इटानगर

पूर्वोत्तर भारत का विशालतम राज्य, अरूणाचल प्रदेश अपनी वनस्पतिक विरासत के लिए संपूर्ण विश्व में प्रसिद्ध हैं एवं विश्व के 18 प्रमुख जैवविविधता के उत्तप्त स्थलों में गिना जाता है। प्रकृति ने भी इस उर्वर भूमि को कई ऐसे महत्वपूर्ण पौधों से विभूषित किया है जो आदिकाल से ही मनुष्य जाति के लिए उपयोगी रहे हैं। कुछ ऐसे ही पौधों में से पाइमेलिएसी कुल का पौधा 'डैफ्ने पेपाइरैसिया' की चर्चा यहाँ की गयी है। यह पौधा अरूणाचल प्रदेश के तवांग जिले में प्रचुरता में पाया जाता है तथा यहाँ निवास करने वाली मोम्पा जनजाति के धार्मिक अनुष्ठानों में काम आने वाले परंपरागत कागज की प्राप्ति का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत है। साधारणतः यह 3,000 से 4,200 मीटर की ऊँचाई पर अवस्थित शंकुधारी वनों में रोडोडेन्ड्रॉ, इलिसियम, क्वेरकस आदि पौंधों के साथ पाए जाते हैं। लगभग 1.0 मीटर की ऊँचाईवाले ये झाड़ीनुमा पौधे यहाँ के मोम्पा निवासियों की संस्कृति के साथ तो जुड़े हैं ही साथ ही उनकी आय का भी एक अच्छा स्त्रोत हैं। जनसाारण के बीच 'शुग-शांग' के नाम से ज्ञात इन पौधों की छाल का उपयोग मुख्यतः कागज निर्माण हेतु किया जाता हैं जिनपर ये अपने धार्मिक श्लोक लिख़ने या चित्र बनाने का काम करते हैं। तवांग जिले का 'मुक्तों' नामक ग्राम इस परंपरागत हस्तनिर्माण के लिए विशेष रूप से जाना जाता है क्योंकि यहाँ रहनेवाले मोम्पा आदिकाल से ही इस कागज-निर्माण के पेशे से जुड़े हुए हैं। इस विशेष कागज के निर्माण हेतु ये पहले इस पौधे की छाल को बाहर निकालकर छोटे-छोटे टुकड़ो में पीस लेते हैं। अब इन टुकड़ों को राख के साथ एक बड़े बर्तन में लगभग 4-5 घंटे तक उबाला जाता है। तत्पश्चात्, इस गाढ़े द्रव को एक विशेष चटाई पर समान रूप से फैलाकर धूप में सूखने के लिए छोड़ देते हैं। कई दिनों तक सुखाने के पश्चात् यह कागज का रूप धारण कर लेता है। ये कागज सुंदर, टिकाऊ तथा मजबूत होते हैं। उपरोक्त पौधे के सुंदर, सुगंधित एवं उजले फूलों का उपयोग भी यहाँ के धार्मिक अनुष्ठानों में किया जाता है जो जैवप्रतिकारी गुणों से युक्त होते हैं।

इस प्रकार यह पौधा यहाँ के कई परिवारों के जीविकोपार्जन का एकमात्र साधन है। एक अच्छी बात यह भी है कि यहाँ एक गैर-सरकारी संस्था इस प्रकार के हस्तनिर्मित कागज निर्माण को बढ़ावा दे रही है ताकि इस गाँव के लोग अधिक से अधिक इस पेशे से जुड़ें एवं उनका जीवन स्तर और ऊँचा हो। परंतु साथ ही हमें इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि इस पौधे को अनावश्यक दोहन से बचाया जाय एवं यहाँ इसके ज्यादा से ज्यादा पेड़ लगाए जाएँ ताकि यहाँ के नागरिकों का एक सुनहरा भविष्य सुनिश्चित हो सके।

———

यूनानी (Grecian) मिथकों में ऐसी धारणा है कि परी डैफ्ने से फीबिस (Phoebus) टेम्प (Tempe) की घाटी में पिनिअस नदी के किनारे मिले। उन्हें डैफ्ने से प्रेम हो गया। इसलिए आज भी डैफ्ने के पौधे सूर्य के ताप से मुरझाते हैं और पनपते हैं।

पन्ना (मध्य-प्रदेश) जिले के राजगोंड आदिवासियों द्वारा प्रयोग किये जाने वाले औषधीय पौधे

रमेश कुमार, बी.के.शुक्ला एवं बिपिन कुमार सिन्हा
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

पन्ना मध्य प्रदेश का एक छोटा सा पिछडा हुआ जिला है जो मध्यप्रदेश के पूर्वोत्तर कोने में 79°45' - 80°40' पूर्व तथा 23°45' - 25°10' उत्तर मे स्थित है। यह हीरे की खदानों व मन्दिरों के लिये जाना जाता है। इसके उत्तर में बांदा, पूर्व में सतना एवं कटनी, पश्चिम में छतरपुर व दमोह स्थित है। केन नदी पन्ना व छतरपुर जिलो के बीचो-बीच बहती है। पन्ना जिले में 5 तहसीले (अजयगढ, पन्ना, गुनौर, पवई तथा शाहनगर) हैं। इसका भौगौलिक क्षेत्रफल लगभग 7135 वर्ग किमी है जो कि पठारी तथा ढलानयुक्त है, एवं 893 वर्ग किमी. घने वनों से ढका है। यहां के लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि तथा पत्थर खुदाई है। पन्ना भूवैज्ञानिक दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि यहां की हीरे की खदाने 17 वी शताब्दी से प्रसिद्ध हैं। यहां की जलवायु उष्ण कटिबन्धीय है। गर्मी में अधिकतम तापमान 48° सेंग्रे, तथा सर्दी में न्यूनतम तापमान 3° से.ग्रे. तक जाता है। यहाँ की मिटटी मुख्यतः चूना पत्थर से बनी है। चैम्पियन और सेठ (1968) के अनुसार पन्ना जिले के वन उष्णकटिबन्धीय शुष्क पर्णपाती वनों की श्रेणी मे आते हैं।

एस्पेरेगस रेसिमोसस

डेटुरा इनोक्सिआ

मानव इतिहास में वनस्पतियों का जड़ी-बूटियों के रूप में प्रयोग प्राचीनकाल से सर्वविदित है, भारत में वनस्पतियों को स्वास्थ्य और औषधि के रूप में प्रयोग करने की पुरानी परम्परा रही है। देशी पद्धति में जडी-बूटियों का प्रचलन मुख्यतः सुदूर क्षेत्रो के आदिवासियों तथा स्थानीय लोगों से वार्तालाप तथा वैचारिक आदान-प्रदान का ही रूप है। ऐसा माना जाता है कि हर पौधे का अपना औषधीय महत्व है, यहां तक कि जहरीले पौधे भी जीवनदायक औषधि बनाने में काम आते हैं।

प्रस्तुत लेख में राजगोंड आदिवासियों द्वारा प्रयोग में लाये जाने वाले औषधीय पौधों का वर्णन किया गया है। यह जानकारी वरिष्ठ लेखक द्वारा सर्वेक्षण के दौरान एकत्र की गयी है :

- लिमोनिआ एसिडिसिमा (बलसेना) के फल का रस तथा डायोस्कोरिआ हिस्पिडा (मिर्चयाकन्द) के कन्द के चूर्ण के साथ एक-एक चम्मच दो बार देने से तपेदिक में आराम मिलता है।

- सिट्रस लाइमन (Citrus limon) (नीबू) के रस की दो बूंद आंख में डालने से आंख दर्द में आराम होता है।
- सिजिजिअम क्युमिनी (Syzygium cumini) (जामुन) की छाल रस (पाइपर निग्रम) (Piper nigrum) (काली मिर्च) सिजिजिअम एरोमेटिकम (Syzygium aromaticum) (लौंग) तथा शक्कर देने से उल्टी में आराम मिलता है।
- फाइलैंथस इमब्लिका (Phyllanthus emblica) (आंवला) के फलों का रस देने से भी उल्टी आना रूक जाता है।
- बाइटनेरिआ हर्बेसिया (Byttneria herbacea) (कामराज) तथा एस्पेरेगेस रेसिमोसस (Asparagus racemosus) (सतावर) की जडों का चूर्ण बराबर मात्रा में देने से स्पर्मेटोरिआ (Spermatorrohea) ठीक होता है।

डायोस्कोरिआ पेंटाफाइला

- स्टरकुलिआ विलोसा (Sterculia villosa) (उदाल) की जड़ का चूर्ण दूध में देने से मर्दाना शक्ति की परेशानी ठीक होती है।
- आइपोमिआ पेस्टिग्रिडिस (Ipomoea pes-tigridis) (समुद्र-फेन) टेगिटिस इरेक्टा (Tegetes erecta) (गेंदा) की पत्तियों का रस डालने से कान दर्द में आराम मिलता है।
- रेननकुलस सेलेरेटस (Ranunculus sceleratus) (वन धनियां) की पत्तियो तथा पाइपर निग्रम (Piper nigrum) (काली मिर्च) को पीसकर मिलाकर दूध के साथ देने से मानसिक असन्तुलन में आराम मिलता है।
- एकेसिया निलोटिका (Acacia nilotica) (बबूल) तथा Terminalia crenulata (सादन) की छाल का रस देने से ज्यादा माहवारी आने की तकलीफ में कमी होती है।
- ग्रेविआ टिलिएफोलिआ (Grewia tiliaefolia) (काहिरा) के बीज को पीसकर पाइपर निग्रम (Piper nigrum) (काली मिर्च) शक्कर तथा घी मिलाकर देने से पीलिया रोग ठीक होता है।

फाइकस रेसिमोसा

- एस्पेरेगस रेसिमोसस (Asparagus racemosus) (सतावर) तथा क्लोरोफाइटम (Chlorophytum tuberosum) (सफेद मूसली) दूध में देने से प्रसूति के बाद की कमजोरी दूर होती है।
- साइट्रुलस कोलोसिंथिस (Citrullus colocynthis) (इन्दरायन), केरिसा केरेंडस Carissa carandas (करोंदा) की जड़ तथा Piper nigrum (काली मिर्च) का चूर्ण व शक्कर

होलेरेना प्युबेसेंस

दूध के साथ देने से पेट के कीड़े निकल जाते हैं।

- Gynadropsis gynandra (हुलहुल) की पत्तियों का लेप फोड़ा पर लगाते हैं।
- फाइकस रेसिमोसा (Ficus racemosa) (गूलर) का दध, Pureria tuberosa (विदारी कन्द) के कन्द का चूर्ण शहद के साथ देने से रक्त अल्पता ठीक होती है।
- Acacia nilotica (बबूल) की छाल का रस, Piper nigrum (काली मिर्च) का चूर्ण व शक्कर दूध के साथ देने से रक्त अल्पता ठीक होती है।
- एस्पेरेगस रेसिमोसस (Asparagus racemosus) (सतावर) तथा क्लोरोफाइटम ट्यूबरोसम (Chlorophytum tuberosum) (सफेद मूसली) दूध में देने से रक्त अल्पता दूर होती है।
- अर्गेमन ओक्रेल्युका (Argemone ochroleuca) (भटकटैया) की जड़ो को पानी में उबालकर काढे से गरारा करने से दांत दर्द दूर होता है।
- रेननकुलस सेलेरेटस (Ranunculus sceleratus) (वन धनिया) की पत्तियों का रस देने से निमोनिया में आराम मिलता है।
- Datura innoxia (धतूरा) के फल को गीली मिटटी मे लपेटकर आग मे भूनकर एवं उसका रस निकालकर गिल्टी पर लेप लगाने से आराम मिलता है।
- जेस्मिनम फ्लेक्साइल (Jasminum flexile) (बेला) की जड़ या डायोस्कोरिआ हिस्पिडा (Dioscorea hispida) (मिर्चयाकन्द) के कन्द का लेप लगाने से बिच्छू-डंक के दर्द मे आराम मिलता है।
- लेन्निआ कोरोमंडेलिका (Lannea coromandelica) (गुंजा) की छाल का रस लेने से दस्त में आराम मिलता है।
- सिजिजिअम क्युमिनी (Syzygium cumini) (जामुन) की गुठली व Piper nigrum (काली मिर्च) को बारीक पीसकर पानी के साथ देने से दस्त में आराम मिलता है।
- जिजिफस न्युमेलेरिआ (Ziziphus nummularia) (बेर) की जड़ का रस देने से भी दस्त में आराम मिलता है।
- एस्पेरेगस रेसिमोसस (Asparagus racemosus) (सतावर) तथा Chlorophytum tuberosum (सफेद

राजगोंड जनजाति का चिकित्सक

मूसली) की जड़ दूध मे या सिवइया बनाकर लेने से कमजोरी दूर होती है।

- विथेनिआ सोम्नीफेरा (Withania somnifera) (अश्वगंध) की जड़ का चूर्ण दूध के साथ लेने से कमजोरी दूर होती है।
- डेस्मोडिअम गेंजेटिकम (Desmodium gangeticum) (सूरपन) की छाल का लेप लगाने से टूटी हड्डी जुड़ जाती है।
- Citrullus colocynthis (इन्दरायन) की जड़, Piper betel (बंगला-पान), Piper nigrum (काली मिर्च), घी तथा शक्कर सबको बराबर मात्रा में देने से सर्प-दंश का जहर उतर जाता है।

ओसिमम बेसिलिकम

- Aristolochia indica (करीछुल) की जड़, Piper nigrum (काली मिर्च), Dioscorea pentaphylla (मिर्चयाकन्द) एवं Citrullus colocynthis (इन्द्रायन) के फल बराबर मात्रा में लेने से सर्प-दंश का जहर उतर जाता है।
- डायोस्कोरिआ पेंटाफाइला (Dioscorea pentaphylla) (मिर्चयाकन्द) के कन्द का चूर्ण, Piper nigrum (काली मिर्च) का चूर्ण को गुड़ के साथ देने से सर्दी और खांसी मे आराम मिलता है।
- होलेरेना प्युबेसेंस (Holarrhena pubescens) (कुटज) के छाल का चूर्ण पीसकर अकेले या केरिसा केरेंडस (Carissa carandas) (करोंदा) की जड़ के साथ देने से बुखार कम हो जाता है।
- Ranunculus sceleratus (वन धनिया) पीसकर, Piper nigrum (काली मिर्च) एवं दूध के साथ लेने से बुखार कम हो जाता है।
- कोलोकेसिआ इस्कुलेंटा (Colocasia esculenta) (अरवी) की जड़ पीसकर उसका लेप या लेन्निआ कोरोमंडेलिका (Lennea coromandelica) (गुंजा) की छाल का रस लगाने से घाव जल्दी भर जाता है।

टर्मिनेलिआ चेबुला

उपरोक्त औषधीय पौधों को व्याधिनुसार नीचे वर्गीकृत गया है :

तपेदिक रोग में : (Limonia acidissima) तथा (Dioscorea hispida) लिमोनिआ एसिडिस्सिमा व डायोस्कोरिआ हिप्सिडा

आंख दर्द में : (Citrus limon) सिट्रस लाइमन

उल्टी में : Syzygium cumini, Piper nigrum, Syzygium aromaticum एवं Phyllanthus emblica

नपुंसकता में : Byttneria herbacea, Asparagus racemosus तथा Sterculia villosa

कान दर्द में : (Ipomoea pes-tigridis) तथा (Tegetes erecta) इपोमिआ पेस्ट्रिग्रिडिस् व टेजिटिस इरेक्टा

मानसिक असन्तुलन में : (Ranunculus sceleratus) तथा (Piper nigrum) रेननकुलस सेलेरेटस व पाइपर निग्रम

माहवारी में : (Acacia nilotica) तथा (Terminalia crenulata) एकेसिआ निलोटिका व टर्मिनेलिआ क्रेनुलेटा

पीलिया में : (Grewia tiliaefolia) तथा (Piper nigrum) ग्रेविआ टिलिएफोलिआ व पाइपर निग्रम

प्रसूति में : (Asparagus racemosus) तथा (Chlorophytum tuberosum) एस्पेरेगस रेसिमोसस व क्लोरोफाइटम ट्यूबरोसम

विथेनिआ सोम्नीफेरा

पेट के कीडे में : Citrullus colocynthis, Carissa carandas की जड तथा Piper nigum

फोड़ा में : (Gynadropsis gynandra) गाइनेड्राप्सिस गाइनेंड्रा

रक्त अल्पता में : (Chlorophytum tuberosum, Ficus racemos, Asparagus racemosus, Acacia nilotica एवं Pureria tuberosa) क्लोरोफाइटम ट्यूबरोसम, फाइक्स रेसिमोस, एस्पेरेगस रेसिमोसस एकसिआ निलोटिका, प्युरेरिआ ट्यूबरोसा

दांत दर्द में : (Argemone ochroleuca) अर्जेमन ओक्रोल्युका

निमोनिया में : (Ranunculus sceleratus) रेननकुलस सेलेरेटस

गिल्टी निकलने पर : (Datura innoxia) डेटुरा इनाक्सिआ

बिच्छू-डंक में : (Jasminum flexile) एवं (Dioscorea hispida) जेस्मिनम फ्लेक्साइल व डायोस्कोरिआ हिप्सिडा

दस्त में : Lannea coromandelica, Syzygium cumini, Piper nigrum एवं Ziziphus nummulria

शक्तिवर्धक : Asparagus racemosus, Chlorophytum tuberosum, Withania somnifera

हडडी टूटने में : (Desmodium gangeticum) डेस्मोडिअम गेंजेटिकम

सर्प-दंश में : (Citrullus colocynthis, Piper betel, Piper nigrum, Aristolochia indicas, Dioscorea pentaphylla) साइट्रुलस कोलोसिंथिस, पाइपर बीटल, पाइपर निग्रम, एरिस्टोलोकिआ इंडिकास, डायोस्कोरिआ पेंटाफाइला

सर्दी और खांसी में : (Dioscorea pentaphylla), (Piper nigrum) डायोस्कोरिआ पेंटाफाइला व पाइपर निग्रम

बुखार में : Holarrhena pubescens, Carissa carandas, Ranunculus sceleratus, Piper nigrum

खून बन्द करने में : (Ficus glomerata, Pureria tuberosa) फाइकस ग्लोमेरेटा, प्यूरेरिआ ट्यूबरोसा

घाव भरने में : (Colocasia esculenta, Lannea coromandelica) कोलोकेसिआ इस्कुलेंटा, लेन्निआ कोरोमंडेलिका

पेड़-पौधों के स्थानीय नामों की उत्पत्ति एवं उनका वानस्पतिक पहचान में महत्व

हरीश सिंह 'भुजवान'
केन्द्रीय वनस्पति प्रयोगशाला, हावडा

मानव जाति आदिकाल से ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु वनस्पति जगत पर निर्भर रहा है। उसने खाद्य, औषधि, रेशे, रंग, भवन-निर्माण, सजावट, धार्मिक संस्कार आदि हेतु अपने आस-पास पाये जाने वाले वनस्पतियों का उपयोग पीढ़ी दर पीढ़ी अपने बुजुर्गों के पारम्परिक ज्ञान व अनुभव के आधार पर किया है। किन्तु यह बहुमूल्य ज्ञान का भण्डार लिपि-बद्ध नहीं होने के कारण उन बुजुर्गों के साथ ही धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा है। वनस्पतियों से सम्बन्धित इस प्रकार के पारम्परिक ज्ञान को विभिन्न जन-जातिय व दूरस्थ क्षेत्रों से एकत्र कर विलुप्त होने से पूर्व उनको संरक्षित कर लिपि-बद्ध करने का कार्य लोक वनस्पति विज्ञान (Ethnobotany) के अन्तर्गत किया जाता है। इस विषय की ओर सिर्फ वानस्पतिज्ञों का ही नहीं अपितु इतिहासकारों, पुरातत्वविदों, साहित्यकारों एवं भाषाविदों का ध्यान भी इसके कई आर्थिक, ऐतिहासिक तथा साहित्यिक पहलुओं के कारण आकर्षित हुआ है। वनस्पतियों की सही वैज्ञानिक पहचान व नामकरण करना वनस्पति-शास्त्रियों का मुख्य उद्देश्य रहा है, जो एक जटिल विषय रहा है। जबकि सुदूर पिछड़े ग्रामीण व जनजातीय क्षेत्रों मे वैज्ञानिक नाम के अभाव में भी पेड़-पौधों के स्थानीय नामकरण व उनकी पहचान करने की परम्परा वर्षों से चली आ रही है। किसी क्षेत्र या वर्ग विशेष द्वारा पेड़-पौधों के लिए प्रयुक्त किये जाने वाले स्थानीय नामों की उत्पत्ति, रचना, अर्थ तथा कारण (आधार) का अध्ययन भी लोक वनस्पति विज्ञान के ही अन्तर्गत किया जाता है। इस प्रकार के अध्ययन के लिए सम्बन्धित व्यक्ति (भाषा विद्) को उस क्षेत्र या वर्ग विशेष की भाषा-बोली, क्षेत्र के साहित्य की जानकारी तथा उस क्षेत्र की वनस्पति सम्पदा का ज्ञान अति आवश्यक है। पेड़ पौधों के स्थानीय नामों का प्रयोग स्थानीय साहित्य के अतिरिक्त पौराणिक ग्रन्थों में भी बहुत हुआ है। स्थानीय नाम उच्चारण करने मे सरल एवं सुविधाजनक हैं इसीलिये क्षेत्र के सभी जन-मानस इन नामों को याद रखकर उन पेड़-पौधों को आसानी से पहचान लेते हैं। अधिकतर स्थानीय नाम तर्कों पर आधारित होते हैं और पौधों से सम्बंधित कई तथ्यों को उजागर करते हैं। अधिकांश नाम उन पेड़-पौधों के आकार, बनावट, उपयोग, व्यक्ति या समाज को हानि पहुचने वाले, प्राप्ति स्थान, पुराणों में वर्णित, कला शिल्प से सम्बधित तथा पाधों में उपस्थित कांटे, गन्ध, स्वाद, विष आदि पर आधारित है। बहुत से पेड़-पौधों के नाम उनके लक्षणों (गुणों) के आधार पर भी निर्धारित है। हालांकि भारत वर्ष के विभिन्न क्षेत्रों में पेड़-पौधों को अनेक स्थानीय नामों से जाना जाता है किन्तु इस लेख में उत्तराखंड राज्य के गढ़वाल, कुमाऊं तथा बोक्सार (तराई तथा भाबर) क्षेत्र के कुछ पेड-पौधों के स्थानीय नामों के नामकरण के आधार (कारणों) तथा उनके सम्भावित हिन्दी व अंग्रेजी भावार्थ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

उत्तराखंड भारत वर्ष के उत्तर-पश्चिम में 53,485 वर्ग कि०मि० क्षेत्र में फैला नवनिर्मित पर्वतीय राज्य है जिसका लगभग 65% भाग वनों से आच्छादित है। इस राज्य के अन्तर्गत गढ़वाल व कुमाऊं मण्डल के 13 जनपद आते हैं। इस राज्य में सभी धर्मो व जाति के लोगों के अलावा भोटिया, राजी (वन रावत), जैनसारी, भोक्सा तथा थारू जनजाति के लोग भी निवास करते हैं। इस राज्य का अधिकतर भू-भाग पहाड़ी, ग्रामीण व जनजातीय होने के कारण यह क्षेत्र आज भी लोक वनस्पतिक अध्ययन की दृष्टि से उपयुक्त प्रतीत होता है। उत्तराखंड राज्य में कई प्रान्तीय भाषायें बोली जाती है, जिसकी अपनी कोई लिपि नहीं है। किन्तु संयुक्त रूप से गढ़वाल मण्डल में बोली जाने वाली भाषा को 'गढ़वाली', कुमाऊं में बोली जाने वाली भाषा को 'कुमाऊंनी' तथा बोक्सार में बोली जाने वाली भाषा को 'बोक्सा' कहा जाता है। इन क्षेत्रीय भाषाओं में अधिकतर हिन्दी, संस्कृत तथा उर्दू के शब्द या उनके मिश्रण दिखाई देते हैं।

इस राज्य में भी पेड़-पौधों के स्थानीय नामकरण करते समय कोई न कोई आधार अवश्य निश्चित किया प्रतीत होता है। ये स्थानीय नाम बोलने और समझने में सरल और सहज होने के कारण ही बच्चे से लेकर बूढे तक इन्हे याद रखकर सम्बन्धित पेड़-पौधों को आसानी से पहचान लेते है। इस राज्य में वनस्पतियों के स्थानीय नाम सधारणतया उनके

आकार, रूप, गुण, व्यवहार, माप, रंग, गन्ध, स्वाद, प्रकृति, प्राप्ति स्थान, उपयोग, औषधीय गुण, काटें, जानवरों के अंग, विष, संख्या, तथा अन्य विशेष गुण के आधार पर किये गये है। उत्तराखंड राज्य का निवासी होने व स्थानीय भाषा से विज्ञ होने के साथ-साथ बोक्सार क्षेत्र में कई वर्षों से शोध-रत होने के कारण इन स्थानीय नामों के भावार्थ समझने में लेखक को कोई परेशानी नहीं हुई। इस लेख में पेड़-पौधों के स्थानीय नामों की उत्पत्ति को नौ (9) मुख्य शीर्षक में विभक्त किया गया है। प्रत्येक शीर्षक के अर्न्तगत वानस्पतिक नामों को अंग्रेजी वर्णमाला के अनुसार क्रमबद्ध किया गया है। पौधे का स्थानीय नाम को रखने का कारण (आधार), उनका स्थानीय नाम को उल्टे अर्धविराम (inverted coma) में तथा उसका हिन्दी तथा अंग्रेजी में भावार्थ को कोष्टक में दिया जा रहा है :

1. **पेड़-पौधों के आकार, वनावट के आधार पर :**

Achyranthes aspera की बाली (spikes) पर उल्टे कांटे (bracts) होने के कारण 'उल्टा चड़चिता' = विपरित चड़चिता (reflexed bracts), Arundo donax का तना नल की तरह खोखला होने के कारण 'नलई' = नल (pipe), Alternanthera pungens का पौधा जमीन पर फैले रहने के कारण 'चपड़या' = पड़ा हुआ (spreading), Ariseama jacquemontii व Sauromatum venosum का स्पेथ (spath) सांप के फन (hood) जैसा तथा फल मक्के के भुट्टे (cob) जैसा दिखने के कारण 'स्यापक-घ्वग' = सांप का भुट्टा (maize of the snake), Broussonetia papyrifera के फूल गोल व बटन की तरह होने के कारण 'फूल बटन' = बटन के समान फूल (flowers as button), Dactylorhiza hatagirea syn. Orchis latifolia की जडें अंगुलियां व हत्थे के सदृश्य होने के कारण 'हत्था जड़ी' = हाथ जैसी जड़ी (hand like roots), Diplanzium esculentum का उपर का भाग मुड़ा हुआ होने के कारण 'लिंगुडा' = लिंग मुड़ा हुआ (turned-ling), Diplocyclos palmatus के बीज पर शिव लिंग की तरह का आकार होने के कारण 'शिव-लिंगी' = शिव भगवान के लिंग सदृश्य (lingum of lord Shiva), Fumaria indica की पत्तियां गाजर की पत्तियों की तरह होने के कारण 'गाजर-घास' (carrot-grass), Helicteres isora का फल पेंच की तरह मुड़ा हुआ होता है। और इसे पेट के मरोडे (griping pain and bowels) के उपचार में देने के कारण 'मरोडा' = मोड़ा हुआ (spirally twisted), Helminthostachys zeylanica में सिर्फ एक डंठल (stalk) होने के कारण 'इक डन्डी' = एक डंठल (single stalk), Holarrhena antidysenterica का बीज जौ के समान (2 से० मी० लम्बा) होने के कारण 'इन्द्र जौ' = भगवान इन्द्र का जौ (hordeum of lord Indra), Martynia annua के फलों के नोक बाघ के नाखून के समान मुडे होने के कारण 'बगनखा' = बाघ के नाखुन (tiger's nail), Nardostachys grandiflora के जड़ो पर लम्बे-लम्बे बाल जैसे रोयें होने से 'जटामांसी' =लम्ब बाल जैसे जड़ (roots with long hair), Oroxylum indicum के फली काफी लम्बी (1-2.5 फीट) तथा बीज पंख सहित होने से 'उल्लू की फली (owl's fruit), Paeonia emodi का फूल चाँद की तरह गोल व सफेद होने के कारण 'चन्द्रा' = चाँद (moon), Pithecellobium dulce का फल जलेबी की तरह गोल व मुडा हुआ होने से 'जंगली जलेबी' = जलेबी मिठाई की तरह गोल (rounded shape like 'jalebee'), Ranunculus sceleratus यह धनिया जैसा दिखने वाला पौधा पानी के पास ही उगने के कारण 'जल-धनिया' = जल वाला धनिया (aquatic coriander), Selinum candollii की जड़ों पर लम्बे बाल जैसी संरचना व भूत-प्रेत भगाने में प्रयोग करने के कारण 'भूत-केशी' = भूत के बाल (ghost's hair), Smilax aspara के काँटे कुत्ते के दाँत की तरह हल्के मुड़े हुए होने से 'कुकुर-दार' = कुत्ते के दाँत (dog's teeth), Sphearanthus indicus के तने पर फल ऊपर व गोल होने से 'गोरख मुन्डी' = गोल सिर (rounded head), Urgenia indica की जड़ (bulb) प्याज जैसी होने से 'बण-प्याजी' = जंगली प्याज (willd onion), Vetiveria zizanioides के तने (culms) 2 मी० तक लम्बे सलाई के समान होने से 'सींक' = सलाई (knitting needle) नामों से जाना जाता है।

2. **रंग के आधार पर :**

Adiantum capillus-veneris का डंठल अधिकतर काले रंग का होने के कारण 'काली छड़ी' = काली डंठल

(black stipes), Adina cordifolia की लकड़ी हल्दी की तरह पीली होने से 'हल्दू' = हल्दी (turmeric), Barleria cristata का पौधा हल्का काले रंग का होने से 'काला बान्सा' = काला बान्सा (black bansa), Andrographis paniculata की पत्तियों तथा तनें का रंग काला होने के कारण 'काल मेघ' = काला बादल (black clouds), Berberis spp. के तने का बीच का भाग हल्दी के समान पीला होने की वजह से 'दारू हल्दी' = मज्जा हल्दी के समान (turmeric like pith), Curculigo orchioides की जड़ें काले रंग की होने से 'कारी-मूसरी' = काली मूसली (black musali), Eclipta prostrata की पत्तियों का रस काले रंग का होने के कारण 'कारा-भांगरा' = काला रंग का भांगरा (black bhangra), Eranthemum pulchellum में नीले रंग के फूल आने से 'नीली' = नीला (blue), Eucalyptus citriodora की छाल सफेद रंग की होने से 'सफेदा' = सफेद (white), Euphorbia spp. की लगभग सभी जातियों में दूध जैसा 'लेटैक्स' निकलने से 'दूधी' = दूध (milk), Lygodium flexuosum के पत्तियों (fronds) पर काले रंग के धब्बे (sori) होने से 'काली सींकी' = काली सींक (black rod), Gloriosa superba के फूल का उपरी भाग आग के समान लाल होने के कारण 'अग्नि-शिखा' = अग्नि के समान शिखर (top alike fire), Glycosmis mauritiana का फल पीले रंग का होने से 'पीलू' = पीला (yellow), Porana paniculata की बेल सफेद रंग की होने से 'सुफेद-बेल' = सफेद बेल (white climber), Reinwardtia indica के फूल पीले रंग के होने से 'पियूंलडी' = पीला (yellow), Rubs niveus का फल काले रंग का होने से 'काऊ हिंसाऊ' = काला हिन्सालु (black rubus), Solanum nigrum के पके फल काले रंग के होने से 'कारी-मकोय' = काली मकोय (black makoi) नामों से जाने जाते हैं।

3. **उपयोग के आधार पर :**

Abrus precatorius के बीज से रत्नों को तोला जाने के कारण 'रत्ती' = रत्नों को तोलने का मापक (jeweller's weights), Achyranthes aspera के पौधे से तन्त्र-मन्त्र के साथ भूत-प्रेत को झाड़ने से 'अध्याझारो' = आधा झाड़ने वाला (to ward off evil spirits), Acorus calamus की जड़ को बोलने में परेशानी वाले व्यक्ति को दिया जाने से 'बच' = बोलना (speak), Aerva lanata के पौधे के रस से जानवरों के खुर (hoof) के कीड़ों (worms) को मारने की वजह से 'कीरों का घास' = कीड़ों का घास (grass of worm), Artemisia nilagirica की पत्तियों को पवित्र मानकर पूजा में प्रयुक्त करने के कारण 'पाती' = पत्र या पवित्र (sacred), Benincasa hispida के फल से पेठा नामक मिठाई बनने से ही 'पेठा' = एक मिठाई का नाम (name of a sweet), Betula utilis के पेड़ की छाल पर कागज की तरह निमन्त्रण-पत्र आदि लिखे जाने के कारण 'भोज-पत्र' = राजा भोज का पत्र (letter-paper of King Bhoj), Blumea lacera की पत्तियों को कुत्ते के काटने के उपचार में प्रयोग करने से 'कुकरोन्धा' = कुत्ता से सम्बन्धित (concern to dog), Boenninghausenia albiflora की पत्तियां पिस्सू 'उप्पन्न' मारने में प्रयुक्त करने से 'उपनिया झाड़' = पिस्सू-झाड़ी (flea-shrub), Cassia occidentalis के पौधे की पत्तियों का उपयोग बबासीर के उपचार में करने से 'बाबासीर' = अर्श (piles), Crinum defixum की जड़ (bulb) का रस कान के दर्द में डालने से 'क़न-मन' = कान से सम्बन्धित (concern to ear), Drypetes roxburghii की पत्तियों से शरीर में होने वाले लाल रंग के पित्त या फुन्सीयों (allergic red pimples) का उपचार करने से 'पित्त मार' = शरीर पर लाल दाने को मारने वाला (to reduce allergic red pimples), Equisetum debile से हड्डी जोड़ने की औषधि बनने से 'हड़-जोड़' = हड्डी को जोड़ने वाला (for bone fracture), Leucas lanata की पत्तियों को पीसकर घाव पर लगाने से मवाद सोखने के कारण 'पीव सोस' = मवाद को सोखने वाला (pus absorber), Panicum antidotale को हड्डी के जोड़ने के उपचार में प्रयोग करने से 'हड़-जोड़' = हड्डी को जोड़ने वाला (bone-healer), Passiflora foetida की पत्तियों को घोड़े के साँस के रोग में देने से 'घुड़सार' = घोड़े की साँस (horse-breath), Pedilanthes tithymaloides की पत्तियों से नाग (विषैला सर्प) के काटे का ईलाज करने तथा इस पौधे को घर के पास लगाने से साँप के नहीं आने की धारणा होने से 'नाग-दौण' = नाग से सम्बधित (concerning to cobra/snakes), Pogostemone benghalensis की पत्तियों को

पीसकर बहुत गहरे घाव में भी भर देने से पहले की तरह घाव में माँस भरने से 'मासा-पीन्डी' = माँस की पीन्डी (heap of flesh), Potentilla fulgens की पत्तियां चबाने से दाँत मजबूत होने से 'बज्रदन्ती' = मजबूत दाँत (strong teeth), Rauvolfia serpentina की जड़ से साँप के डँसने का ईलाज करने से 'सर्प-गन्धा' = साँप से सम्बन्धित (concern to snake), Sarcostemma scamone की पत्तियां बकरी को खिलाने से दूध बढ़ने के कारण 'दूध-बकरिया' = बकरी का दूध (milk of goat), Saussurea costas व Saussurea lappa का उपयोग कुष्ठ रोग के उपचार में करने से 'कुथ' = कुष्ठ (leprocy), Saussurea obvallata के फूल को पवित्र मानने और देवी-पूजन में प्रयोग करने से 'बर्मा-कोंऊ' = ब्रह्मा भगवान का कमल (lotus of Lord Brahma), Scoparia dulcis की पत्तियों से बिच्छू के डंक मारने का उपचार करने से 'बिच्छू-घास' = बिच्छू का घास (scorpion-grass), Vanda tessellata को हड्डी को जोड़ने में प्रयोग करने से 'हड़-जोड़' = हड्डी को जोड़ने वाला (bone healer), Zehneria umbellata के लाल मीठे फल जंगल में गाय चुंगाने वाले ग्वाले द्वारा खाने से 'ग्वाल-ककड़ी' = ग्वालों की ककड़ी (cow-herd's cucumber) नाम दिया गया है।

4. **पौधों मे उपस्थित कांटे के आधार पर :**

Amaranthes spinosus के पौधे पर कई कांटे होने से 'कंटीली चौलाय' = कांटे वाली चौलाय (amaranthes with spines), Argemone mexicana के फूल पीले व पौधा कांटे-दार होने से 'पीली कटैया' = पीला कांटे वाला (yellow with spines), Bambusa arundinacea के तने पर बहुत कांटे होने से 'कटीला बांस' = कांटे वाला बांस (thorny bamboo), Caesapinia crista की फली (pods) पर बहुत काँटे होने से 'कन्टेला', 'करन्जुआ' = कान्टे वाला फल (fruits with spines), Carissa carandas पर बहुत काँटे होने से 'करोंधा' = काँटे (spines/thorns), Flacourtia indica के पौधे पर लम्बे काँटे होने से 'कटैया' = काँटे वाला (thorny), Urtica dioica के पौधे पर छोटे-छोटे सफेद कांटे सदृश्य होने के कारण 'कन्डाई' = कांटे वाली टहनी (spinous branch) नाम से जानते हैं।

5. **गन्ध के आधार पर :**

Angelica glauca की जड़ में एक विशेष प्रकार की गन्ध होने से 'गन्द्रेण' = गन्ध (smell), Leptodermis lanceolata की पत्तियों को मसलने से पाद जैसी दुर्गन्ध आने से 'पदेडा' = पाद (foul smell from anus), Murraya koenigii की पत्तियों को मसलने से एक प्रकार की गन्ध आने से 'गन्धी' = गन्ध (smell) नाम दिया गया है। Withania sominifera के जड़ में घोड़े के मूत्र जैसी गन्ध आने से 'अश्व-गन्धा' = घोड़े की गन्ध (horse's smell) कहते है।

6. **स्वाद के आधार पर :**

Berberis spp. के कांटे का स्वाद खट्टा होने से 'किलमोड़ा' = खट्टा-कांटा (soury spines), Oxalis corniculata की पत्तियां बहुत खट्टी होने से 'चिल मोड़ी' = बहुत खट्टी (very sour), Picrorrhiza scrophulariflora की जड़ें बहुत कडुई होने के कारण 'कडुई' = कडुआ (bitter) नाम दिया गया है।

7. **विष के आधार पर :**

Aconitum ferox की जड़ जहर की तरह काम करने के कारण 'विष' = जहर (poison), Aconitum hetrophyllum की जड़ को अधिक मात्रा मे लेने से जहर की तरह काम करने से 'अतीष' = अधिक लेने पर विष (poisonous when cosumed excess dose) नाम से जानते हैं।

8. **लक्षणों या गुणों के आधार पर :**

Ageratum conyzoides के पौधे में साल भर फूल खिलते रहने के कारण 'फूलेनिया' = फूल में रहता है (flowering), Allium auriculatum व Allium stracheyi को सुखाकर उससे दाल या सब्जी छोंकने से 'फर्ण' = छोंकना

(fry), Arnebia benthamii की जड़ों कों सरसों के तेल में मिलाकर लाल रंग आता है जिसे बालों को बढ़ाने हेतु प्रयोग करने से 'बाल-छड़ी' = बाल वाली जड़ी (root for hair), Barringtonia acutangula की पत्तियों व छाल की औरतों को बच्चा पैदा होने के बाद होने वाले बुखार व कमजोरी 'प्रसूत' नामक बीमारी में देने से 'प्रसूत' = बच्चा होने के बाद होने वाला बुखार व कमजोरी (weakness and fever after delivery), Bergenia ciliata के पौधे प्राय : पत्थरों पर उगने और इसकी जड़ पत्थरों में दरारें बनाकर उसमें घुसने तथा इसकी जड़ से पत्थरी का इलाज भी किये जाने के कारण 'सील-फोड़ा' = पत्थर फोड़ने वाला (stone breaker) तथा 'पाषाण भेद' = पत्थर को भेदने वाला (stone piercer), Cocculus hirsutus तथा Cissampelos pareira की पत्तियों को पीसकर पानी में डालने से जम जाने से 'जल जमनी' = पानी में जमना (coagulate on water), Cheilanthes farinosa की पत्तियों (fronds) के निचली सतह पर सफेद पाउडर होने के कारण उसे किसी भी वस्तु पर रखने या दबाने से उसका छाप आ जाने के कारण 'छपाली' = छापने वाला (to imprint), Cissus repanda के तने को काटने से पीने का पानी निकलने के कारण 'जल-बेल' = पानी वाली बेल (climber having potable water), Cryptolepsis buchanani, Ichnocarpus frutescens, Vallaris solanacea तथा Wrightia tomentosa के पौधे से दुध जैसा रस (latex) निकलने से 'दूधी' = दूध (milk), Equisetum debile का पौधा 'इन्टर-नोड' से टूटने व जुड़ने के कारण 'जोर-तोर' = जोड़ से टूटने वाला (detachable from joints), Mimosa pudica पौधे को छूने मात्र से पत्तियां मुरझा जाने के कारण 'शर्मिली' = शर्माने वाली (shier), Mucuna pruriens की फली पर मटमैले रंग के छोटे रोंये होते है, जिनके शरीर पर छू जाने से खुजली व चिड़चिड़ाहट होने से 'कोंच' = कँटीले रोंये (irritating hairs), Parietaria debilis जड़ को पानी के साथ कूटने से निकले चिकने झाग से सिर धोने के कारण 'चिफव-जड़ी' = चिकनी जड़ (sticky/slimy root) कहते हैं।

9. **प्राप्ति स्थान के आधार पर :**

Bocopa monnieri के पौधे नीम के समान कडुआ व अधिकतर पानी के पास उगने के कारण 'जल-नीम' = पानी वाला नीम (margosa on water), Acorus calamus अधिकतर दलदल में पैदा होने के कारण 'बोज' = बज्याण या दलदल (marshy place), Bischofia javanica का पेड़ पानी के धारा के पास उगने से 'पनियाला' = पानी के पास वाला (near the water), Boerhavia diffusa के पौधे अधिकतर पत्थरों के दिवालों पर उगने से 'पत्थर-चट्टा' = पत्थर के ढेर पर उगने वाला (grows on the wall of stones), Cuscuta reflexa यह परजीवी पौधा अधिकतर सड़क के किनारे के झाड़ियों व पेड़ों पर पाया जाने से 'सडक-बेल' = सड़क के किनारे पाई जाने वाली बेल (road sides climber), Fragaria vesca का पौधा भूमि पर रेंग कर चलने के कारण 'भ्यूंला' = भूमि पर चलने वाला (straggling on ground), Ipomea carnea subsp. fistulosa यह पौधा कंही भी नम व दलदल स्थानों मे उग कर फैल जाने से 'बेशरम' या 'बेहया' = बिना शर्म के (shameless), Phyla nodiflora के पौधे पानी के पास ही उगने से 'जल पीपर' = पानी वाला पीपल (aquatic peepal), Ranunculus sceleratus यह धनिया जैसा दिखने वाला पौधा पानी के पास ही उगने के कारण 'जल-धनिया' = जल वाला धनिया (aquatic coriander), Sisymbrium irio सब्जी हेतु प्रयुक्त होने वाला वह पौधा पानी के पास उगने से 'पन-साग' = पानी वाली भाजी/सब्जी (aquatic vegetable), Verbascum thapsus का पौधा प्रायः अकेला उगने के कारण 'एकुला वीर' = अकेला वीर (solitary brave) नाम से जाना जाता है।

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि पानी या पानी के आस-पास पाये जाने वाले वनस्पतियों के नाम के साथ अधिकतर 'जल', 'जर', 'पानी' शब्द का प्रयोग किया गया है। पौधों की जंगली जाति/प्रजाति के नाम के साथ 'वन', 'जंगई' शब्दों का प्रयोग हुआ है। काँटे वाले पौधे के नाम के साथ 'कन्ट', 'कन', 'कन्ड', 'काना, 'किल', 'कना' आदि शब्दों का बहुधा प्रयोग हुआ है जबकि दूध (latex) वाले पौधों के नाम के साथ 'दूधी', 'दूधीला' आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। जमीन पर रेंग कर चलने वाले पौधों के नाम के साथ 'भ्यूं', 'भू' शब्दों का इस्तेमाल हुआ है, जबकि काले रंग

के पौधों के नाम के साथ 'कारा', 'काला' शब्दों का प्रयोग भी देखा गया है।

स्थानीय नामकरण के अतिरिक्त इस राज्य में लोकमानस द्वारा लोक वनस्पति वर्गीकरण (folk plant taxonomy) पर भी समुचित ध्यान दिया गया है। वनस्पतियों की अलग अलग पहचान कर लेने के बाद उन्हे कई वर्गों में रखा गया है किन्तु मुख्य रूप से गढ़वाल, कुमाऊं व बोक्सार क्षेत्र में पेड़ को क्रमशः 'डाऊ', 'वोट' तथा 'दरख्त'; झाड़ी (shrub) को क्रमशः 'भूड़', 'भुड़' तथा 'झौला; पौधे (herb) को क्रमशः 'झाड़', 'झाड़' तथा 'पौधा'; आरोही (climber) को 'लगीला', 'लगुल' व 'जलंग' तथा घास (grass) को 'घास' 'घा' और 'घास' कहते हैं। इस प्रकार वनस्पतियों को वर्गीकृत कर उन्हें भिन्न-भिन्न तरह से नामकरण किया गया है ताकि उन्हें उनके स्थानीय नाम के आधार पर उनके वर्गों को आसानी से पहचाना जा सके।

उत्तराखंड में विभिन्न वनस्पतियों के नामकरण व वर्गीकरण की एक स्पष्ट व निश्चित प्रणाली पहले से ही विद्यमान रही है जो तर्कसंगत व सरल के साथ व्यवहारिक भी रही है। इस प्रणाली के अनुसार किसी भी वनस्पति के नाम व वर्ग को उसके रूप, गुण के साथ याद रखना व पहचानना भी सहज होता है। ये स्थानीय नाम भाषा की दृष्टि से इतने सटीक व बोध गम्य होते हैं कि उस शब्द विशेष का उच्चारण करते ही वनस्पति विशेष का विम्ब न केवल मानव पटल पर उभर आता है अपितु उस वर्ग विशेष का भी आसानी से बोध हो जाता है। इस प्रकार के अध्ययन से हम किसी भी क्षेत्र विशेष के कुछ वनस्पतियों की वैज्ञानिक पहचान कुछ हद तक उनके स्थानीय नाम के आधार पर करने में भी सक्षम हो सकते हैं।

इस परमपरा को उचित मानते हुए ही ICBN जैसे आधुनिक पद्धति मे भी पौधों मे नये किस्मों को वनस्पतिक नाम देते समय उनके रूप-गुण को ध्यान में रखकर सरल व स्पष्ट बनाने का प्रयास किया जाता है जिससे उनकी वैज्ञानिक पहचान आसानी से की जा सके। जनजाति, वन-वासी या वन्य जाति कहे जाने वाले हमारे पूर्वज उच्च तकनीकी व संचार क्रान्ति की दुनिया से भले ही दूर रहे हों किन्तु वनस्पतियों के स्थानीय नामकरण व वर्गीकरण करने में उनका दृष्टिकोण किसी वैज्ञानिक स्तर से कम नहीं था।

वृक्ष लगाओ, वृक्ष लगाओ।
ठीक समय पर बारिस पाओ।।

सायनोजीवाणु के जाति अभिनिर्धारण में प्रयुक्त आधुनिक तकनीकी विधियाँ

प्रतिभा गुप्ता
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

शैवाल इस पृथ्वी के पारिस्थितकी तंत्र का मूल आधार हैं क्योंकि खाद्य एवं आक्सीजन श्रृंखला का अधिकांश भाग शैवालों पर निर्भर है। शैवालों में अत्यधिक विविधता पायी जाती है अतः हमें इनका वर्गीकरण एवं जाति अभिनिर्धारण बहुत सावधानी पूर्वक करना होता हैं। इन्हीं शैवालों में से एक हैं नील-हरित शैवाल अर्थात् सायनोजीवाणु। नील-हरित शैवाल विभिन्न पारिस्थितिकी में पाये जाते हैं जहाँ इनके कुछ लक्षण जीवाणुओं से मिलते हैं वहीं कुछ लक्षण पौधों के समान हैं। सायनोजीवाणु में केन्द्रक विहीन जीवाणु सदृश कोशिका तथा शैवालों के समान प्रकाश संश्लेषण हेतु वर्णक पाये जाते हैं। इसी विशिष्टता के कारण इनका वर्गीकरण करना कठिन कार्य हैं। प्रारम्भ में वनस्पति शास्त्रियों ने इनकी रचना के आधार पर इन्हें आक्सीजन उत्पन्न करने वाले प्रकाश संश्लेषी जीवाणु एवं शैवाल के रूप में स्थापित करने के प्रयास किए। इनकी रचना के विषय में सदैव ही वनस्पति वैज्ञानिकों एवं जीवाणु वैज्ञानिकों के बीच मतभेद रहे। कुछ वैज्ञानिकों ने इनके प्रकाश संश्लेषी गुण एवं नील-हरित वर्णक (फाइकोसायनिन) की उपस्थिति के कारण इन्हें नील-हरित शैवाल का नाम दिया वहीं दूसरी ओर इसकी जीवाणु सदृश्य संरचना एवं नील-हरित रंग वाले वर्णक के कारण इसे सायनोजीवाणु कहा। पारिस्थतकी तंत्र में सायनोजीवाणु को सूक्ष्म शैवाल माना और इन्हें वास्तविक शैवालों का आधार कहा गया। सायनोजीवाणु की अति सूक्ष्म रचना के कारण इनकी विभिन्न जातियों के बीच स्पष्ट अंतर स्थापित कर इन्हें एक विशिष्ट जाति के रूप में स्थापित करना कठिन कार्य हैं क्योकि यह सायनोजीवाणु लगभग सभी प्रकार के वातावरण जैसे- समुद्री जल, स्वच्छ जल (नदी, तालाब, झील, पोखरे झरने, जलाशयों), भूमि, भवन दीवालों, जन्तुओं एवं पौधों की वाह्य सतह पर, कोशिकाओं के मध्य एवं कोशिकाओं के अन्दर पाये जाते हैं। इस विस्तृत वितरण एवं वास स्थान की विभिन्नता के कारण सायनोजीवाणु ने अनुकूलन हेतु उत्परिवर्तित होकर विभिन्न नवीन जातियों को जन्म दिया। इन सभी जातियों को एक दूसरे से पूर्णतः अलग विशिष्ट लक्षणों के साथ अलग-अलग जातियों के रूप में अभिनिर्धारित करना एक दुष्कर कार्य है क्योंकि इतनी सूक्ष्म संरचना होने के कारण इनकों बड़े पौधों की तरह आकारिकी कें आधार पर अलग-अलग जातियों के रूप में स्थापित नहीं किया जा सकता। इनके सही अभिनिर्धारण के लिए रचनात्मक विभिन्नताओं के साथ-साथ जैवरासायनिक, गुणसूत्रीय, आण्विक संगठन तथा जीन आण्विक गठन को भी पर्याप्त महत्व देना आवश्यक है। इसीलिए विभिन्न वनस्पति शास्त्रियों ने समय-समय पर इनकी विशिष्ट पहचान हेतु दिशा निर्देश बनाये।

सायनोजीवाणु के जाति अभिनिर्धारण में आने वाली समस्यायें निम्नवत् हैं-

- यह अत्यन्त सूक्ष्म हैं अतः केवल आकारिकी के आधार पर इनको शत प्रतिशत सुनिश्चित जाति के रूप में स्थापित करना अत्यधिक कठिन होता हैं।
- संरचना जीवाणुओं एवं शैवालों दोनों से मिलने के कारण सदैव इनके अभिनिर्धारण के लिए किये गये प्रयास भ्रमित करने वाले एवं अस्पष्ट होते हैं।
- सूक्ष्म जीवों में उत्परिवर्तन की संभावना अधिक होती है अतः वातावरण जनित विभिन्नता एवं आकस्मिक परिवर्तन, प्रदूषण, विकिरण इत्यादि इनकी जीनी संरचना को प्रभावित कर नयी जातियाँ उत्पन्न कर देते हैं जो कुछ लक्षणों में अपनी मूल जाति के समान होते हुए भी कुछ लक्षणों में विभिन्नता दर्शाते हैं और जब तक इन्हें एक नयी जाति के रूप में स्थापित नहीं कर दिया जाता तब तक ये उत्परिवर्तित जातियाँ पहचान एवं वर्गीकरण करने वाले वैज्ञानिकों के लिए एक समस्या ही बनी रहती हैं।
- कभी-कभी एक ही जाति के नील-हरित शैवाल/सायनोजीवाणु दो विभिन्न वातावरणों में एक समान प्रतीत होते हुए

भी विस्तृत अध्ययन में विभिन्नता दर्शाते हैं जैसे- एजोला फिलिकुलायडिस तथा एजोला केरोलिनिआना से प्राप्त एनाबिना की तुलना करने पर बहुत से अन्तर पाये गये। इसी प्रकार साइकस की वायवीय जड़ों में पाये जाने वाले नास्टॉक का अध्ययन करने पर इसकी विभिन्न जातियाँ पायी गयीं। इनमें अत्यन्त सूक्ष्म अन्तरों की जानकारी होने के पश्चात् इस बात की प्रबल आवश्यकता प्रतीत हुई कि सायनोजीवाणु के जाति अभिनिर्धारण हेतु केवल आकारिकी को आधार नहीं बनाया जा सकता वरन् इनकी जीनी आण्विक संरचना व न्यूक्लिक अम्लों (आर०एन०ए० एवं डी०एन०ए०) के तुलनात्मक अध्ययन को महत्व दिया जाना चाहिए जिससे जातियों का नामकरण एवं स्थापना निर्विवाद रूप से की जा सके ।

नयी जाति के अभिनिर्धारण हेतु लक्षणों का अध्ययन एवं विवरण निम्नवत् है–

- **पारिस्थितकी अध्ययन** - इसके अन्तर्गत सायनोजीवाणु के वास स्थान का भौतिक रासायनिक एवं जैविक संगठन का विस्तृत अध्ययन जैसे जल का ताप, पी०एच०, खनिज लवणों की मात्रा, आक्सीजन, अन्य जीवी एवं अजीवी घटकों की मात्रा, जल प्रवाह, स्थिरता, स्थल का रासायनिक संगठन, प्रकाश, आक्सीजन एवं नाइट्रोजन की मात्रा व उपलब्धता का अध्ययन किया जाता है।
- **कोशिका आकारिकी का अध्ययन** - इसके अन्तर्गत कोशिका की रचना, आकार, रंग, माप, विखंडन अथवा मुकुलन के सम क्षेत्रों का अध्ययन किया जाता हैं।
- **कालोनी का अध्ययन** - इसके अन्तर्गत कालोनी की रचना एवं विशिष्टता का अध्ययन किया जाता है।
- **कार्यकी एवं जैवरासायनिकी का अध्ययन** - इसके अन्तर्गत लवक का प्रकार, आक्सीजन, प्रकाश एवं तापक्रम का प्रभाव, नाइट्रोजन उपभोग, खारेपन का प्रभाव, विटामिनों, खनिज लवणों की आवश्यक मात्रा, कोशिका में उपस्थित रासायनिक घटक, उपापचयी पदार्थ एवं उनसे संबंधित रासायनिक प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।
- **जीनी आण्विक विशेषताओं का अध्ययन** - इसके अन्तर्गत डी.एन.ए. की संरचना, नाइट्रोजन क्षार विन्यास (सी+जी का ग्राम प्रतिशत), 16 एस एवं 5 एस आर आर.एन.ए. की क्रमबद्धता तथा डी.एन.ए./डी.एन.ए. व डी.एन.ए./आर.एन.ए. की संकरण संभावना का अन्य जातियों से तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।

सायनोजीवाणु के आण्विक परिच्छेदन में प्रयुक्त तकनीके –

- **डी.एन.ए./डी.एन.ए. संकरण** (डी.एन.ए./डी.एन.ए. हाइब्रिडाइजेसन)
  इस विधि की सहायता से गुणसूत्रों में समानता और उनमें डी.एन.ए. न्यूक्लियोटाइड (नाइट्रोजन क्षारों) के विन्यास के आधार पर तुलना कर सायनोजीवाणु की दो विभिन्न जाति के डी.एन.ए. के विन्यास की तुलना की जाती है तथा उनमें संबंध एवं समानता व विषमता का सटीक अध्ययन किया जाता है जिससे जाति अभिनिर्धारण में परिशुद्धता एवं प्रामाणिकता सुनिश्चित की जा सके।
- **राइबोसोमल आर.एन.ए. सूचीकरण** (राइबोसोमल आर.एन.ए. केटालोगिंग)–
  सायनोजीवाणु की कोशिका के राइबोसोमल आर.एन.ए. के 16 एस आर आर.एन.ए. की आण्विक रचना का तुलनात्मक अध्ययन एवं सूचीकरण एक महत्वपूर्ण तकनीक के रूप में प्रयोग किया जा रहा है जिसकी सहायता से पारस्परिक संबंध/संघ से जाति तक संबंध एवं विकास तथा जातिवृत का अध्ययन एक ठोस आधार के रूप में किया जा सकता है। सर्वप्रथम 1988 में विश्व के सायनोजीवाणु के विकास प्रक्रम के अन्तर्गत 29 आंशिक 16 एस आर आर.एन.ए. सूची क्रम प्रकाशित की गयी जिसके द्वारा सायनोजीवाणु के सरल एक कोशिकीय से तंतु रूपी बहुकोशिकीय बहुआयामी विकास की व्याख्या की गयी।

- **डी.एन.ए. चिन्हक आधारित तकनीक** (डी.एन.ए. बेस्ड मार्कर तकनीक)–
  सायनोजीवाणु के सटीक, विश्वसनीय और प्रभावी अध्ययन एवं विश्लेषण के लिए यह तकनीक अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई। इसमें डी.एन.ए. आधारित आण्विक चिन्हकों का प्रयोग कर किसी सायनोजीवाणु की पहचान रचनात्मक एवं कार्यात्मक आधारों की तुलना ज्यादा सटीकता से की जा सकती है क्योंकि संरचनात्मक एवं कार्यात्मक लक्षण थोड़े से भी वातावरणीय परिवर्तन से बदल सकते हैं। परन्तु जीनी विन्यास इतनी सरलता से प्रभावित नही होते। अतः डी.एन.ए. आधारित चिन्हक का प्रयोग कर जातियों का अभिनिर्धारण अत्यधिक विश्वस्नीयता से किया जा सकता है। इस विधि की सहायता से किये जाने वाले अध्ययनों से कुल संबंध विकास क्रम स्थापित करने में सहायता मिलती है। इस तकनीक की यह विशेषता है कि इसने डी.एन.ए. की अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा उपलब्ध होने पर भी सायनोजीवाणु का अध्ययन किया जा सकता है।
- **प्रतिबंधन खण्ड अंश बहुरूपता** (रिस्ट्रिक्शन फ्रेगमेन्ट लेन्थ पोलीमोरफिजम)–
  सायनोजीवाणु के वर्गीकरण एवं अभिनिर्धारण करने हेतु यह एक अत्यन्त सुदृढ़ तकनीक है। विशेष रूप से जब दो प्रतिपूरक सायनोजीवाणु की जातियों को चिन्हित करना हो जिनमें से एक सहजीवी और दूसरी उसकी प्रतिपूरक स्वतंत्र रूप से पायी जाने वाली जाति की तुलना करनी हो जैसे- साइकस की वायवीय जड़ों में पाया जाने वाला नास्टॉक एवं एनाबिना तथा स्वतन्त्र रूप से जल में पायी जाने वाली जातियों में अंतर स्थापित करने हेतु यह विधि बहुत उपयोगी है।
- **यादृच्छिक प्रवर्धित बहुरूपी डी.एन.ए.** (रैनडम एमप्लीफाइड पोलीमोरफिक डी.एन.ए.)–
  इस तकनीक का प्रयोग पोलीमरेज श्रृंखला प्रक्रिया (पी.सी.आर.) में विशेष रूप से किया जाता है। इस विधि में डी.एन.ए. के विषय में किसी पूर्व सूचना/सूची क्रम की जानकारी होना आवश्यक नहीं है। डी.एन.ए. के अत्यन्त सूक्षम अंश की सहायता से बहुलीकरण की प्रक्रिया द्वारा अध्ययन हेतु डी.एन.ए. की प्रचुर मात्रा प्राप्त की जा सकती है और इससे प्राप्त डी.एन.ए. का प्रयोग डी.एन.ए. प्रवर्धित अंगुल छाप तकनीक (एम्पलीफाइड डी.एन.ए. फिंगर प्रिंटिग) की सहायता से सायनोजीवाणु की जाति स्थापित की जा सकती है। परन्तु सायनोजीवाणु के लिए इस तकनीक का प्रयोग बहुत अधिक नहीं किया गया क्योंकि यह विधि डी.एन.ए. की सांद्रता एवं उसमें उपस्थित संदूषकों के लिए अत्यन्त संवेदनशील है।
- **प्रवर्धित खण्ड अंश बहुरूपता** (एमप्लीफाइड फ्रगमेन्ट लेन्थ पोलीमोरफिजम)–
  इस तकनीक का प्रयोग चयनित पालीमरेज श्रृंखला प्रक्रिया (पी.सी.आर.) में किया जाता हैं। डी.एन.ए. की समजातता के अध्ययन हेतु यह अत्यन्त उपयोगी हैं। इस विधि का प्रयोग सायनोजीवाणु की पहचान, वर्गीकरण समस्याओं के निदान एवं जाति निर्धारण के लिए किया जाता हैं।
- **आण्विक परिच्छेदन में पुनरावृत अनुक्रम** (रिपीट सिक्वेन्स इन मोलीकुलर प्रोफाइलिंग)–
  पूर्व केन्द्रकीय जीवों के जीन समूह के डी.एन.ए. में अनुक्रम पुनरावृत्ति मुख्य रूप से पायी जाती है जो कि सामान्यतः लघु खण्ड अनुक्रम पुनरावृत्त के रूप में दृष्टिगोचर होती है। इन पुनरावृत्त अनुक्रमों का विश्लेषण व तुलनात्मक अध्ययन सायनोजीवाणु के वर्गीकरण, लक्षण एवं पहचान के अध्ययन हेतु करते हैं।

उपरोक्त सभी तकनीकों का प्रयोग कर सायनोजीवाणु का वर्गीकरण एवं जाति अभिनिर्धारण निर्विवाद रूप से किया जा सकता है तथा जातियों के पर्याय होने की समस्या का निराकरण भी किया जा सकता हैं। जाति अभिनिर्धारण के अतिरिक्त उपरोक्त विधियों का प्रयोग जातिवृत विकास क्रम निर्धारण इत्यादि की व्याख्या करने में सहायक होगी। ये विधियाँ केवल सायनोजीवाणु वैज्ञानिकों के लिए ही नहीं वरन जीवाणु वैज्ञानिकों, वनस्पतिज्ञों एवं विकास क्रम जीव शास्त्रियों के द्वारा भी प्रयोग में लायी जा रही हैं।

लोकटक रामसार क्षेत्र : एक अवलोकन

विवेक नारायण सिंह एवं बिपिन कुमार सिन्हा
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

लोकटक में कृषिकार्य करते स्थानीय निवासी

जल क्षेत्र या नमभूमि क्षेत्र एक ऐसे पारिस्थितिक तंत्र का निर्माण करते हैं, जो उस सम्पूर्ण क्षेत्र के विभिन्न पर्यावरणीय घटकों के मध्य साम्य स्थापित करते हैं तथा जैव विविधता के भण्डार होते हैं। विश्व के ऐसे ही महत्वपूर्ण नमभूमि क्षेत्रों को संरक्षण प्रदान करने की दृष्टि से ईरान के रामसार नामक स्थल पर 1971 में एक सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन में यह निर्णय लिया गया कि प्रत्येक राष्ट्र अपनी भौगोलिक सीमा में ऐसे नमभूमि क्षेत्रों को चिन्हित कर उन्हें संरक्षित करेंगे, जिससे उसमें पायी जाने वाली वनस्पतियों व जीवों की प्रजातियों को संरक्षण प्रदान किया जा सके। इन चयनित क्षेत्रों को रामसार स्थल के नाम से जाना जाता है।

थांगजिंग का पुष्प

थांगजिंग

वर्तमानमें भारत के 25 महत्वपूर्ण नमभूमि क्षेत्रों को रामसार स्थल के रूप में चयनित किया जा चुका है, व अनेक अन्य ऐसे क्षेत्रों को इस श्रेणी में लाने का प्रयास किया जा रहा है। इन्हीं रामसार स्थलों में से एक भारत के उत्तर-पूर्वी प्रदेश मणिपुर में है, जिसे **लोकटक झील** के नाम से जाना जाता है। इसे 23 मार्च 1990 में रामसार सन्धि के अन्तर्गत विश्व महत्ता का नमभूमि क्षेत्र घोषित किया गया।

लोकटक में तैरते घर

बड़ी है जो मणिपुर व खउगा नदियों के मध्य स्थित है। लोकटक को जलापूर्ति करने वाली प्रमुख नदियों में नुम्बुल व नुम्बोल नदियां हैं जो उत्तरी-पश्चिमी पहाड़ियों से निकलती हैं। इनके अतिरक्त लगभग 30-35 अन्य छोटे-बड़े झरनें व नदियां दक्षिणी-पश्चिमी पहाड़ियों से निकल कर इसे जल प्रदान करती हैं। जिनमें से प्रमुख *मोइरंग, हना-खोंग, इरूम्बी, पाखुँग-खोंग, थांगजोलोक, यांगोइ* तथा *खोरदक* आदि का वर्णन प्रचीन ग्रन्थों में भी मिलता हैं। लोकटक *खोरदक* व *उँगामेन* नहरों के द्वारा मणिपुर नदी से भी जुड़ा है जोकि म्यॉमार की *चिंदविन*

लोकटक को उसकी सांस्कृतिक, सामाजिक व आर्थिक महत्ता के कारण मणिपुर की जीवन रेखा के रूप में जाना जाता है। यह उत्तर-पूर्व भारत की सबसे बड़ी मीठे जल की झील होने के साथ-साथ विश्व की बड़ी झीलों में से एक है, जो इस क्षेत्र को पारिस्थितिक व आर्थिक दृष्टि से संबल प्रदान करती है। समुद्र तल से 800-2070 मी० की उँचाई पर स्थित व 1-5 मी० तक गहराई वाली यह झील लगभग 287 वर्ग किमी० के क्षेत्र में फैली है, जिसका विस्तार 24°25′-24°42′ उ० अक्षांश से 93°46′-93°55′ पू० देशान्तर तक है।

मणिपुर की पहाड़ियों के बीच घाटी में अनेकों *पाट* या झीलें हैं, जिनमें लोकटक सबसे

स्थानीय बाजार

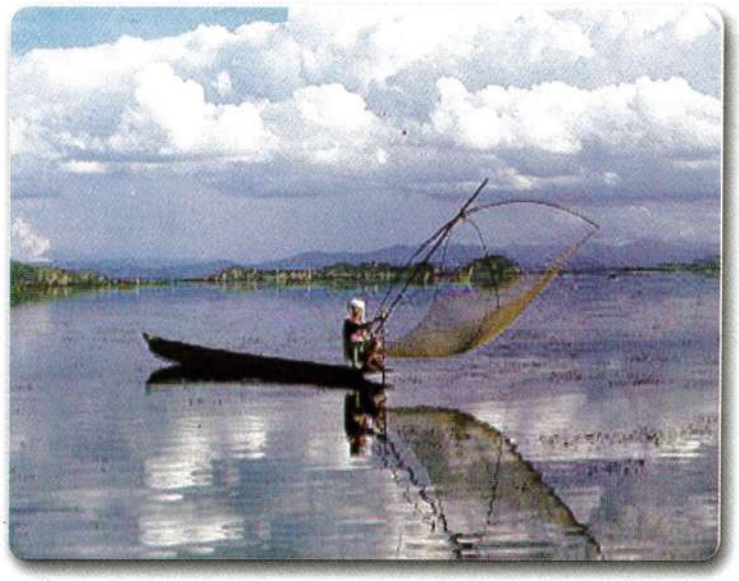

लोकटक में बढ़ता मत्स्य उद्योग

नदी की प्रुख सहायक नदी है। इन नहरों से लोकटक का जल स्तर नियंत्रित रहता है।

लोकटक की फुम्डियॉ :

लोकटक की सबसे बड़ी विशेषता उसमें पायी जाने वाली तैरती हुयी *फुम्डियॉ* है। *फुम्ड़ी* या *फुम* वनस्पतियाँ, मिट्टी व अपक्षयित हो रहे कार्बनिक पदार्थो का एक ऐसा मिला जुला सघन रूप है, जो पानी पर तैरता है। ह्यूमस पदार्थो की अधिकता फुम्ड़ी को कम गुरूत्व व अधिक उत्पलावन के कारण तैरने में सहायता करती है।

फुम्ड़ी का निर्माण मिट्टी के छोटे-छोटे भागों, नदियों द्वारा लाये अपक्षयित कार्बनिक

पदार्थो के एक स्थान पर एकत्रित होने व पोषक पदार्थो की अधिकता के कारण उनमें विभिन्न वनस्पतियों के उत्पन्न हो जाने से होता है। धीरे-धीरे यह भाग सघन हो जाता है तथा पौधों की जड़े उन्हें बांधे रखती हैं। प्रारम्भ में *कांगकुप* (Salvinia natans), *काबोकांग* (Eichhornia crassipes) आदि पौधे प्राकृतिक रूप से फुम्ड़ी का निर्माण करते हैं, तदुपरांत *इशिंग-काम्बोंग* (Zizania latifolia), *टोउ* (Phragmites karka), *हुप* (Leersia hexandra), *पाराग्रास* (Brachiaria mutica), आदि पौधों की तैरती जड़े उन्हें मोटाई व चौड़ाई में बढ़ाती है।

झील में तैरती मूरहेन

लोकटक झील व उसमें तैरती फुम्डियाँ

फुम्ड़ी लोकटक के परिस्थितिकी तंत्र को संतुलित व नियंत्रित करनें में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यह झील में नदियों द्वारा लाये पोषक तत्वों को अवशोषित कर जल की गुणवत्ता का नियंत्रण व जैव विविधता को सहारा प्रदान करती है। इससे जल का प्रदूषण भी नियंत्रित रहता है। फुम्ड़ी खेती के लिये उर्वरक व मछलियों को चारा भी प्रदान करती है। मछुआरे फुम्ड़ी पर झोपड़ी बनाकर रहते हैं व मछली मार कर जीवनयापन करते हैं।

लोकटक के दक्षिणी भाग में सबसे बड़े आकार की फुम्ड़ी को जिसका क्षेत्रफल 40 वर्ग किमी० है, **केईबुल लामजो राष्ट्रीय उद्यान** के रूप में सुरक्षित क्षेत्र घोषित किया गया है। यह विश्व का एकमात्र ऐसा स्थान है जहॉ अत्यधिक संकटग्रस्त श्रेणी का हिरण ***संगाई*** पाया जाता है। यह राष्ट्रीय उद्यान तथा अनेक छोटी-बड़ी तैरती द्वीप जैसी फुम्ड़ियॉ पर्यटकों को मनमोहक दृश्य प्रदान करती है।

संगाई हिरन

लोकटक का महत्व :

लोकटक अपनी विशेषताओं के कारण मणिपुर के लोगों में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती

निर्माणाधीन फुम्डी

है। यह न सिर्फ उच्च जैव विविधता को संरक्षण देती है बल्कि यहाँ के सामाजिक व आर्थिक जीवन को भी आधार प्रदान करती है। एक आंकडे के अनुसार लोकटक से प्रति वर्ष 1500 मिट्रिक टन मत्स्य उत्पादन होता है। लगभग 1,00,000 स्थानीय लोग जीविका हेतु इस झील पर निर्भर करते हैं। लोकटक के जल से विद्युत ऊर्जा पैदा की जाती है तथा 24,000 हेक्टेयर कृषि भूमि की सिंचाई भी की जाती है। यहाँ के निवासियों के लिये इस झील की महत्ता उनके द्वारा गाये जाने वाले लोकगीतों से भी झलकती है। यह उत्तर-पूर्व भारत का एक अद्भुत व मनोरम पर्यट्क स्थल भी है।

लोकटक की जैव विविधता :

लोकटक की जैव विविधता भी बड़ी अनुपम है। पादप विविधता के क्षेत्र में फुम्ड़ियाँ बड़ी महत्वपूर्ण है। इनमें लगभग 250 पुष्पी पादप प्रजातियाँ पाई जाती है, जो जल में स्वतंत्र रूप से तैरती, जल निमग्न या जड़ युक्त परंतु तैरती अवस्था में पाई जाती है। केईबुल लामजो राष्ट्रीय उद्यान से 135 जलीय व अर्ध-जलीय पौधों की प्रजातियों का उल्लेख है। जिसमें से 27 आर्थिक महत्व की है। *हिकाक* (Trapanatans), *थारो* (Nymphaea pubescens), *थाम्बल* (Nelumbo nucifera), *थांगजिंग* (Euryale ferox), *इशिंग-काम्बोंग* (Zizania latifolia), आदि अनेक पादप खाद्य के रूप में प्रयुक्त होते है। *टोउ* (Phragnmites karka), व *खोईमोम* (Saccharum munja), आदि जलावन के रूप में प्रयोग किये जाते हैं। *चानिंग* (Coix lacryma-jobi), *कोम्प्रेक-तुजोम्बी* (Eclipta prostrata), *पेरूक* (Centella asiatica), *लाम्थाबी* (Melothria perpusilla), आदि का प्रयोग दवा के रूप में होता है।

लोकटक में पर्यटन

लोकटक झील का विहंगम दृश्य

लोकटक के प्रवासी पक्षी

लोकटक झील से अबतक 425 जन्तु प्रजातियाँ सूचीबद्ध की जा चुकी है, जिनमे से 249 कशेरूकी व 176 अकशेरूकी हैं। अजगर, सॉभर, भौकने वाले हिरण, आदि कुछ यहाँ के दुर्लभ जीव है। संगाई हिरण (Cervus eldi eldi) जो अत्यधिक संकटग्रस्त श्रेणी की प्रजाति है (IUCN, 1989), मात्र यहीं पर मिलते हैं। 2001 में इनकी संख्या 162 पायी गई थी। इसके अतिरिक्त *थामिन* (Cervus eldi thamin) व *लमांग* (Cervus eldi siamensis) आदि अन्य हिरणों की प्रजातियाँ भी यहाँ पाई जाती हैं।

यह झील लगभग 145 प्रजातियों के हजारों पक्षियों को भी आश्रय प्रदान करती है। इनमें देशी प्रजातियों के अतिरिक्त 30 प्रवासी पक्षी प्रजातियाँ भी हैं जो उत्तरी ध्रुव से यहाँ विहार करने आती हैं, (हिंगिंस 1933-34)। *परपल हेरन* (Purple Heron), *फीसन टेल्ड जकाना* (Pheasant tailed Jacana), *क्रे फीसन या नान्गोबी* (Crow pheasant), *परपल मूरहेन या उमू* (Purple moorhen), *लिटिल ग्रेब या उथिड* (Little grabe), आदि पक्षी यहाँ देखे जा सकते है।

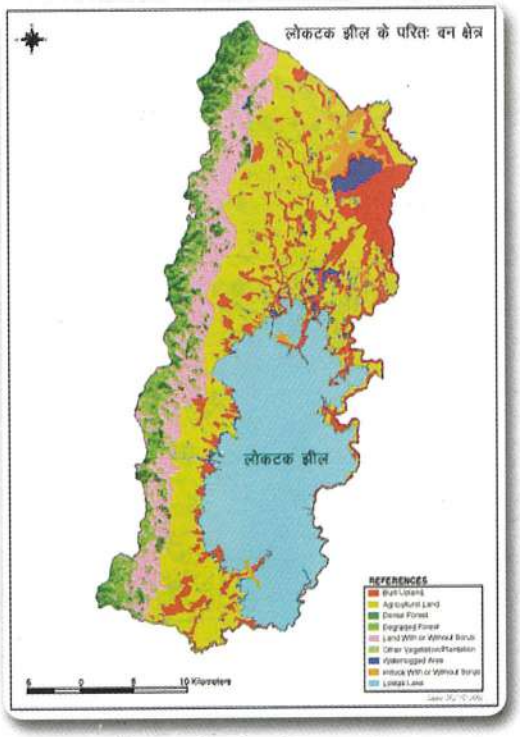

लोकटक झील के परितः वन क्षेत्र

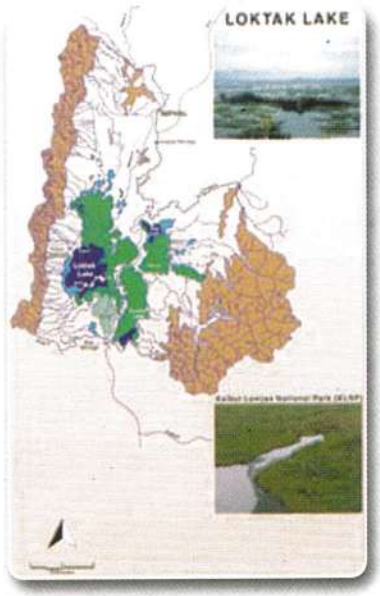

लोकटक विकास प्राधिकरण नें इस जल क्षेत्र से अब तक 54 मछलियों की प्रजातियों का उल्लेख किया हैं, जिनमें 17 प्रजातियाँ विदेशी है जबकि 26 प्रजातियाँ दुर्लभ श्रेणी की हैं। *सिरहिनस रीबा, पंटिअस सराना, लेबिओ पन्गुसिआ, वलैगो अट्टू* आदि मछली प्रजातियाँ यहाँ पायी जाती हैं जो अब धीरे-धीरे लुप्त हो रही हैं।

हिकाक

लोकटक को रामसार क्षेत्र घोषित करने के कारण :

- यह प्राकृतिक रूप से पायी जाने वाली फुम्डियों से भरी हुई है जो अनेको जीव व प्रजातियों को आवास देने के साथ स्थानीय निवासियों को अनेकों प्रकार से लाभ पहुँचाती है,
- केईबुल लामजो राष्ट्रीय उद्यान विश्व का अनोखा तैरता हुआ सुरक्षित क्षेत्र लोकटक का अंग है व संकटग्रस्त हिरण प्रजाति *संगाई* का एकमात्र वासस्थल है,
- यह नदियों द्वारा विचरण करने वाली अनेक प्रवासी मछली प्रजातियों का जननस्थल है तथा मछलियों का एक संवेदनशील वासस्थल है,
- यह झील अनेक देशी व प्रवासी पक्षी प्रजातियों को भी सुरक्षित वास प्रदान करती है,
- लोकटक मणिपुर के स्थानीय निवासियों के सामाजिक व आर्थिक जीवन में महत्वपूर्ण योगदान रखती है।

लोकटक के संकट :

विश्व के कुछ ऐसे रामसार क्षेत्र जो किन्ही कारणों से संकट झेल रहें हैं उन्हें मॉन्ट्रियल सूची के अन्तर्गत सूचीबद्ध किया गया हैं। 1990 की सूची के अनुसार लोकटक व चिलका भारत के दो जलक्षेत्र इसका अंग थे, वर्तमान में लोकटक भारत की अकेली झील है जो इस सूची में है।

राष्ट्रीय उद्यान में विचरते हिरन

लोकटक की सुन्दरता व अनोखी जैव विविधता को कई कारणों से चुनौती का सामना करना पड़ रहा है। जो निम्नवत् है–

- लोकटक के जल ग्रहण क्षेत्र में नष्ट हो रहे वन प्रमुख कारणों में से एक है,
- जल ग्रहण क्षेत्र से आने वाली मिट्टी व रेत के कारण झील का स्वरूप प्रभावित हुआ है,

- *ईथाइ* बॉध के कारण जलस्तर में आई वृद्धि से यहाँ की पारिस्थितिकी व क्रियाशीलता प्रभावित हुई है,
- बॉध के कारण कृषि योग्य भूमि के डूबने से स्थानीय निवासियों की झील पर निर्भरता बढ़ी हैं,
- मानव निर्मित फुम्डी जिसे *अथाफुम* कहते हैं, की संख्या में अतिशय वृद्धि हुई है, जो जल प्रदूषण का कारण बनती जा रही हैं,
- मछली मारने की प्रक्रिया तीव्र होने से मछलियों की विविधता प्रभावित हुई हैं,
- फुम्डी की मोटाई घटने से राष्ट्रीय उद्यान व संगाई हिरण के अस्तित्व को संकट उत्पन्न हुआ हैं,

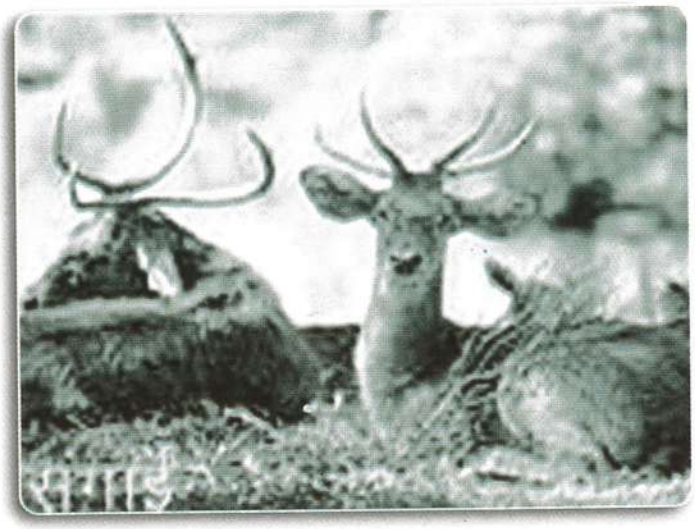

संगाई

- निकटवर्ती नगरों से आने वाला गंदा जल, कूड़ा-कचरा, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक, आदि प्रदूषकों के कारण लोकटक का जल प्रदूषित हो रहा हैं।

बचाव के प्रयास :

मणिपुर राज्य सरकार ने झील को अपक्षयित होने से बचाने, जल की गुणक्तामें सुधार करने, विद्युत ऊर्जा उत्पादन, मत्स्य उद्योग व पर्यटन को बढ़ावा देने, तथा झील में रेत की मात्रा को नियंत्रित करनें के उद्देश्य से 1986 में लोकटक विकास प्राधिकरण की स्थापना की है। जिसका मुख्य कार्य क्षेत्र का सर्वेक्षण करने, रेत व फुम्डी की मात्रा पर नियंत्रण रखना, झील से खर-पतवार की सफाई करना, जल ग्रहण क्षेत्र में पौधों की रोपाई कराकर मृदा अपरदन को रोकना व कानून बनाकर झील में जैव विविधता को संरक्षित करना है।

थांगजिंग का व्यापारिक रूप

उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि, लोकटक न सिर्फ स्थानीय अपितु मणिपुर राज्य की अर्थ व्यवस्था पर प्रभाव डालती है साथ ही लोगों के सामाजिक जीवन में रची बसी व गौरव का प्रतीक भी है। परन्तु मानव की बढ़ती आवश्यकता व लालसा ने इस सुन्दर व स्वस्थ पारिस्थितक तंत्र को बहुत सीमा तक प्रभावित किया है। यदि शीघ्र ही लोगों में चेतना व जागरूकता फैला कर इस निरंतर हो रही क्षय प्रक्रिया को रोका न गया तो हमें इस विश्व महत्ता के केन्द्र व अनेक दुर्लभ जीवों को समाप्त करने का कलंक वहन करना पड़ेगा।

हिमालय की अधिकतम ऊंचाई पर पाई जाने वाली कुछ वनस्पतियां

प्रशांत केशव पुसालकर
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

प्राकृतिक सौन्दर्य में अतुलनीय हिमालय विश्व की सबसे विशाल पर्वत श्रृंखला है। 27° - 36° उत्तर अक्षांश तथा 73° - 97° पूर्व देशान्तर में स्थित यह पर्वतमाला लगभग 2500 किलोमीटर लम्बी है तथा लगभग बीस लाख वर्ग किलोमीटर में फैली है। ध्रुवीय प्रदेश छोड़कर यह दुनिया में बर्फ का सबसे बड़ा भंडार है। पूर्वी हिमालय की नम जलवायु से पश्चिमी हिमालय की शुष्क एवं ठंडी जलवायु तक विभिन्न जलवायु इस पर्वत श्रृंखला में विविध प्राकृतवासों को जन्म देते हैं, जिसके कारण हिमालय दुनिया की अनूठी एवं विस्मयकारी जैव विविधता का धरोहर है। यह विविधता जो दक्षिणी छोर पर स्थित उपोष्ण कटिबंधीय वनों से लेकर उत्तर में शीत मरूस्थलों (बर्फीले रेगीस्तान) तक फैली है। हिमालय की विभिन्न क्षेत्रों की ऊँचाई एवं वहां पायी जाने वाली वनस्पति विविधता के आधार पर यहां की वनस्पतिजात को उपोष्ण कटिबंधीय, शीतोष्ण पृथुपर्णी, शंकुधारी, हिमाद्रि तथा शीत मरूस्थलीय प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है। यहां पौधों की लगभग 18500 जातियां पायी जाती हैं, जिनमें से लगभग 5,900 जातियां स्थानिक अथवा सीमित क्षेत्री हैं। केवल पुष्पी पौधों की ही यहां 8,000 से अधिक जातियां पायी जाती हैं, जिनमें से 71 स्थानिक अथवा सीमित क्षेत्री वंशो सहित लगभग 3200 जातियां स्थानिक हैं। इस क्षेत्र में आवृतबीजी, अनाबृतबीजी तथा पर्णांगों की लगभग 1748 औषधीय रूप से महत्वपूर्ण वनस्पतियां इसकी समृद्ध एवं अमूल्य जैव विविधता की द्योतक हैं। वनस्पतियों की अधिकतम विविधता जहां इस क्षेत्र के उपोष्ण एवं हिमाद्रि वनों में पायी जाती है, वहीं कुछ ऐसी वनस्पतियां भी हैं जो पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण से अत्यन्त विषम स्थितियों में भी प्रकृत रूप में पायी जाती हैं। प्रस्तुत लेख में विश्व की इस सबसे ऊंची पर्वत श्रृंखला में अधिकतम ऊँचाई पर पायी जाने वाली वनस्पतियों के कुछ रोचक तथ्यों को उजागर किया गया है। इनमें इस क्षेत्र में 6000 मीटर या उससे अधिक ऊंचाई पर उगने वाली वनस्पतियों के अतिरिक्त विभिन्न वर्ग, जैसे वृक्ष, जलीय, कीटभक्षी, परजीवी, मृतोपजीवी पौधों की इस क्षेत्र में अधिकतम ऊंचाई पर पायी जाने वाली जातियों का भी उल्लेख किया गया है।

6000 मीटर के उपर पाई जाने वाली वनस्पति जातियां :

एर्मानिया हिमालयेन्सिस (ब्रासीकेसी)
Ermania himalayensis **[Brassicaceae]**

यह एक बहुवार्षिक, 5-15 सें.मी. ऊंचा रोमिल शाकीय पौधा है, जिसकी गद्देदार पत्तियों के किनारे दंतुर होते हैं। पौधे के निचले हिस्से में परीगुच्छ निर्मित करने वाली पत्तियां शाखाओं के उपरी हिस्से में विरल होती हैं। जून से अगस्त तक इसमें सफेद अथवा हल्के जामुनी - सफेद रंग के फूल गूच्छेदार, असिमाक्ष पुष्पक्रम में आते है, जिसके बाह्यदल हरे. रोमिल और पुष्पदल मेखरारूपी सफेद होते हैं फलियों का विकास अगस्त से अक्टूबर माह में होता हैं।

हिमालय में पाकिस्तान, भारत (जम्मू एवं काश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड) नेपाल तथा चीन (तिब्बत) में वितरित यह जाति 5500-6400 मीटर की ऊंचाई पर चट्टानों के बीच में पाई जाती है।

गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकार्ड में इसका नाम (*रेननक्युलस लोबेटस* के साथ) अधिकतम ऊंचाई (6400 मीटर) पर पाई जाने वाली पुष्पी जाति के तौर पर दर्ज किया गया है।

रेननक्युलस लोबेटस [रैननक्युलेसी]
Ranunculus lobatus **[Ranunculaceae]**

यह एक बहुवर्षीय 3-8 से.मी. ऊंची शाकीय जाति है जिसकी पत्तियां गोलाकार एवं किनारे कुठदंती अथवा हलके

पालीयुक्त होते हैं। इसकी निचली पत्तियों मे लंबे पर्णवृत्त वाले पीले रंग के फूल आते हैं, जिसके बाह्यदल दीर्घायत-भालाकार, हरे अथवा सफेद, झिल्लीदार और रोमिल होते हैं, तथा पुष्पदल अधोमुख अंडाकार, पीले चमकीले तथा निचले हिस्से में मकरंद कोषयुक्त होते हैं। अगस्त से अक्टूबर में इनमें हल्के पीले रंग के एकीन फलियों का विकास होता है।

हिमालय में पाकिस्तान, भारत (जम्मू एवं काश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड) तथा चीन (तिब्बत) में वितरित यह जाति 5000-6400 मीटर तक पथरीले एवं गीले, रेतीले प्राकृतवास में पाई जाती है।

गिनीज बुक आफ वर्ल्ड रिकार्ड में इसका भी नाम (*एर्मानिया हिमालयेन्सिस* के साथ) अधिकतम ऊंचाई (6400 मीटर) पर पाई जाने वाली पुष्पी जाति के तौर पर दर्ज किया गया है।

जेन्शियाना उर्नुला [**जेन्शियानेसी**]
Gentiana urnula **[Gentianaccae]**

यह एक गुच्छेदार प्रकृतिवाली, बहुवर्षी शाकीय जाति है जिनमें पत्तियां चौड़ी अधोमुख अंडाकार तथा अधिव्यापित होती हैं। अगस्त से अक्टूबर तक इसमें गहरे नीले रंग के अंतस्त, एकक फूल खिलते हैं जिसके हरे बाह्यदल पार्श्वभाग में पक्षीय होते हैं तथा इसके नलिकाकार दलपुंज गोलाकार पुष्पदल के साथ अंतर्दलीय धारीदार पालिकाओंसे युक्त होते हैं। सितम्बर से अक्तूबर तक इसके पुष्पों में संपुट फलों का विकास होता है।

हिमालय में नेपाल भूटान तथा चीन (तिब्बत) में वितरित यह जाति 4700-6200 मीटर तक पथरीले प्राकृतवास में पाई जाती है।

स्टिलेरिया डिकम्बेन्स [**केरिओफिल्लेसी**]
Stellaria decumbens **[Caryophyllaceae]**

पत्थरों, चट्टानों एवं हिमनदों के आसपास चटाई के समान उगने वाली इस जाति में पत्तियां छोटी, दीर्घवृत्ताकार तथा अधिव्यापित होती हैं। जून से अगस्त तक इसकी शाखाओं में सफेद, एकल अथवा दो-तीन फूल आते हैं जिसके बाह्यदल दीर्घवृत्ताकार तथा पुष्पदल सफेद, द्विभाजित होते हैं। जुलाई से अक्तूबर तक फूलों की जगह छोटे, संपुट फल ले लेते हैं जो बाह्यदलों से ढके होते हैं।

हिमालय में पाकिस्तान, भारत (जम्मू एवं काश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, सिक्किम) नेपाल, भूटान तथा चीन (तिब्बत) में वितरित यह जाति 3200-6135 मीटर तक पत्थरों, चट्टानों एवं हिमनदों के सानिध्य में पाई जाती है।

अरेनारिया ब्रायोफिला [**केरिओफिल्लेसी**]
Arenaria bryophilla
[Caryophyllaceae]

हरीताथ की तरह दिखने वाली इस बहुवार्षिक शाकीय जाति में हल्के हरे रंग की छोटी रेखाकार, नुकीली पत्तियां छोटी शाखाओं पर इस तरह से अधिव्यापित होती

हैं कि यह चट्टानों पर पुंजमय गद्दों का निर्माण करती है। जुलाई से सितम्बर तक इसकी शाखाओं पर सफेद रंग के अंतस्त, अवृंत पुष्प आते हैं जिस के बाह्यदल हरे. भालाकार तथा पुष्पदल सफेद, भालाकार होते हैं। सितम्बर से अक्तूबर तक फूलों की जगह संपुटि फल ले लेते हैं।

हिमालय में पाकिस्तान, भारत (जम्मू एवं काश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, सिक्किम) नेपाल, भूटान तथा चीन (तिब्बत) में वितरित यह जाति 4400-6180 मीटर तक पत्थरों एवं चट्टानों पर पाई जाती है।

ए. वोलस्टन ने इसे माऊंट एवरेस्ट के रास्ते में अधिकतम ऊंचाई पर (6180 मीटर) पाई जाने वाली पुष्पी जाति के नाम से दर्ज किया है।

कोराइडैलिस नाना [फ्यूमेरिएसी]
***Corydalis nana* [Fumariaceae]**

यह एक बहुवार्षिक, शाकीय जाति है, जिसकी भूरे रंग की पत्तियां द्वीदिर्णतम पिच्छाकार होती हैं, जिसमें चरमखंड दीर्घवृत्ताकार तथा अधोमुख-भालाकार होते हैं। जुलाई से सितम्बर तक इसकी आरोही शाखाओं पर 5-15 दलपुटयुक्त पीले पुष्प अंतस्त, समशिखरुपी असिमाक्ष पुष्पक्रम में विकसित होते हैं। इसके अंदरूनी पुष्पदल शीर्ष पर गहरे काले रंग के होते हैं। अगस्त से अक्तुबर तक इसके पुष्प अधोमुख अंडाकार फलियों में विकसित हो जाते हैं।

कोराइडैलिस नाना

हिमालय में पाकिस्तान, भारत (हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड) तथा नेपाल में वितरित यह जाति 5000-6400 मीटर तक पथरीले एवं गीले रेतीले प्राकृतवास में पाई जाती है।

***कोराइडैलिस हेंडरसोनी* [फ्यूमेरिएसी]**
***Corydalis hendersonii* [Fumariaceae]**

यह एक बहुवार्षिक, शाकीय, आरोही जाति है, जिसकी गद्देदार, त्रिदिर्णतम पिच्छाकार पत्तियों के चरम खंड रेखाकार, दीर्घवृत्ताकार अथवा भालाकार होते हैं। जुलाई से सितम्बर तक इसकी शाखाओं पर 3-8, पीले दलपटयुक्त पुष्प अंतस्त, समशिखरूपी असिमाक्ष पुष्पक्रम में विकसित होते हैं जिसके बाह्यदल सूक्ष्म, सफेद झिल्लीदार होते हैं तथा इसके पुष्पदल फलक पक्षीय होते हैं। अगस्त से अक्तूबर तक इसमें दीर्घायत फलियों का विकास होता है।

हिमालय में पाकिस्तान, भारत (जम्मू एवं काश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, सिक्किम), नेपाल, भूटान तथा चीन (तिब्बत) में वितरित यह जाति 3800-6100 मीटर तक पत्थरों, चट्टानों एवं हिमनदों के सानिध्य में पाई जाती है।

***कोराइडैलिस पोलीगेलिना* [फ्यूमेरिएसी]**
***Corydalis polygalina* [Fumariaceae]**

यह एक बहुवार्षिक शाकीय जाति है जिसकी जडें कंदिल होती हैं। इसकी भूरे रंग की पत्तियां द्वीदिर्णतम पिच्छाकार होती हैं जिसमें चरमखंड दीर्घवृत्ताकार तथा अधोमुख-भालाकार होते हैं। जुलाई से सितम्बर तक इसकी

आरोही शाखाओं पर 5-15 दलपुष्पयुक्त पुष्प अंतस्त समशिखरूपी असिमाक्ष पुष्पक्रम में विकसित होते है जिसके बाह्यदल सूक्ष्म, सफेद झिल्लीदार तथा पुष्पदल फलक पक्षीय होते हैं। इसके अंदरूनी पुष्पदल शीर्ष पर गहरे काले रंग के होते हैं। अगस्त से अक्तूबर तक अंडाकार फलियों का विकास होता है।

हिमालय में पाकिस्तान, भारत (जम्मू एवं काश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, सिक्किम), नेपाल भूटान तथा चीन (तिब्बत) में वितरित यह जाति 3950-6100 मीटर तक पत्थरों एवं चट्टानों में पाई जाती है।

***डेल्फीनियम ब्रुनोनियानम* [रैननक्युलेसी]**
***Delphinium brunonianum* [Ranunculaceae]**

यह एक बहुवार्षिक, ग्रंथिल रोमयुक्त शाकीय जाति है जिसकी पत्तियां गोलाकार किनारों पर पालियुक्त होती हैं। जुलाई से सितम्बर तक इसमें पीले, बैंगनी तथा जामुनी रंग के दलपुटयुक्त फूल असिमाक्ष पुष्पक्रम में विकसित होते हैं। इसका बाह्यदल, जो इसके फूलों को रंग प्रदान करता है, अर्धपारदर्शी तथा रोमिल होता है और इसमें जालीदार शिराएं स्पष्ट रूप से देखी जा सकती हैं। गहरे काले रंग के इसके पुष्प दल आकार में छोटे और बाह्यदलों से ढके होते हैं। इनमें फलों का विकास सितम्बर से अक्तूबर माह में होता है।

डेल्फीनियम ब्रुनोनियानम

हिमालय में पाकिस्तान, भारत (जम्मू एवं काश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड), नेपाल तथा चीन (तिब्बत) में वितरित यह जाति 4500-6000 मीटर के बीच, हिमनदों तथा चोटियों पर पथरीले प्राकृतवास में पाई जाती है। हलकी कस्तूरीवाली खुशबू से युक्त इसके पत्तों के रस का प्रयोग स्थानीय लोगों द्वारा पालतू जानवरों के शरीर पर पलने वाले कीड़ो के रोकथाम के लिए किया जाता है।

***डेल्फीनियम डेन्सीफ्लोरम* [रैननक्युलेसी]**
***Delphinium densiflorum* [Ranunculaceae)**

यह एक बहुवार्षिक, शाकीय जाति है जिसकी जड़ें प्रकन्दनुमा होती हैं। इसकी वृत्ताकार तथा गोलाकार पत्तियां पालियुक्त तथा रोमिल होती हैं। जुलाई से सितम्बर तक इसमें भूरे नीले अथवा गहरे नीले दलयुक्त फूल असिमाक्ष पुष्पक्रम में विकसित होते हैं जिसके बाह्यदल अर्धपारदर्शी, रोमिल तथा पुष्पदल गहरे काले रंग के होते है। सितम्बर से अक्टूबर तक इसके प्रत्येक पुष्प में तीन फल विकसित होते हैं।

हिमालय में पाकिस्तान, भारत (उत्तराखंड), नेपाल तथा चीन (तिब्बत) में वितरित यह जाति 4000-6000 मीटर की ऊचाई पर पत्थरों, चट्टानों एवं हिमनदों के सानिध्य में पाई जाती है।

***पोटेन्टिला फ्रुटीकोसा* प्रभेद *प्युमिला* [रोजेसी]**
***Potentilla fruticosa* var. *pumila* [Rosaceae]**

यह भूशाही शाखाओं वाली क्षुप जाति है जिसकी विषम पिच्छकी पत्तियों में दीर्घवृत्ताकार अथवा भालाकार सफेद, चमकीले रोमो से आच्छादित 5 पर्णाक होते हैं। इसके पर्णवृत मटमैले अनुपत्र से युक्त होते हैं। जून से सितम्बर तक इसकी आरोही पुष्पी शाखा पर पीले रंग के अंतस्त, सवृंत फूल आते हैं, जिसके बाह्यदल दीर्घायत-दीर्घवृत्ताकार, रोमिल

तथा दल गोलाकार-अधोमुख अंडाकार, पीले होते हैं। इसके अंडप जो रोमिल पात्रधानी पर स्थित होते हैं, जुलाई से अगस्त तक एकबीजी एकीन फलों में विकसित होते हैं।

हिमालय में पाकिस्तान, भारत (जम्मू एवं काश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, सिक्किम), नेपाल, भूटान तथा चीन (तिब्बत) में वितरित यह प्रजाति 5300-6000 मीटर तक खुली एवं सूखे प्राकृतवास में पाई जाती है।

इफेड्रा जेरार्डियाना
***Ephedra gerardiana* [Ephedraceae]**

यह एक बहुवार्षिक, 30-60 सेमी, ऊंची, पुंजमय अनावृतबीजी क्षुप है जिसकी आरोही हरी शाखायें अरोमिल होती हैं तथा इसकी जड़ों पर शल्क रूप पत्तियों का विकास होता है। जुलाई से अगस्त तक इसकी शाखाओं पर 4 - 8 पुष्पी पुरुष पुष्पशंकु तथा एक पुष्पीय स्त्रीशंकुओं का विकास होता है, जो अगस्त से सितम्बर के मध्य लाल गद्देदार सहपत्र से युक्त गोलाकार फलों का विकास करते हैं।

हिमालय में पाकिस्तान, भारत (जम्मू एवं काश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड), नेपाल तथा चीन (तिब्बत) में वितरित यह जाति 5500 - 6400 मीटर तक चट्टानों तथा सूखी जगहों में पाई जाती है। यह पौधा औषधीय दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण इफेड्रीन नामक अल्कलॉइड का महत्वपूर्ण स्रोत है।

हिमालय क्षेत्र में अधिकतम ऊंचाई पर पायी जाने वाली कुछ रोचक वनस्पति जातियां

***बेट्यूला यूटिलिस* [बेट्यूलेसी]**
***Betula utilis* [Betulaceae]**

छोटे अथवा मध्यम आकार का चौड़ी पत्ती वाला यह वृक्ष हिमालय में 4400 मीटर की ऊचाई तक पाया जाता है जिसकी छाल मैले सफेद रंग की होती है। इसकी पत्तियां चौड़ी अंडाकार तथा निशिताग्र होती है एवं उनके किनारे दंतुर होते हैं। अप्रैल से जून तक इसके लाल रंग के पुरुषपुष्प कैटकीन पुष्पक्रम में, पत्तियों से पहले अथवा पत्तियों के साथ विकसित होतें हैं। जुलाई से सितम्बर तक इसमें पक्षीय बीजों का विकास होता है।

यह वृक्ष पश्चिमी हिमालय के हिमाद्रि क्षेत्रों में 3600 मीटर तथा पूर्वी हिमालय क्षेत्र में 4000 मीट की ऊंचाई पर वृक्ष सीमा दर्शाता हैं। इसकी छाल का उपयोग पौराणिक काल में लेखन सामग्री के रूप में किया जाता था।

***रैननकुलस ट्राइकोफिलस* [रैननक्युलेसी] :**
***Ranunculus trichophyllus* [Ranunculaceae]**

हिमालय क्षेत्र की नम भूमि व झीलों में सबसे अधिक ऊँचाई पर पाई जाने वाली इस बहुवार्षिक जलीय जाति में गहरे हरे रंग की दीर्घ पिच्छाकार पत्तियां इस प्रकार विभाजित होती हैं कि इसके अंतिम खंड धागों की तरह दिखते हैं। जुलाई से अगस्त तक इसकी शाखाओं पर सफेद रंग के फूल आते हैं जो अगस्त से अक्टूबर तक एकबीजी एकीन फलों में परिवर्तित हो जाते है।

हिमालय में पाकिस्तान, भारत (जम्मू एयं काश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड), नेपाल तथा चीन (तिब्बत) में वितरित यह जाति 3300-4780 मीटर तक की ऊंचाई पर पाई जाती है।

हाल ही में हुए अनुसंधानों के आधार पर पिछले दशक तक 4500 मीटर तक ही सीमित इस जाति का माऊंट एवरेस्ट की तलहटी में 4780 मीटर से अधिक ऊंचाई पर स्थित हिमतालों में पाए जाने का मुख्य कारण ग्लोबल वार्मिंग को माना जा रहा है।

पिंग्विक्युला एल्पीना [लेंटीब्यूलेरिएसी]
***Pinguicula alpina* [Lentibulariaceae]**

यह एक बहुवार्षिक जलीय कीटभक्षी जाति है, जिसमें दीर्घवृत्ताकार, हल्के पीले अथवा हरे रंग की ग्रंथियुक्त पत्तियों के निचले हिस्से में परागुच्छ होते हैं। मई - जून में इसकी पर्णहीन पुष्पी शाखाओं पर सफेद अथवा नीले रंग के फूल आते हैं जो पीले धब्बों से युक्त होते हैं। फूलों के बाह्यदल तथा पुष्पदल द्विओष्ठी होते हैं। इसमें फलों का विकास जून - जुलाई माह के दौरान होता है।

हिमालय में सर्वत्र वितरित यह जाति 3000 - 4300 मीटर तक झरनों तथा नालों के किनारों पर गीली जगहों पर पाई जाती है। इसी कुल की एक अन्य कीटभक्षी जाति, *युट्रिकुलेरिया माइनर* (*Utricularia minor*) भी इस क्षेत्र की झीलों में बहुतायत से मिलती हैं।

आर्स्युथोबियम माइन्युटिसिमम (विसकेसी)
***Arceuthobium minutissimum* [Viscaceae]**

इस क्षेत्र में पाया जाने वाला यह सबसे छोटा पुष्पी पाधा है, जो *पाइनस वालिचियाना* की शखाओं पर परजीवी होता है। इसके 1-5 मिमी. लंबे, हरे, जोड़ो वाले पादप शरीर पर जुलाई से अगस्त तक द्विओष्ठी सफेद अथवा हरे, एकलिंगी पुष्प आते हैं। जुलाई से सितम्बर तक इसमें 1-2 मिमी. चौड़े गोलाकार सरस फलों का विकास होता है जोकि परिदलपुंज से युक्त होते हैं।

आर्स्युथोबियम माइन्युटिसिमम (जेरहार्ड ग्लाट्जेल के सौजन्यसे)

हिमालय में पाकिस्तान, भारत (जम्मू एवं काश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड), नेपाल तथा चीन (तिब्बत) में वितारित यह जाति 3000-3400 मीटर तक *पाइनस वालिचियाना* पर अधिपादपीय परजीवी के रूप में पाई जाती है तथा इसमें पाये जाने वाले घातक ''बिचेस ब्रुम'' नामक रोग के लिए जिम्मेदार है।

———————

वैश्विक तापन (Global Warming) एवं जलवायु परिवर्तन : एक भूमंडलीय समस्या

विवेक नारायण सिंह एवं सुशील कुमार सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

पृथ्वी समस्त जीवों का आवास है, भूमि, जल, वायु तथा वनस्पतियां वे अवयव हैं जो इसके परितः पाये जाते हैं। चारों तरफ उपस्थित ये घटक ही उसका पर्यावरण बनाते हैं। हर्सकोवित्ज के अनुसार ''प्राणी के जीवन और विकास को प्रभावित करने वाली समस्त बाह्य स्थितियों को हम उसका पर्यावरण कहते हैं। पृथ्वी को चार स्पष्ट परिमंडलों में बाँटा जा सकता है, ये हैं–स्थलमंडल, जलमंडल, वायुमंडल व जैवमंडल। पर्यावरण के इन चारों मंडलों में से किसी भी घटक में यदि कोई अवांछनीय परिवर्तन किया जाये तो वह सम्पूर्ण पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव डालेगा। आदिम युग से ही मानव ने अपनी आवश्यकताओं को पूरा करनें के लिए प्रकृति का ही सहारा लिया है। समाज के विकास के साथ–२ जीवनयापन व ऊर्जा की पूर्ति के लिये प्राकृतिक संपदा का ही दोहन किया है। बीसवीं शताब्दी में प्रौद्योगिकी विकास के प्रभाव से उत्पादकता के साथ–2 उपभोग में भी बढ़ोतरी हुयी है। इस सबका परिणाम पर्यावरण में तेजी से हो रहे अवनयन में साफ परिलक्षित होता है।

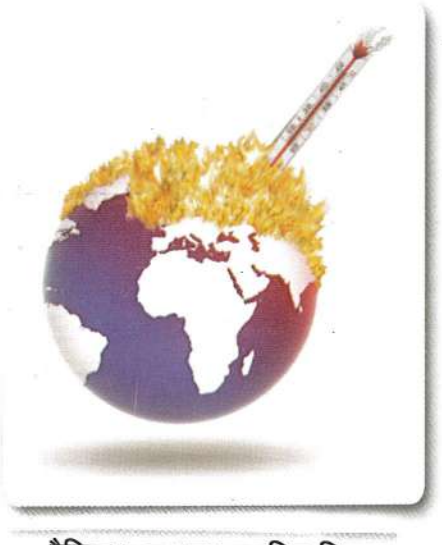

वैश्विक तापन का काल्पनिक चित्रण

पर्यावरण में हो रहे अवनयन में से यदि हम प्राकृतिक प्रकोप यथा पृथ्वी के अन्तर्जात बल (Endogentic Force), विवर्तन (Tectonics), ज्वालामुखी, भूकम्प, वलयन (Folding) आदि जिन पर मानव का वश नहीं है, को छोड़ कर भी अध्ययन करें तो भी हमें अनेक ऐसे कारण मिलेंगे जो स्वंय मानव जनित हैं, तथा इस सीमा तक हानिकारक हैं कि मानव के ही अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह लगा सकते है।

आर्थिक उद्देश्यों के लिए वनों का अनाच्छदन, व्यापारिक कृषि हेतु भूमि के उपयोग में परिवर्तन, औद्योगिक गतिविधियों द्वारा वायुमंडल में विषाक्त पदार्थो का उत्सर्जन, आदि अनेक ऐसे कारण हैं जो हमारे पर्यावरण के समस्त परिमंडलों को किसी न किसी रूप में क्षति पहुंचा रहे हैं। मानव की इस विस्फोटक गतिविधियों का हमारी प्रकृति पर बुरा प्रभाव प्रत्यक्ष व परोक्ष दोनों ही प्रकार हुआ है। चाहे भोपाल गैस त्रासदी (भोपाल, दिसम्बर 1984), में मिथाइल आइसो सायनेट उत्सर्जन हो, चेरनोबिल में नाभिकीय संयंत्र दुर्घटना (सोवियत रुस, 1986) हो, या हेरोशिमा व नागासाकी (6 व 9 अगस्त, 1945), की घटनायें ये सभी मानव की महत्वाकांक्षा का ही परिणाम थीं, जिसनें न सिर्फ पर्यावरण अपितु मानव जाति को भी प्रत्यक्षतः प्रभावित किया है। इसी प्रकार अनेक ऐसे कारण भी हैं जिनका प्रभाव दूरगामी होगा और हम स्वयं को उनसे किसी भी परिस्थिति में बचा नहीं सकेगें। वैश्विक तापन, हरित गृह प्रभाव, अम्ल वर्षा, ओजोन क्षरण, आदि उसी परोक्ष पर्यावरणीय क्षति का उदाहरण हैं।

आज भूमंडलीकरण की प्रक्रिया चरम पर है, औद्योगीकरण व आर्थिक विकास सभी सीमाओं को पार कर वैश्विक स्तर पर चल रहा है। परन्तु इसी दौड़ में विकास के साथ–2 प्रकृति विनाश की गति भी तीव्रतम हो चली है। यह विनाशलीला भी भूमंडलीय स्तर पर है, भूमंडलीय तापन इसका एक ज्वलंत उदाहरण है, जो विश्व के भूगोल को बदलने में अकेले ही सक्षम है।

वैश्विक तापनः

सूर्य से प्राप्त ऊर्जा सम्पूर्ण विश्व को क्रियाशील रखती है। किरणों के पृथ्वी पर आने से पृथ्वी के तापमान में वृद्धि

होती है, भूपटल पर महाद्वीप व सागर गर्म होते हैं, पुनः यह ऊष्मा विकिरण के रुप में वायुमंडल में वापस विकिरित हो जाती है। इस प्रकार दोनों के बीच एक साम्य बना रहता है। परन्तु लौटने वाली यह ऊष्मा यदि एक तापरोधी स्तर जिसका कि कार्बन डाई अक्साइड (CO_2) व जल वाष्प के द्वारा निर्माण होता है, अवरोधित होती है तो पृथ्वी के तापमान में वृद्धि कर देती है। कार्बन डाई अक्साइड व जलवाष्प के अतिरिक्त क्लोरो फ्लोरो कार्बन (CFC), नाइट्रोजन के आक्साइड (NO_x) क्षोभमंडलीय ओजोन (O_3) व मीथेन (CH_4) आदि गैसें भी तापरोधी खोल बनाने में मुख्य रुप से भाग लेती हैं। सूर्य से आने वाली ऊष्ण किरणें सूक्ष्म तरंग विकिरण (Microwave radiation) के रुप में वायुमंडल में प्रवेश तो कर लेती हैं किन्तु भूपटल द्वारा विसर्जित दीर्घ तरंग विकिरण के रुप में अंतरिक्ष में उत्सर्जित नहीं हो पाती हैं। ये गैसें इसके मार्ग में बाधा पहुँचाती हैं, परिणामतः वायुमंडल की निचली परतों का ताप लगातार बढता जाता है। इन गैसों का पृथ्वी व उसके वायुमंडल के प्रति यह व्यवहार हरित गृह (Green House) के समान होने के कारण इन्हें हरित गृह गैसें कहते हैं, व इसके प्रभाव से होने वाली ताप वृद्धि को वैश्विक तापन या Global Warming कहते है।

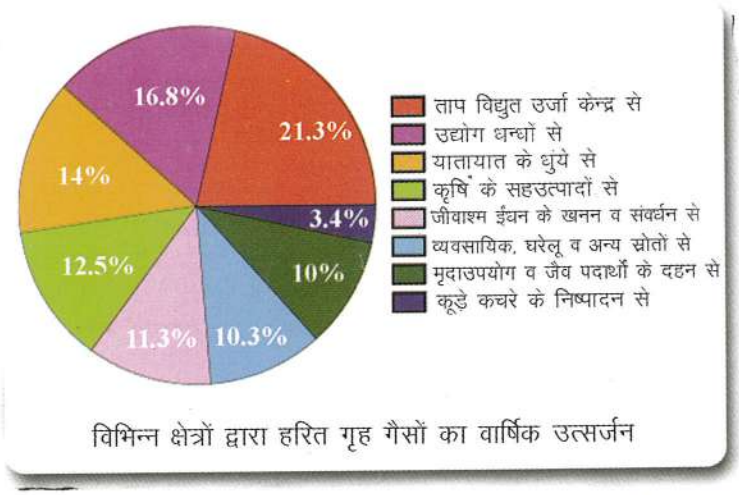

विभिन्न क्षेत्रों द्वारा हरित गृह गैसों का वार्षिक उत्सर्जन

जीवाश्म ईंधन के दहन, दावानल, उद्योग धन्धों आदि ने वायुमंडल में CO_2 की मात्रा को लागातार बढ़ाया है। सामान्यतः CO_2 की बढ़ी मात्रा प्रकाश संश्लेषण के द्वारा संतुलित हो जाती है, किन्तु यदि असंतुलन बनने लगे तो अवरक्त विकिरण (IR Radiation) को अवशोषित करनें की CO_2 की क्षमता के कारण तापमान में वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार CO_2 का बढ़ता संकेन्द्रण तापमान में वृद्धि का प्रमुख कारण है। अठ्ठारहवीं शताब्दी में जब औद्योगीकरण प्रारम्भ हुआ, उस समय CO_2 की वायुमंडल में अनुमानित मात्रा 280 कण प्रति दस लाख (parts per milion) थी। 1959 में यह मात्रा बढकर 316 कण प्रति दस लाख (13% वृद्धि) हो गयी तथा 1998 में यह मात्रा 17% बढ़कर 367 कण प्रति दस लाख जा पहुंची है। इसकी निरन्तर बढती मात्रा ने समस्त विश्व की पारिस्थितिकी को प्रभावित किया है।

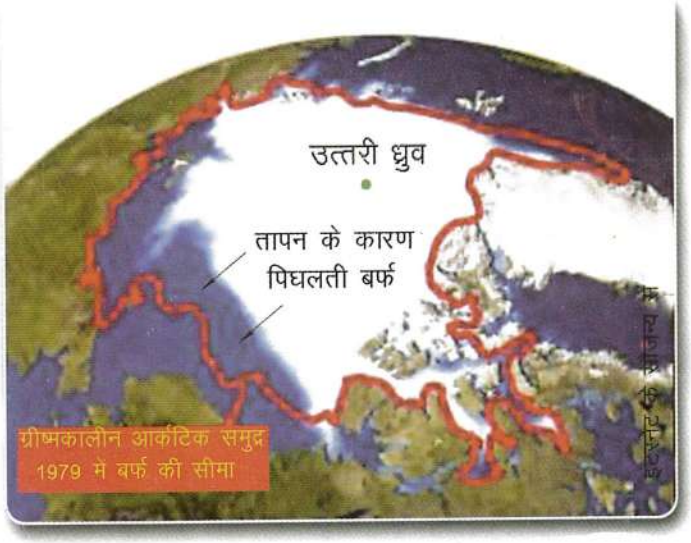

हरित गृह प्रभाव को उत्पन्न करने व भूमण्डलीय ताप में वृद्धि के लिये कार्बन डाई अक्साइड के अतिरिक्त कई अन्य गैसें भी उत्तरदायी हैं। मीथेन (CH_4) जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न एक प्राकृतिक गैस है। वायुमंडल में मीथेन सांद्रण 1.7 कण प्रति दस लाख से प्रतिवर्ष 1.1 के अनुपातिक दर से बढ रहा है। ऊष्मा अवशोषण की दृष्टि से मीथेन, कार्बन डाई अक्साइड की तुलना में 25 गुणा अधिक प्रभावशील है। क्लोरो फ्लोरो कार्बन आदि गैसों (CFC) जिनका प्रयोग वातानुकूलन,

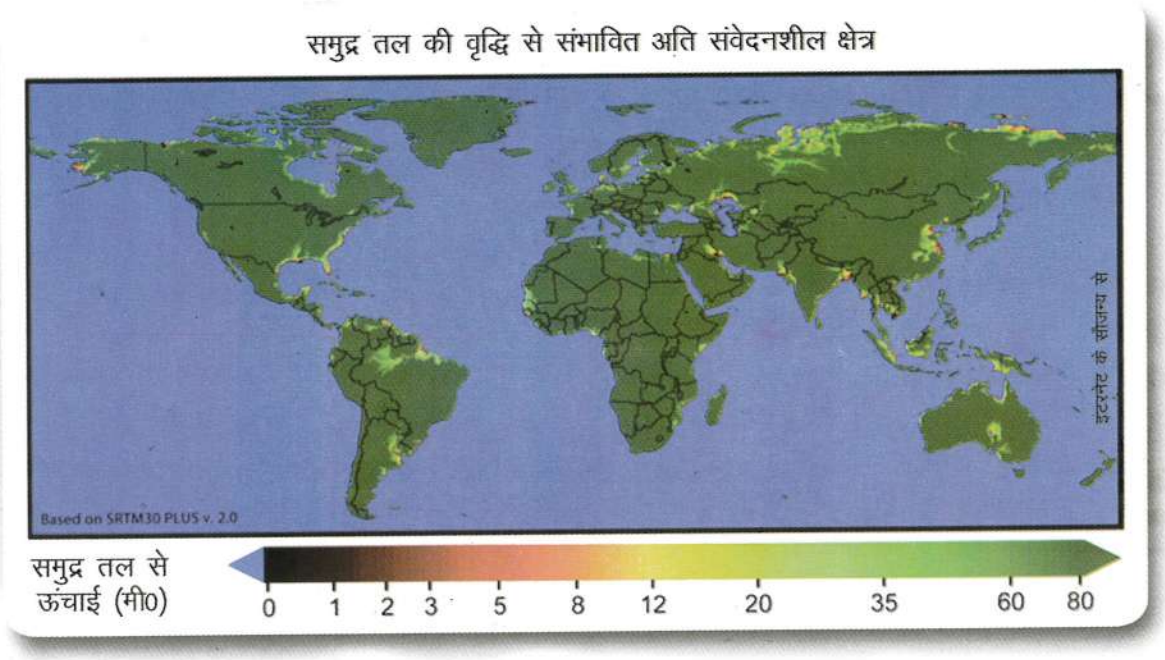

प्रशीतन, अग्निशमन व अनेक औद्योगिक उद्देश्यों के लिये किया जाता है। यह गैस कई प्रकार की होती है–CFC_{11} इत्यादि तथा इनकी ऊष्मा अवशोषण की क्षमता CO_2 की अपेक्षा क्रमशः 17,500 व 20,000 गुणा अधिक है। इसी प्रकार नाइट्रस अक्साइड (NO_2) जो एक पहचान गैस (Trace Gas) के रुप में प्रयोग की जाती है, की मात्रा वायुमंडल में सतत् रुप से बढ़ रही है। ऊष्मा अवशोषण की इसकी क्षमता CO_2 से 250 गुणा अधिक है। समतापमंडलीय ओजोन पृथ्वी को पराबैगनी विकिरणों से बचाती है, परंतु क्षोभमंडलीय ओजोन जलवाष्प के साथ मिलकर एक प्रभावी हरित गृह गैस बनाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि, ये हरित गृह गैसें ऊष्मा का अवशोषण करके वायुमंडल के ताप में वृद्धि कर देती हैं। इस तापवृद्धि के कारण धरती पर अनेक दुष्प्रभाव दिखने भी लगे हैं, तथा आगे के बर्षों में होनें वाले परिवर्तनों का आकलन तो रोंगटे खडा कर देने वाला है। वैश्विक तापन के कारण ध्रुवों पर स्थित हिमचादरें पिघलने लगी है, परिणमतः सन् 2100 तक महासागरीय जलस्तर में 17 सेमी. से 1 मी. तक की वृद्धि का आकलन है। एक आंकड़े के अनुसार सन् 1979 से अब तक उत्तरी ध्रुव की लगभग 20% बर्फ पिघल चुकी है।

बर्फ पिघलने से महासागरों के जलस्तर वृद्धि से उनमें उपस्थित प्रवाल भित्तियों (Coral reefs) का अवनयन हो जायेगा। पूर्वी प्रशान्त महासागर में तो इस पारितंत्र के अवनयन के प्रभाव दिखने भी लगे है। प्रवाल भित्तियों को महासागरों का वर्षाजन्य वन (Rain forest) कहते है, जो जलीय जीवों के जन्म व विकास के लिये आदर्श आवास उपलब्ध कराते हैं। इन प्रवालों का अवनयन समस्त सागरीय जैव जगत को खतरे में डाल सकता है।

विश्व के लगभग 50% लोग समुद्र तटीय क्षेत्रों में निवास करते है। गंगा व ब्रह्मपुत्र के डेल्टा में यह संख्या लगभग 12 करोड है। समुद्र के जलस्तर में यह वृद्धि इनको मूल वासस्थल से हटने पर मजबूर कर देगी क्योंकि इन क्षेत्रों के जल मग्न होने की पूरी आशंका है। पहले ही बंग्लादेश की 30 लाख हेक्टेयर भूमि समुद्र तल से 2 मी. नीचे जा चुकी है। संयुक्त राष्ट्र संघ की जलवायु परिवर्तन पर अन्तराष्ट्रीय प्रतिवेदन (Inter-Governmental Panel on Climate Change; IPCC) ने अपनी 2007 की आख्या (Report) में अनुमान व्यक्त किया है कि, बंगला तटीय क्षेत्र में 2050 तक समुद्र तल में 1 मी. की वृद्धि व 2100 तक लगभग 2 मी. की वृद्धि होगी, व मालदीव जैसे अनेक छोटे तटीय देश

तो गायब ही हो जायेंगे, जो इस सृष्टि के लिए शुभ संकेत नहीं है। इस प्रतिवेदन ने अपनी आख्या में यह भी कहा है कि, पिछले 100 वर्षों में पृथ्वी का तापमान 0.74 डिग्री सेटीग्रेट बढ चुका है व आने वाले 100 वर्षों में यह वृद्धि 1.84 डिग्री सेंटिग्रेट हो सकती है तथा भारत का तापमान 2050 तक 3-5 डिग्री सेंटीग्रेट तक बढ सकता है। जिसका सर्वाधिक असर उत्तर भारत में होगा, अधिक ताप के कारण पश्चिमी घाट व मध्य भारत में वर्षा की मात्रा बढ़ जायेगी। गर्मी में होने वाली वर्षा में लगभग 20% की वृद्धि होगी तथा पंजाब, राजस्थान व तमिलनाडु राज्य में वर्षा कम हो जायेगी। तेज तूफान, वर्षा व सूखा आदि जैसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जायेंगी। ताप वृद्धि से अनेकों जीव–जन्तुओं की प्रजातियां भी नष्ट हो सकती है। डेंगू येलोफीवर, मलेरिया, हैजा व बिल्हैर्जिआ जैसी बिमारियाँ तेजी से फैलेंगी। मलेरिया जो कि गर्म जलवायु की सामान्य बीमारी है, 2050 तक विश्व की 45-60% जनसंख्या को प्रभावित कर सकती है।

जलवायु में होने वाले इस परिवर्तन व अनेकों बढ़ते संकटों से मानव जाति व इस धरती को बचाने की पहल बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ही प्रारम्भ हुयी जब विश्व के जागरुक राष्ट्रों ने इस दिशा में प्रयास प्रारम्भ किया। संयुक्त राष्ट्रसंघ ने सन् 1972 में स्टाकहोम (स्वीडन) में विश्व का पहला अन्तराष्ट्रीय पर्यावरण सम्मेलन आयोजित किया। इसमें भाग लेने वाले 119 देशों ने एक पृथ्वी (One Earth) के सिद्धान्त पर एकमत हो कर संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (United Nations Environment Programme) की शुरुआत की, तथा अन्त में एक पर्यावरण संरक्षण का मताधिकार पत्र (Magna carta) तैयार किया, जो स्टाकहोम घोषण 1972 के नाम से जाना जाता है।

तदुपरांत 5 दिसम्बर 1980 को संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा पर्यावरण कार्यक्रम क्रियान्वयन परिषद की विशेष सम्मेलन के आयोजन का निर्णय लिया गया, जो कि 10-18 मई 1982 को केन्या की राजधानी नैरोबी में आयोजित हुआ। इस सम्मेलन में स्टाकहोम सम्मेलन के सिद्धान्त 1982 में भी उतनें ही प्रासंगिक पाये गये जितने कि वे 1972 में थे। इसी श्रृंखला में ब्राजील के रियो डि जेनेरियों में 03 जून 1992 से 14 जून 1992 तक एक ऐतिहासिक शिखर सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसे पृथ्वी सम्मेलन या रियो भू-सम्मेलन के नाम से भी जाना जाता है। इसमें 182 देशों के प्रतिनिधियों ने एकत्रित होकर पृथ्वी के तापमान में वृद्धि एवं जैव विविधता आदि सम्बन्धी विषयों पर विचार किया व एक आम सहमति के फलस्वरुप ऐजेंडा–21, जलवायु परिवर्तन संधि एवं जैव विविधता संधि अस्तित्व में आयी। 'कार्यक्रम–21 (Agenda-21) जैवमंडल के विनाश को रोकने तथा आर्थिक असमानता को समाप्त करने के उद्देश्य से समग्र विश्व के लिये विकास की कार्य योजनाओं को प्रदर्शित करता था। जलवायु परिवर्तन सन्धि के अन्तर्गत ताप बढ़ाने वाली गैसों के बढते उत्सर्जन से जलवायु परिवर्तन एवं समुद्र स्तरों में वृद्धि के खतरे को रेखांकित किया गया था। इस सन्धि में यह भी आग्रह किया गया था कि विकसित देश ऐसी गैसों के उत्सर्जन को सन् 2000 तक कम करके 1990 के स्तर पर लाने का प्रयास करेंगें, परन्तु इसके पाँच वर्ष बाद हुये द्वितीय पृथ्वी सम्मेलन (5 जून 1997, डेनवर) तक इनमें से किसी भी बिन्दु पर कोई प्रगति नहीं हुयी व विभिन्न राष्ट्रों के बीच मतैक्य न हो सका। हरित गृह गैसों के उत्सर्जन में कमीं लाने के यूरोपीय देशों के प्रस्ताव पर अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया आदि देशों ने अपनी असहमति जतायी परन्तु अमेरिका ने यह आश्वासन दिया कि 1997 में होने वाले क्योटो सम्मेलन तक वह अपनी प्रतिबद्धता का प्रमाण अवश्य दे देगा।

इसके पश्चात 5 दिसम्बर 1997 ई. को क्योटो (जापान) में भूमंडलीय तापन के सम्बन्ध में एक सम्मेलन आयोजित हुआ। यह संयुक्त राष्ट्र संघ के दिशा निर्देशों के अन्तर्गत विश्व के देशों के बीच आम सहमति के द्वारा हरित गृह गैसों के उत्सर्जन को रोकने हेतु एक विश्वव्यापी कदम था। क्योटो सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य था कि, वायुमंडल में हानिकारक गैसों का सान्द्रण उस सीमा तक स्थिर रखा जाये, जिससे जलवायु परिवर्तन के खतरे को टाला जा सके। जून 2008 तक 178 देशों ने इसके प्रति अपनी प्रतिबद्धता जताई है, परन्तु जबकि इसका प्रथम चरण सन् 2012 में समाप्त हो रहा है, विश्व में हरित गृह गैसों का सर्वाधिक उत्सर्जन करने वाले मात्र 60% देशों ने ही इस सन्धि में अपनी सहमति व्यक्त की है। इस दिशा में संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे कुछ विकसित देशों का आचरण बडा ही निराशाजनक रहा है।

हाल ही में वर्ष 2007 में जलवायु परिवर्तन एवं वैश्विक तापन के सम्बन्ध में इण्डोनेशिया के बाली द्वीप में भी एक सम्मेलन का आयोजन हुआ। हरित गृह गैसों के उत्सर्जन को कम करने व क्योटो सन्धि की समाप्ति से पूर्व एक नयी सन्धि को प्रस्तावित करने, जो इन हानिकारक गैसों के उत्सर्जने पर पूर्णतया प्रतिबन्ध लगा कर पृथ्वी को बडे विनाश से बचा सके आदि बिन्दुओं पर विस्तृत चर्चा में विश्व के लगभग 190 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

इन विश्वस्तरीय सम्मेलनों के अतिरिक्त अनेक जागरुक राष्ट्र अपने स्तर से इन गैसों के उत्सर्जन पर प्रतिबन्ध लगाने की चर्चा समय-2 पर करते रहे हैं, परन्तु अभी तक कोई ठोस कदम उठाया नहीं जा सका है। क्योटो इस दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल थी, जिसमें इन हानिकारक गैसों का अधिकतम उत्सर्जन करने वाले विकसित व विकासशील राष्ट्रों से सहयोग की अपेक्षा थी। निजी स्वार्थों व औद्योगिक विकास की अन्धी दौड़ में अग्रसर रहने की अभिलाषा ने सभी प्रयासों को निरर्थक साबित कर दिया है। समय रहते यदि इस हेतु वैश्विक प्रयास न हुआ तो कदाचित हमें अपनी भूल का प्रायश्चित करने का भी मौका न मिले।

वृक्ष से है जीवन का नाता ।
अन्त समय तक साथ निभाता ।।

* * *

प्राण वायु के वृक्ष आधार ।
करें न हम इनका संहार ।।

अमरकण्टक (मध्य-प्रदेश) के अल्प-ज्ञात पारम्परिक औषधीय पौधे

रमेश कुमार एवं सुधांशु शेखर दाश
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इटानगर, शिलांग

एल्पीनिआ केल्केरेटा

विश्व में लगभग 64% आबादी आज भी अपने अच्छे स्वास्थ्य के लिये पारम्परिक देशी दवाईयों तथा जड़ीबूटियों पर निर्भर है जबकि भारत की लगभग 85% ग्रामीण आबादी आज भी अपनी बिमारियों से निजात पाने के लिये विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधों पर निर्भर है। ग्रामीण समुदाय द्वारा अपनाई हुई घरेलू उपचार पद्धति अचूक ही नही बल्कि आर्युवेदिक भी होती है। आज के समय में इस पारम्परिक ज्ञान को जिन्दा रखना हमारे लिये सबसे बड़ी चुनौती है क्योकि इसका कोई लिखित दस्तावेज नहीं है। यह तो बस मौखिक रूप मे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को सिखाया जाता है। पेड़-पौधों के अंधाधुंध दोहन, वनों का विनाश और ग्रामीण जीवन-यापन के बदलते परिवेश की वजह से पेड़-पौधो की पौराणिक कथा व ज्ञान विलुप्ति के कगार पर है। इसलिये इसका अध्ययन कर इसे दस्तावेज के तौर पर लिखने की जरूरत है जिससे भविष्य में उपयोगी सिद्ध हो।

अमरकण्टक मध्य प्रदेश के शहडोल जिले में सतपुड़ा पठार पर समुद्र तल से 100 मी. की ऊंचाई पर 81° 46" पूर्व तथा 22°41' उत्तर में स्थित है। यह क्षेत्र पूर्वी मेकाल रेज के करीब है तथा शहडोल से 104 किमी. की दूरी पर है। इस क्षेत्र की जलवायु मानसूनी है तथा यहां का औसत तापमान 21° से 31° सेग्रे., आपेक्षिक आर्द्रता 50 से 85% एवं वार्षिक वर्षा दर 1300-1900 मिमी. के बीच रहती है। यहां के वन सह-उष्णकटिबन्धिय पर्वतीय वनों की श्रेणी मे आते हैं। इस क्षेत्र की अर्थव्यवस्था कृषि एवं वानिकी पर आधारित है।

यह क्षेत्र प्रदेश के घने जैव विविधता केंद्रों में से एक है। यहां पर विभिन्न आदिवासी जन-जातियां निवास करती है जिनमें बैगा, गौड़, खैरिया एवं पंखा प्रमुख है। प्रत्येक आदिवासी समुदाय की अपनी सभ्यता एवं परम्परा है, वे अपने जीवन-यापन ही नहीं अपितु अपनी बिमारियों से निजात पाने के लिये वन-उत्पादों का प्रयोग करते हैं।

बोर्हेविआ डिफ्यूजा

प्रस्तुत लेख में स्थानीय आदिवासियों तथा स्थानीय औषधि बनाने वाले वैद्य से अध्ययन कर वनोषधि प्रयोग का पारम्परिक माध्यम एवं चिकित्सा पद्धति का पता लगाने का प्रयास किया गया है। पौधों के औषधीय प्रयोग की जानकारी, स्थानीय आदिवासियों से सामान्य बिमारियो के संदर्भ में, एक

सेंटेला एशिएटिका

डेटुरा इनोक्सिया

टर्मिनेलिआ चिबुला

हेडिकिअम कोरोनेरिअम

राउवोल्फिआ सर्पेंटिना

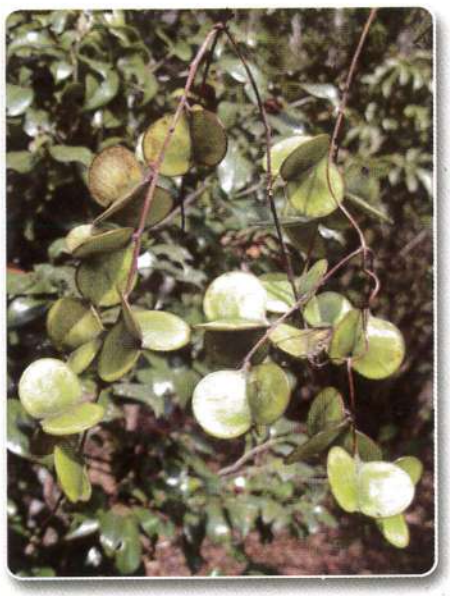

डेटुरा इनोक्सिया

प्रश्नावली बनाकर प्रत्यक्ष ज्ञान की समीक्षा ग्रामीण हिस्सेदारी विधि द्वारा की गयी जिसमें समूह बनाकर प्रश्न पूछे गये तथा सभी को उत्तर देने का बराबर मौका दिया गया।

यह सभी जानकारियां लेखकों द्वारा भारतीय गणराज्य वनस्पति उद्यान में पुनर्स्थापन हेतु अमरकण्टक से पौध अधिप्राप्ति के दौरान एकत्रित की गयी है तथा ये सभी पौधे भारतीय गणराज्य वनस्पति उद्यान में संरक्षित हैं। प्राप्त जानकारियों को उक्त बिमारियों में पौधों के प्रयोग के प्रत्युत्तर के आधार पर तीन भागों (प्रभावी, सामान्य एवं कम प्रभावी) मे बांटकर स्थानीय वैद्य से प्राप्त जानकरियों से परस्पर मिलान कर निम्न निष्कर्ष निकाला गया :

पारम्परिक चिकित्सा में औषधीय पौधों के प्रभावी प्रयोग में अमरकण्टक के आदिवासियों की हिस्सेदारी

क्रम सं.	पौधे का वनस्पतिक नाम	बिमारी जिसमें प्रयोग किया गया (पारम्परिक चिकित्सा में)	आदिवासियो की हिस्सेदारी				स्थानीय वैद्य की हिस्सेदारी	विचार एवं टिप्पणी
			बैगा	गौड.	खैरीया	पंखा		
1.	एकाइरेन्थस एस्परा	मिर्गी	प्रभावी	सामान्य	प्रभावी	ज्ञात नही	ज्ञात नहीं	पौधा: दांत दर्द व माइग्रेन में
2.	एलपिनिया केलकेराटा	गले की खराश	प्रभावी	सामान्य	प्रभावी	सामान्य	ज्ञात नही	पत्तियां : मुँह की ताजगी मे
3.	बोरहेविया डिफयूजा	निम्न रक्तदाब	सामान्य	प्रभावी	कम प्रभावी	सामान्य	ज्ञात नही	जड़ लेप : पागलपन में
4.	कसेरिया इलिपटिका	आंत का अल्सर व गले की खराश	प्रभावी	प्रभावी	प्रभावी	प्रभावी	ज्ञात	बहुत कम प्रयोग में
5.	सेंटिला एशियाटिका	सिफलिस	प्रभावी	प्रभावी	ज्ञात नहीं	ज्ञात नहीं	ज्ञात नहीं	पत्तियां : शीतलता के लिये
6.	कोरोपिता गुवेन्सिस	धार्मिक अभिधारणा	-	-	-	-	-	-
7.	धतूरा इनोकसिया	गठिया, जोड़ों की सूजन एवं लकवा	प्रभावी	प्रभावी	प्रभावी	प्रभावी	ज्ञात नही	पत्तियां व बीज : दमा में
8.	डाइस्कोरिया अपोजिटिफोलिया	सिर दर्द व माइग्रेन	प्रभावी	प्रभावी	सामान्य	सामान्य	ज्ञात	कन्द : गर्भ-पात के लिये
9.	युरेल फेरोकस	स्वप्न दोष या शीघ्रपतन	सामान्य	प्रभावी	सामान्य	प्रभावी	ज्ञात	भुने बीज : खाये जाते हैं
10.	इवोलवुलस इलसीनोइडस	चर्म रोग एवं मानसिक बलवर्धक	प्रभावी	प्रभावी	प्रभावी	प्रभावी	ज्ञात नहीं	पौधे का काढ़ा : मानसिक बलवर्धक
11.	हेडिकियम कोरोनेरियम	नेत्र रोग	प्रभावी	प्रभावी	प्रभावी	सामान्य	ज्ञात नही	राइजोम : गठिया व जोड़ों की सूजन में
12.	काइजेलिया पिनेटा	गुर्दे की पथरी, बवासीर व पेट-रोग	सामान्य	ज्ञात नहीं	प्रभावी	सामान्य	ज्ञात	फल का चूर्ण

क्रम सं.	पौधे का वनस्पतिक नाम	बिमारी जिसमें प्रयोग किया गया (पारम्परिक चिकित्सा में)	आदिवासियो की हिस्सेदारी				स्थानीय वैद्य की हिस्सेदारी	विचार एवं टिप्पणी
			बैगा	गौड.	खैरीया	पंखा		
13.	मेसूआ फेरिया	बवासीर	सामान्य	ज्ञात नहीं	प्रभावी	प्रभावी	ज्ञात	बहुत कम प्रयोग में
14.	फाइलेन्थस इमबलिका	श्वेत प्रदर रोग	प्रभावी	प्रभावी	सामान्य	कम प्रभावी	ज्ञात	रेचक के रूप में
15.	प्लेमबेगो जिलेनिका	श्वेत कुष्ठ एवं कुष्ठ रोग	सामान्य	प्रभावी	सामान्य	कम प्रभावी	ज्ञात	चर्म रोग में
16.	प्रोगामिया पिनेटा	गठिया एवं जोड़ो की सूजन	सामान्य	प्रभावी	प्रभावी	सामान्य	ज्ञात	अकसर प्रयोग में
		चर्म रोग	ज्ञात नहीं	सामान्य	ज्ञात नहीं	ज्ञात नहीं	ज्ञात	—
17.	प्यूरेरिया टयुबरोसा	कामोद्दीपक औषधि	प्रभावी	प्रभावी	प्रभावी	प्रभावी	ज्ञात	बलवर्धक के रूप में
18.	राउवोलफिया सर्पपेटिना	उच्च रक्तदाब	सामान्य	प्रभावी	प्रभावी	सामान्य	ज्ञात नहीं	क्षेत्र में सबसे ज्यादा दोहन
19.	स्टर्कुलिया विल्लोसा	कामोद्दीपक औषधि	प्रभावी	प्रभावी	प्रभावी	प्रभावी	ज्ञात	बलवर्धक के रूप में तथा क्षेत्र में बहुतायत दोहन
20.	टर्मिनेलिया चिबुला	दमा	सामान्य	प्रभावी	प्रभावी	ज्ञात नहीं	ज्ञात	रेचक के रूप में

पर्यावरण को डस रहा
प्रदूषण का सर्प विकराल।
पेड़ लगाओ पौधे उगाओ
बनाओ इसे खुशहाल।।

जैव विविधता – एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

सुशील कुमार सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

जैव विविधता प्रदर्शित करता छायाचित्र

पृथ्वी पर जीवन बहुत ही सीमित क्षेत्र में है। हमें जिन जीव जंतु एवं वनस्पतियों के बारे में जानकारी उपलब्ध है वह तक सूक्ष्म भूभाग जो कि उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों से लेकर ध्रुवों तक फैला हुआ एवं भूमध्यरेखीय क्षेत्र में संकेद्रित है। यहाँ का वातावरण जो कि तापमान, प्रकाश, पोषक तत्वों, पानी की उपलब्धता आदि में निर्धारित होताहै जीवन के लिए उपयुक्त आधार प्रदान करता है। इस जीवभूवृत्त में करोड़ो जीव जन्तु एवं वनस्पतियां जो कि परस्पर एक दूसरे से भिन्न हैं और पर्यावरण के क्रमिक विकास की उपज हैं जातियां कहलाती है। ये सभी जातियां स्वयं को स्वस्थापित नहीं कर सकती हैं बल्कि इनमें एक स्वस्थ आदान प्रदान होता है जो इनके स्थापन में सहायक है। उदाहरण स्वरूप शैवाक (Lichen) जिनका निर्माण शैवाल (Algae) एवं कवक (Fungi) के संयोजन से होता है। इनमें से दोनो (कवक एवं शैवाल) परस्पर एक दूसरे को स्थापन में सहायता करते हैं शैवाल भोजन का निर्माण करती है वही कवक आधार एवं सुरक्षा प्रदान करती है।

इस पृथ्वी पर उपस्थित जैविक संसाधन मानव जाति के लिए न केवल आर्थिक व सामाजिक रूप से आवश्यक, बल्कि अनिवार्य भी हैं। फलतः वर्तमान में इस तथ्य को बढ़ते क्रम में मान्यता मिल रही है कि इस सृष्टि में विद्यमान जैव विविधता एक वैश्विक संपदा है जो कि समकालीन एवं भविष्य में आने वाली पीढ़ियों के लिए महत्वपूर्ण हैं। जैव विविधता संधि (Convention on Biological diversity) 1992 के अनुसार जैव विविधता का तात्पर्य समस्त जीवों तथा पर्यावरणीय संकुलों जिनके वे अंग है में पायी जाने वाली विविधता से है। इनमें अन्य जीवों के साथ-साथ थल, समुद्र, व अन्य जलीय परितंत्रों में पाए जाने वाले जीव शामिल हैं : इसके अंतर्गत प्रजातियों के अन्दर, प्रजातियों के बीच तथा परितंत्रों के बीच पायी जाने वाली विविधताएं शामिल हैं।

जैव विविधता के तीन रूप हैं : (अ) अल्फा विविधता (α diversity)–इसके अंतर्गत वे सभी जीव जन्तु व वनस्पतियां आती हैं जो कि किसी एक निश्चित आवास या स्थान पर पायी जाती हैं। (ब.) बीटा विविधता (β diversity) इसके अन्तर्गत वे सभी जीव जन्तु व वनस्पतियां आती हैं जो कि एक क्षेत्र के विभिन्न आवासों या स्थानों पर पायी जाती हैं। (स) गामा विविधता (γ diversity) इसके अंतर्गत वे सभी जीवजन्तु व वनस्पतियां आती हैं जो कि एक भौगोलिक

क्षेत्र के विभिन्न आवासों में पायी जाती हैं। दूसरे शब्दों में जैव विविधता निम्न रूपों में मिलती है :

(1) आनुवांशिक विविधता (Genetic diversity) : यह जीव जन्तुओं एवं वनस्पतियों की एक या अनेकों जातियों के सदस्यों की समस्त आनुवांशिक विभिन्नताओं का योग है।

(2) जातीय विविधता (Species diversity) : यह पृथ्वी पर पाए जाने वाले जीव जन्तुओं एवं वनस्पतियों की समस्त जातियों, जो कि परस्पर भिन्न हैं, का योग है।

(3) पारितंत्र विविधता (Ecosystem diversity) : इसके अन्तर्गत वृहद भौगोलिक क्षेत्र आते हैं जिनमें विभिन्न तरह के आवास, जैविक समुदाय और पारिस्थिकीय प्रक्रिया होती हैं।

बंगाल टाइगर– वन पारितंत्र की एक प्रभावशील जाति

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य तरह की जैव विविधताएं भी हैं जिनको कि किसी जाति या पारितंत्र के आधार पर भी परिभाषित किया जा सकता है जैसे – कृषि विविधता (Agrodiversity) स्थानिक जैव विविधता (Endemic biodiversity), आस्थानिक जैव विविधता (Introduced biodiversity) सूक्ष्मजैवकीय विविधता (Microbial diversity) इत्यादि। यदि जैव विविधता के संदर्भ में प्रायः प्रयुक्त होने वाले प्रमुख शब्दों का उल्लेख करें तो हम जातीय़ प्रधानता (species dominance), प्रभावशाली जाति (Keystone species), जातीय बहुलता (species richness) आदि प्रमुख रुप से पाते हैं।

जातीय प्रधानता (species dominance) : यह जीव जन्तुओं या वनस्पतियों की एक या अनेको जातियों का समुदाय है जो कि उस जगह के वातावरण को अपने अनुकूल कर वहाँ की वनस्पतियों या पशुवर्गो का प्रतिनिधित्व करती है।

प्रभावशील जाति (Keystone species) : जीव जन्तुओं या वनस्पतियों की वह जाति जिसकी उस जगह प्रधानता हो या न हो लेकिन अन्य पर नियंत्रणात्मक प्रभाव डालती है, प्रभावशील जाति कहलाती हैं।

जातीय बहुलता (species richness) : यह किसी एक निश्चित आवास या स्थान पर पाए जाने वाले जीव जन्तुओं एवं वनस्पतियों की समस्त जातियों का योग है।

जैव विविधता पर नकारात्मक प्रभाव डालती आस्थापित लैंटाना प्रजाति

यदि हम जैव विविधता पर प्रभाव डालने वाले कारकों का उल्लेख करें यह उंचाई एवं अक्षांश दोनों के चढ़ाव व उतराव द्वारा निर्धारित होती है। चिड़ियों, स्तनधारी जन्तुओं, मछलियों, सरीसृपों और वृक्षों की संख्या भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर जाने पर अक्षांशों के अनुसार घटती है। महाद्वीपों की तुलना में समुद्रों में जहाँ भोज्य पदार्थो की बहुलता तथा वातावरण स्थायी रहता है जीव जन्तुओं की बहुतायत होती है। जहाँ एक ओर पर्वतीय क्षेत्र भौगोलिक विविधता

के कारण मैदानी क्षेत्रों की तुलना में अधिक जातीय विविधता रखते हैं वहीं दूसरी ओर प्रायद्वीपीय क्षेत्र अपने पास के महाद्वीपीय क्षेत्रों से कम प्रजातियां धारण करते हैं।

वर्तमान समय में जैव प्रजातियों व पारितंत्र पर जितना खतरा मड़रा रहा है वैसा भूतकाल में कभी नही रहा। मानव द्वारा इस बहुमूल्य प्रकृति से छेड़छाड़ के कारण जैव प्रजाति का खतरनाक रूप लेता जा रहा है एवं इनकी संख्या घटती जा रही हैं। जैव विविधता का ह्रास करने वाले प्रमुख कारण निम्नवत् हैं :

मेघालय के जंगलों में फैली आग से जैव विविधता के होते ह्रास को दर्शाता एक छाया चित्र

(1) भूकम्प, सूखा, बाढ़ आदि प्राकृतिक विपदायें।
(2) तीव्र गति से उगने वाली विदेशी जातियों का देशी जातियों के बीच आकर तेजी से उगना।
(3) परागण करने वाले साधनों, कारकों या कर्मकों की कमी होना।
(4) रोगों का फैलना।
(5) पौधों एवं जन्तुओं का अत्यधिक उपयोग, विशेषकर एक ही जाति के पौधों या जन्तुओं का शिक्षा, उद्योग आदि के लिए उपयोग करते रहना।
(6) अतिचारण एवं अनियंत्रित शिकार के कारण पौधों एवं जन्तुओं की संख्या में अत्यधिक कमी आना।
(7) कृषि क्षेत्र का विस्तार, खेतों को बदलना तथा कृषि में उपयोग के लिए केवल कुछ जातियों का चयन तथा अन्य की उपेक्षा करना।
(8) वनो की कटाई, वन उन्मूलन, प्राकृतिक आवासों में परिवर्तन अथवा विनष्टीकरण आदि के द्वारा पारिस्थितिक तंत्रों के संतुलन की उपेक्षा करना।
(9) नगरीकरण, औद्योगीकरण, एक ही जाति के जीवों की संख्या बढ़ाकर जिसमें मनुष्य भी सम्मिलित है (जनसंख्या वृद्धि) आदि के द्वारा प्रदूषण फैलाना तथा पारिस्थितिक तंत्र को अन्य जीव जन्तुओं या वनस्पतियों के आवास के अयोग्य बनाना।
(10) वैश्विक जलवायु परिवर्तन : बढ़ता वायु प्रदूषण तथा हरितगृह गैसों का अत्याधिक उपयोग वैश्विक पारितंत्र के विनाश का कारण बनता जा रहा है। आने वाली शताब्दी में मानव द्वारा हरित गृह गैसों के अनियंत्रित उपयोग के कारण वैश्विक तापमान 1-3 डिग्री से. बढ़ सकता है जिसके फलस्वरूप समुद्र तल 1-2 मी. उठ सकता है। अनुमान है कि तापमान 1^0 से. बढ़ने से स्थलीय जीवों की सहनशीलता की सीमा परिवर्तित हो सकती है और वे 125 किमी. ध्रुवों की ओर एवं 150 मी. पहाड़ों की ओर लम्बवत् खिसक सकते हैं।

जैव विविधता संरक्षण के उपाय निम्न हैं :

(1) वनों की कटाई पर पूर्णरूप से प्रतिबंध लगाना चाहिये।
(2) तीव्र गति से उगने वाली जातियों कें उन्मूलन का उपाय करना चाहिये।
(3) जंगली पशुओं के आवासों को सुरक्षित करना चाहिये एवं जंगलों को आग से बचाने के साधन अपनाने चाहिये।
(4) वनों के पारिस्थितिक तंत्र को संतुलित रखने के लिये वन्य प्राणिओं के शिकार पर रोक लगानी चाहिये।
(5) जहां पेड़ो को काटना अति आवश्यक हो वहाँ पहले से ही नये वृक्ष लगाना चाहिये।
(6) वनों के अन्दर व्यक्तियों के प्रवेश पर नियंत्रण तथा धूम्रपान, आग लगाए जाने पर प्रतिबंध होना चाहिये।
(7) वन्य जीवों, कम से कम संकटग्रस्त जातियों के अत्यधिक तथा आवांछित उपयोग पर रोक लगानी चाहिये।

(8) संरक्षित क्षेत्र जैसे राष्ट्रीय उद्यान, वन्यजीव अभयारण्य, जैवमंडल, प्राकृतिक स्थल आदि की स्थापना करनी चाहिये।

(9) संकटग्रस्त तथा दुर्लभ जन्तुओं एवं वनस्पतियों को संरक्षित करने के लिये वानस्पतिक उद्यानों, शोध संस्थानों तथा जीन बैंको का निर्माण करना चाहिये।

(10) बढ़ते प्रदूषण पर नियंत्रण लगाना चाहिये। ग्लोबल वार्मिंग की कारक गैसों सी. एफ. सी. आदि का उपयोग बंद करना चाहिये तथा उनके बदले अन्य गैसें जो हानिकारक न हों का उपयोग करना चाहिये।

(11) संरक्षण के लिए स्पष्ट तथा निश्चित कानून बनाने चाहिए। इस संदर्भ में वैश्विक स्तर पर प्रयास हुए हैं और ICUN,WWF, जैसी संस्थाओं की स्थापना हुई है। समय समय पर विभिन्न देशों के बीच पर्यावरण एवं जैव विविधता संरक्षित करने के लिए अनेकों सम्मेलन व संधियां जैसे मानव पर्यावरण सम्मेलन, स्टाकहोम, 1972 नैरोबी घोषणा पत्र, 1982 वियना संधि, 1985 मांट्रियल संधि, 1987 संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण एवं विकास सम्मेलन (पृथ्वी सम्मेलन) 1992 आदि हुई है।

भारत में जैव विविधता का वर्तमान स्वरूप एवं उसका संरक्षण :

भारत विभिन्न प्रकार की जलवायु एवं भौगोलिक परिस्थितियों के कारण विश्व के 17 प्रमुख जैव विविधता वाले क्षेत्रों मे से एक है तथा विश्व के मान्य 35 ''उतप्त स्थलों'' में से तीन–हिमालय, इन्डो-बर्मा एवं पश्चिमी घाट भारत में ही है। अनुमानत : देश की 2 प्रतिशत् भूमि पर विश्व की लगभग 7 प्रतिशत् जैव विविधता पायी जाती है। हमारे देश में पौधों की लगभग 45,000 जातियां पायी जाती है जिनमें से लगभग 17,500 आवृतबीजी, 64 अनावृतबीजी, 1200 पर्णोद्भिद, लगभग 2,500 हरितोद्भिद, 2,180 शैवाक, 14,500 कवक, 6,500 शैवाल एवं 850 बैक्टीरिया व वाइरस है। हमारे देश में ज्ञात जन्तुओं की संख्या लगभग 77,452 है, जिनमे 372 स्तनधारी, 1,228 पक्षी, 428 सरीसृप, 204 उभयचर, 2,546 मछलियां, 57,525 कीट, 5,042 मौलस्क तथा 10,107 प्रोटाजोआ एवं अन्य हैं।

इस अतुलनीय जैव विविधता, जो कि मानव के सामाजिक तथा आर्थिक विकास एवं पर्यावरणीय दृष्टिकोण से न केवल आवश्यक बल्कि अनिवार्य भी हैं, के संरक्षण की ओर हमारे देश में स्वतंत्रता के बाद अधिक जोर दिया जाने लगा। 1950 में केन्द्रीय कृषि मंत्री श्री के एम. मुंशी ने वन संपदा के संरक्षण के लिये एक अभियान की शुरूवात की जिसे 'वन महोत्सव' की संज्ञा दी। औपचारिक रूप से देश में वन महोत्सव की परंपरा तभी से चली आ रही है। संसद द्वारा 12 मई 1952 को 'राष्ट्रीय वन नीति' पारित की गयी जिसके अनुसार स्वस्थ वातावरण के लिए देश का कम से कम 33.3 प्रतिशत क्षेत्रफल वनाच्छादित रहना चाहिए। 1954 में असम राइनोसेरास के संरक्षण के लिए 'असम राइनोसेरास संरक्षण अधिनियम बना। 1969 में वर्ल्ड वाइल्डलाइफ फंड, इण्डिया की स्थापना हुई जिसका मुख्यालय मुम्बई में स्थित है। इस संस्था की सहायता से भारत में बहुत सी परियोजनाओं पर कार्य हुआ है। यह संस्था हमारे देश में चल रही 'प्रोजेक्ट टाइगर' को प्रमुखता से सहायता कर रही है। वन्य प्राणियों की सुरक्षा के लिए 1972 में 'वन्य प्राणी संरक्षण अधिनियम' पारित किया जा चुका है जिसके अंतर्गत किसी भी वन्य प्राणी को मारने पर भारी दंड की व्यवस्था है। भारतीय 'वन्य जीवन संरक्षण नीति' 1972 में संकटग्रस्त जातियों के पूर्ण संरक्षण की अनुशंसा की गयी है। 23 मार्च 1974 को जल प्रदूषण नियंत्रण अधिनियम बनाया गया जिसे जनवरी 1982 में पर्यावरण विभाग से संबद्ध कर दिया गया। 1981 में 'वायु प्रदूषण नियंत्रण अधिनियम' बनाया गया जिसे लागू करने के लिए 'केन्द्रीय वायु प्रदूषण रोकथाम नियंत्रण बोर्ड' गठित किया गया। 1980 में वन संरक्षण अधिनियम' पारित किया गया है। 1 नवंबर 1980 को भारत की केन्द्रीय सरकार ने पर्यावरण विभाग की अलग से स्थापना की जो कि कालांतर में पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के रूप में तब्दील हुआ। केन्द्र की ही भांति राज्य सरकारों ने भी पर्यावरण विभागों की स्थापना की है। अलग से पर्यावरण विभाग स्थापित करने वाला भारत विश्व का सर्वप्रथम देश है। वर्ष 1999 में 'पर्यावरण सुरक्षा एवं जैव विविधता संरक्षण अधिनियम' और उसका संशोधित रूप 2001 में पारित हुआ। 2002 में 'जैव विविधता संरक्षण अधिनियम' ओर उसका संशोधित रूप 2004 में पारित हुआ। 2003 में 'राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण की स्थापना की गयी जो कि प्रमुख रूप से जैव विविधता से

संबंधित मसलों पर कार्य कर रहा है।

आज देश में 96 नेशनल पार्क (क्षे.38,029 वर्ग कि.मी.), 510 वन्यजीव अभयारण्य (क्षे. 118,640 वर्ग कि.मी.), 29 टाइगर रिजवर्स् (क्षे. 38,620 वर्ग कि. मी.), 14 बायोस्फियर रिजवर्स् (क्षे. 58,647 वर्ग कि.मी.), 3 कंजर्वेसन रिजवर्स् (. 42 वर्ग कि.मी.), 2 कम्यूनिटी रिजवर्स् (क्षे. 16 वर्ग कि.मी.) स्थापित है जो देश के कुल क्षेत्रफल के लगभग 6.2 प्रतिशत क्षेत्रफल पर विस्तारित हैं ओर प्राकृतिक रूप से जैव विविधता को संरक्षण प्रदान कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त देश में लगभग 150 बॉटेनिकल गार्डेन की श्रृंखला अनेको विरल, संकटग्रस्त, औषधीय महत्व वाली तथा अन्य वनस्पतियों को एक्स सीटू संरक्षण प्रदान कर रही है।

भारत में जैव विविधता के संरक्षण पर शोधरत प्रमुख शोध संस्थानों में निम्नलिखित प्रमुख संस्थान हैं जो जन्तुओं एवं वनस्पतियों के विभिन्न आयामों पर शोधकार्य कर रहे हैं।

1 बोटेनिकल सर्वे ऑफ इंडिया, कोलकाता
2 जुलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, कोलकाता
3 वाइल्डलाइफ इन्सटीट्यूट ऑफ इंडिया, देहरादून
4 फारेष्ट रिसर्च इन्सटीट्यूट, देहरादून
5 इन्सटीट्यूट आफ हिमालयन बायोरिसोर्स टेकनोलोजी, पालमपुर
6 नेशनल बोटैनिकल इन्सटीट्यूट, लखनऊ
7 सेण्ट्रल एरिड जोन रिसर्च इन्सटिट्यूट, जोधपुर
8 केरला फारेस्ट रिसर्च इन्सटीट्यूट, पीची
9 ट्रापिकल बोटैनिक गार्डेन एंड रिसर्च इन्सटिट्यूट, पैलोड
10 गोबिंद वल्लभ पंत इन्सटीट्यूट आफ हिमालयान एनवायरमेंट डेवेलपमेंट, कोसी कटारमल, अम्लोरा
11 लॉइड बोटैनिक गार्डेन, दार्जिलिंग
12 सेण्ट्रल मैरिन फिसरीज रिसर्च इन्सटिटयूट, कोची
13 इंडियन एग्रीकल्चर रिसर्च इन्सटीट्यूट, नई दिल्ली
14 सेण्ट्रल ड्रग रिसर्च इन्सटीट्यूट, लखनऊ
15 सेण्ट्रल इन्सटीट्यूट आफ मेडसिनल एंड एरोमैटिक प्लान्ट, लखनऊ
16 फ्रूट रिसर्च इन्सटीट्यूट, सबौर, भागलपुर
17 नेशनल ब्यूरो आफ प्लान्ट जेनेटिक रिसोर्सेस, नई दिल्ली
18 नेशनल ब्युरो आफ एनीमल जेनेटिक रिसोर्सेस, करनाल
19 नेशनल ब्यूरो आफ फिश जेनेटिक रिसोर्सेस, लखनऊ आदि।

इसके अतिरिक्त भारत सरकार द्वारा अनेकों विश्वविद्यालयों को वित्तीय सहायता दी जा रही है और वे जैव विविधता पर शोध कार्य कर रहे हैं। कुछ गैर सरकारी संस्थान जैसे बाम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी, मुम्बई, मालाबार नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी, कालीकट तथा अन्य संस्थान भी जैव विविधता के संरक्षण के लिए प्रयासरत हैं।

आज जैव विविधता संरक्षण के परिप्रेक्ष में सबसे ज्यादा अहम तथ्य यह है कि आम लोगों में इसको लेकर जागरूकता बढ़े और लोग स्वतः ही इस दिशा में अग्रसर हों। वैश्विक स्तर पर, सारे देश एकजुट होकर कार्य करें तथा जैव विविधता संरक्षण के लिए विकसित नई तकनीकों का आपस में आदान प्रदान करें। सारे देशों को पर्यावरण एवं जैव विविधता का ह्रास करने वाले कारकों को बिना किसी भेदभाव के एक साथ मिलकर न्यूनतम करने का प्रयत्न करना चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जीन बैंक श्रृंखलाओं, मैरीन पार्को आदि की स्थापना की जाय। इसके साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि जैव विविधता संरक्षण के उपायों का निर्धारण करते समय मानव के सामाजिक व आर्थिक विकास की ओर पर्याप्त ध्यान दिया जाय तभी वांछित लक्ष्यों की पूर्ति संभव है।

मलेरिया के निदान में सहायक औषधीय पौधे

बिपिन कुमार सिन्हा एवं रमेश कुमार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

उष्णकटिबन्धीय क्षेत्र में मलेरिया ज्वर को महामारी के रूप में जाना जाता है। हर वर्ष असंख्य लोग इस रोग के शिकार होते है, और उनमें से न जाने कितने काल कवलित हो जाते हैं। यह एक बहु प्रचलित, विनाशक और विस्तृत रूप से फैलने वाली बीमारी है। प्राचीन काल से ही हमारे ऋषि-मुनि इस ज्वर का निदान जडी-बूटियों के द्वारा करते थे तथा वे मलेरिया रोग से भली-भाँति परिचित थे। प्राचीन शास्त्रीय आयुर्वेदिक **वाङ्मय** में इसके लक्षणों, निदान, चिकित्सात्मक वैशिष्टियों एवं इसके प्रबन्धन से सम्बन्धित वर्णनों का विस्तृत उल्लेख **विषम ज्वर** के अन्तर्गत किया गया है। मलेरिया परजीवियों में, औषधियों के प्रतिरोध एवं स्थिति की गम्भीरता को देखते हुये अगर प्राचीन युग में प्रचलित औषधिय पौधों का प्रयोग आज पुनः किया जाय तो इस रोग से आसानी से निदान पाया जा सकता है। प्रस्तुत लेख मे कुछ औषधीय पौधों की जानकारी दी जा रही है जो इस ज्वर के निदान में उपयोगी हो सकती है तथा जिन्हें आज भी आदिवासी अपने उपयोग में ला रहे हैं।

1. **सीजलपीनिया बौन्डक :** (करन्ज)
कुल-सीजलपीनियेसी

यह एक लतानुमा वृक्ष है। इसकी शाखा रोएदार तथा काँटे युक्त एवं पत्तियां संयुक्त होती है। डन्ठल (रेचिस) कंटीला होता है। पुष्प पीले रंग के एवं फल अण्डाकार, कांटेयुक्त होता हैं।

फूल एवं फल : जुलाई से जनवरी

उपयोग : पौधे का बीज मलेरिया रोग में उपयोगी है। इसके बीज को पीसकर एवं पानी में उबालकर उपरोक्त काढे मरीज को दिन में 3 से 4 बार पिलाने से ज्वर कम हो जाता है।

सीजलपीनिया बौन्डक

2. **टिनोस्पोरा कार्डियोफोलिया :** (गुर्च)
कुल – मेनीर्स्पमेसी

यह लालायुक्त पौधा है जिसकी शाखा नीचे की ओर झुकी तथा निलम्बी होती है। जड़ गूदेदार होती हैं। पत्तियां हृदयाकार लिये होती है। पुष्पक्रम गुच्छ में होते हैं, फल पकने पर गहरे लाल रंग का होता है।

फूल एवं फल : अगस्त से फरवरी

उपयोग : पौधे की शाखाओं (तना) को पानी मे उबालकर ठंडा कर लेते है तथा उपरोक्त काढ़े को मलेरिया पीड़ित मरीज को दिन में 3 से 4 बार आधा-आधा कप पिलाने से ज्वर कम हो जाता है तथा दर्द में भी राहत मिलती है।

3. **सीसेम्पीलास पेरिरा :** (अकन्दी)
कुल - मेनीर्स्पमेसी

यह लतानुमा बहुवर्षीय शाक है। इसकी पत्तियाँ अण्डाकार तथा नीचे की तरफ रोएदार होती है। मादा पुष्पक्रम, नर पुष्पक्रम की तुलना मे बड़ा होता है। पुष्प हरित-श्वेत वर्ण के होते हैं, फल लाल रंग का होता है।

फूल एवं फल : जून से जनवरी

उपयोग : इस पौधे के जड़ व तने को पानी मे उबालकर एवं ठंडा करके उपरोक्त काढ़े को मरीज को दिन में 3 से 4 बार पिलाया जाता है जिससे ज्वर मे कमी होती है।

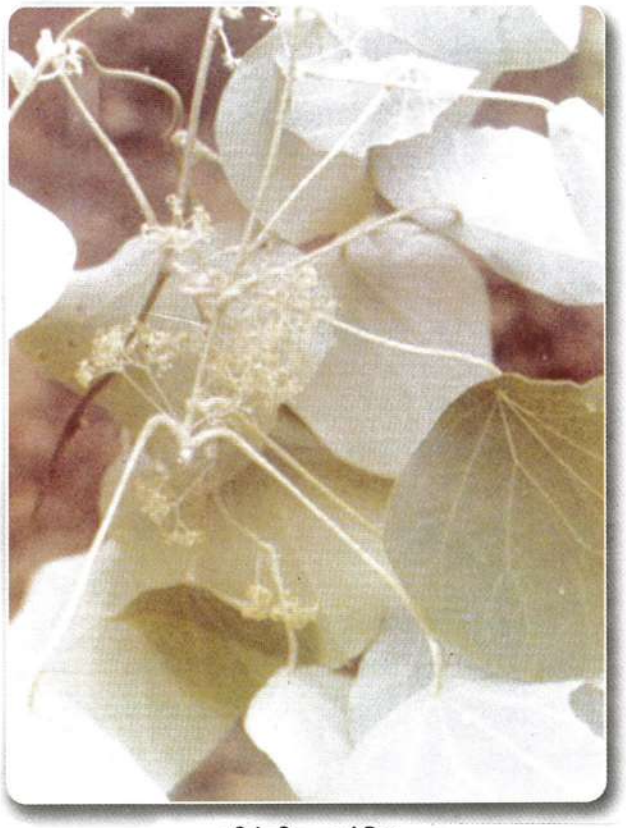

सीसेम्पीलास पेरिरा

4. **एजाडिरेकटा इन्डिका :** (नीम)
कुल-मीलियेसी

यह एक विशालकाय वृक्ष है इसकी पत्तियां संयुक्त होती है। पुष्प सफेद रंग के एवं फल गुदेदार, एकबीजी तथा हरे अथवा पीले रंग के होते हैं।

फूल एवं फल : अप्रैल से जून

उपयोग : पौधे की पत्तियाँ, छाल व पुष्प मलेरिया ज्वर में बहुत उपयोगी है। पौधे की पत्तियों को उबालकर ठंडा कर लेते हैं तथा मलेरिया ज्वर से पीड़ित मरीज को इसका सत थोड़ा-थोड़ा पिलाते रहते हैं। साथ ही इस पानी से शरीर को पोछने से ज्वर में कमी आती है।

5. **प्लेमबेगो जीलेनिका :** (चित्रक)
कुल – प्लेमबाजीनेसी

यह झाड़ीयुक्त पौधा है, इसकी पत्तियां सरल होती है। पुष्प सफेद या नीले रंग के होते हैं तथा बाहयदलपुन्ज पर रोयेदार ग्लैन्डस पाये जाते हैं।

फूल एवं फल : अगस्त से सितम्बर

उपयोग : इस पौधे की जड़ को पानी में उबालते हैं तथा उपरोक्त सत को ठण्डा करके ज्वर से पीड़ित मरीज को पीने के लिये दिन में 3 से 4 बार दिया जाता है जिससे ज्वर में कमी आती है।

प्लेमबेगो जीलेनिका

6 अकेशिया फार्नेशियाना : (गन्ध-बबूल)
कुल-माइमोसेसी

यह छोटा वृक्ष है जिसका अनुपर्ण काटों में रूपान्तरित हो जाता है, इसकी पत्तियां संयुक्त एवं पुष्प पीले रंग के होते हैं। बीज बहुत सारे एवं दो पंक्तियों में होते हैं।

फूल एवं फल : सितम्बर से मार्च

उपयोग : इस वृक्ष की छाल को पानी में उबालकर ठण्डा कर ज्वर से पीडित मरीज को पीने के लिये दिन मे 3 से 4 बार थोड़ा-थोड़ा दिया जाता है जिससे ज्वर में कमी आती है।

7. निकटैन्थस आर्बेटिस्टिस : (हरसिंगार)
कुल-औलीयेसी

यह छोटा वृक्ष जिसकी लम्बाई 2 से 4 मी. तक होती है। शाखा चार भुजाकारी होती है। पत्तियां साधारण एवं अण्डाकार होती हैं जो उपर से नुकीली तथा नीचे से चौड़ी होती है। पुष्प सफेद रंग के होते है।

फूल एवं फल : सितम्बर से जनवरी

एल्सटोनिया सकालेरिस

उपयोग : वृक्ष की छाल व पत्तियों को पानी में उबालकर ठण्डा करके उपरोक्त काढ़े को मरीज को दिन में 3 से 4 बार पिलाने से ज्वर मे कमी होती हैं। पौधे की पत्तियों का सत मरीज को देने से आराम मिलता है।

8. एल्सटोनिया सकालेरिस : (सप्तपर्ण)
कुल-एपोसाइनेसी

यह विशाल वृक्ष है जिसकी पत्तियां साधारण एवं गुच्छे में होती हैं। पुष्प सफेद-पीला रंग लिये एवं खुशबूदार होते हैं।

फूल एवं फल : दिसम्बर से मार्च

उपयोग : इस वृक्ष की छाल मलेरिया ज्वर में उपयोगी है, पौधे की छाल को पानी में उबालकर ठण्डा करके काढ़े को ज्वर पीड़ित मरीज को पिलाने से ज्वर मे कमी आती है।

9. एन्ड्रोग्राफिस पेनीकुलेटा : (कालमेघ)
कुल–एकेन्थसी

यह एकवर्षीय पौधा है जिसकी पत्तियां साधारण एवं अण्डाकार होती है, पर्णवृत छोटा

एन्ड्रोग्राफिस पेनीकुलेटा

होता है। पुष्प बैगनी रंग का होता है। दलपुंज का किनारा गुलाबी या बैगनी रंग का होता है। कैप्सूल सीधा तथा आयताकार होता है। बीज पीले या भूरे रंग के होते हैं।

फूल एवं फल : सितम्बर से मार्च

उपयोग : यह आर्युवेद में प्रचलित पौधा है जो मलेरिया ज्वर में बहुत उपयोगी है। पौधे को उबालकर एवं इसकी पत्तियों को पीसकर सत् को पीडित मरीज को पिलाने से ज्वर कम होता है।

एरीस्टोलोकिया ब्रैक्टियोलेटा

10. एरीस्टोलोकिया ब्रैक्टियोलेटा : (कीड़ामार)

कुल-एरिस्टोलोकियेसी

यह एक बहुवर्षीय शाक है जिसका तना मुड़ा हुआ तथा शाखायें फैली हुई और झुकी होती है। पत्तियां साधारण वृत्ताकार होती है। पुष्प सफेद रंग के होते हैं। बीज त्रिकोणाकार तथा नीचे से हृदयाकार लिये होते हैं।

फूल एवं फल : सितम्बर से मार्च

उपयोग : इस पौधे की जड़ मलेरिया ज्वर मे उपयोगी है। पौधे की जड़ को उबालकर सत् को पीड़ित मरीज को पिलाने से मलेरिया ज्वर से राहत मिलती है तथा मरीज जल्द से जल्द स्वस्थ हो जाता है।

11. पिक्रोराइजा कुर्रो : (कुटकी)

कुल - स्कोफुलेरिएसी

यह बहुवर्षीय पौधा है जिसकी शाखायें फैली हुई होती है तथा तना लतानुमा होता है। पत्तियां अण्डाकार, दन्ताकार तथा सिकुड़ी हुयी होती हैं, पत्तियों का आधार रोयेंदार होता है। पुष्प नीले रंग के होते हैं।

फूल एवं फल : जून से अगस्त

उपयोग : इस पौधे की जड़ मलेरिया रोग मे उपयोगी है। इसकी जड़ को पानी में डुबाकर रख देते है तथा 4-5 घंटे बाद उस सत् को ज्वर से पीड़ित मरीज को पिलाने से ज्वर मे राहत मिलता है। यह आयुर्वेद मे काफी प्रचलित पौधा है जो मलेरिया रोग के उपचार में प्रयोग में लाया जाता हैं।

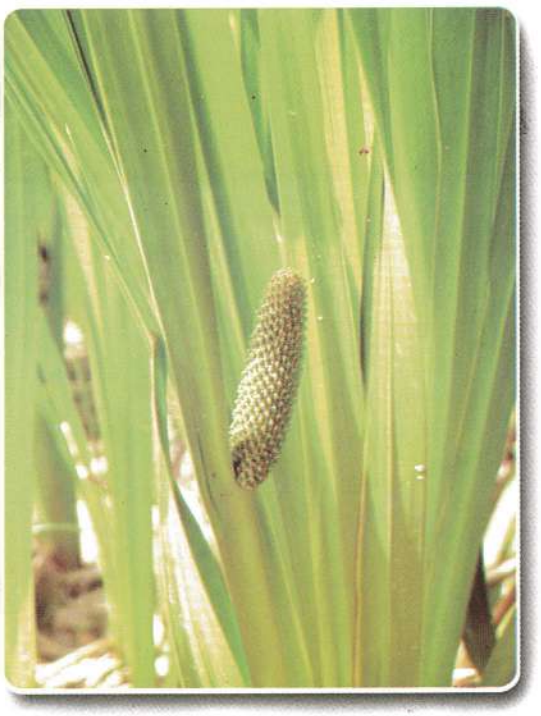

एकोरस कैलेमस

12. एकोरस कैलेमस : (बच)

कुल -- एरेसी

यह सुगन्धित शाक है जिसकी जड़ खड़ी होती है। पत्तियां द्विपंक्तिक होती हैं, पुष्पक्रम स्पैडिकस होता है तथा डंठल

रहित होता है। पुष्प सफेद या नीले रंग के होते हैं।

फूल एवं फल : अप्रैल से अगस्त

उपयोग : इसकी जड़ मलेरिया रोग में उपयोगी है। पौधे की जड़ को पीसकर चूर्ण बना लेते हैं तथा उसे शहद में मिलाकर मरीज को 3 से 4 बार खिलाने से ज्वर मे कमी आती है साथ ही बदन दर्द में भी राहत मिलती है।

13. **स्वार्शिया चिरायैता** : (चिरायता)
कुल - जैनसीनेसी

यह एक वर्षीय पौधा है जिसकी पत्तियां साधारण एवं अण्डाकार, डंठल रहित, नुकीली तथा 5 शिरायुक्त होती हैं, दलपत्र हरा या पीला होता है।

फूल एवं फल : अगस्त से अक्टूबर

उपयोग : इस पौधे को पानी में उबालते हैं तथा रात को ठण्डा करके ज्वर से पीड़ित मरीज को दिन में 3 से 4 बार पिलाने से मलेरिया ज्वर में कमी आती है। इस पौधे को आर्युवेद मे भी मलेरिया ज्वर के उपचार मे लाया जाता है।

प्रस्तुत लेख में वर्णित पौधे मलेरिया रोग में बहुत ही उपयोगी हैं एवं इन पौधो के उपयोग से शरीर पर कोई बुरा असर भी नहीं पड़ता है। इन पौधों के बारे मे जानकारी देकर एवं लोगों को जागरूक कर तथा इन्हें वाटिकाओं में रोपित कर पौधों के संरक्षण हेतु प्रयास ही प्रस्तुत लेख का मुख्य उद्देश्य है।

पर्यावरण ऐसा समझिए
जैसा तन का चीर ।
अलग हो गया धरती से
चुभने लगेंगे तीर ।।

पेरिला फ्रूटिसेन्स (भजीरा)--मिजोरम राज्य की एक संभावित तिलहन फसल

बिपिन कुमार सिन्हा एवं रमेश कुमार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग

भॅजीरा (perilla frutescens) लेमिएसी कुल का सदस्य है। यह विश्व में प्रमुखतः चीन जापान एवं कोरिया में तेलिय फसल के रूप में उगाया जाता है। भॅजीरा की एशिया में फ्रुटिसेन्स के अलावा तीन प्रमुख प्रजातियां एक्यूटा, जैपोनिका एवं क्रिस्पा पाई जाती हैं। इन में पेरिला फ्रूटिसेन्स एवं पेरिला जैपोनिका ही भारत में उगायी जाती है। पेरिला फ्रूटिसेन्स के उत्पत्ति का केन्द्र चीन को माना गया है। यह भारत में हिमालय क्षेत्र में समुद्र तल से लगभग 1000 मी. की ऊचाई तक पाया जाता है। पूर्वोत्तर भारत में यह मुख्यतः मेघालय, अरूणाचल प्रदेश, मिजोरम, नागालैंड, मणिपुर एवं असम के पर्वतीय क्षेत्रों में उगाया जाता है। इसे खासी भाषा में उनेई, नागा में नेई एवं मिजों में छोछी कहते हैं। भारत में इसे निम्न प्रयोज्य फसलों की श्रेणी में रखा गया है और इसकी खेती बहुत ही सीमित क्षेत्रों में होती है। इसके कृषि क्षेत्र में विस्तार होने से किसानों की आय में काफी वृद्धि हो सकती है। और यह एक प्रमुख मौद्रिक फसल के रूप में अपनाया जा सकता है।

पेरिला फ्रूटिसेन्स (भॅजीरा) एक वर्षीय झाड़ीदार पौधा है, जिसकी लम्बाई 150 से 180 से. मी. तना एवं पत्तियां रोयेंदार, सरल, आकार में अण्डाकार, 7 से 13 से. मी. लम्बी एवं 3 से 7 से मी. चौडी तथा किनारों पर दन्ताकार होती है। इसके फूलों से हल्की सुगन्ध आती है। इसका पुष्पक्रम शाखाओं के ऊपर स्पाइक में लगा एवं फूल छोटे आकार के 2-3 मिमी. लम्बे, सफेद रंग के होते हैं। इसका फल अर्द्धगोलाकार नट होता है।

पेरिला फ्रूटिसेन्स के बीज भूरे एवं सफेद दो रंगों में मिलते हैं। इसके बीज को सीधे जमीन में रोपाई करके उगाया जाता है। रोपाई के लिए मई माह सबसे उपयुक्त है। जब इसके तनें एवं पत्तियाँ हल्के भूरे रंग की होनी शुरू हो जाए तब फसल कटाई के लिए तैयार हो जाती है। इसकी फसल में कीड़े भी कम लगते हैं।

इसके बीजों में 31-53% तक तेल संचित रहता है, जिसमें संतृप्त अम्ल 6-7%, ओलिक अम्ल 14-25% लिनोलेइक अम्ल 11-16% एवं लिनोलेनिक अम्ल 50-70% होता है। इसका अशोधित तेल गहरा पीला रंग लिये एवं शोधित तेल हल्का पीला रंग लिये होता है जिससें भीनी – भीनी खुशबू आती है।

उपयोग : इसके बीज एवं तेल का उपयोग मिजो आदिवासी विभिन्न प्रकार से करते हैं। इसके बीजों को पीसकर केले के फूल के साथ मिर्च, प्याज एवं अदरक मिलाकर इसकी विशेष प्रकार की चटनी बनाकर खाई जाती है। साथ ही इसके बीजों का तेल निकालकर खाने के रूप में भी उपयोग करते हैं और इसके बीजों को खाली कढ़ाई में भून एवं पीसकर उन्हें चावल के साथ भी मिलाकर बड़े चाव से खाते हैं।

नृ–वनस्पति दृष्टि से देखा जाये तो यह एक महत्वपूर्ण पौधा है जिसको उचित संरक्षण एवं संवर्धन की आवश्यकता है जिससे इसको उचित रूप में उगाकर किसानों को आवश्यक जानकारी के साथ इसको तिलहन फसल के रूप में उगाने को प्रेरित किया जाय।

विश्व में ऊर्जा संकट व उसके सम्भावित समाधान में कृषि जनित अपशिष्टों का उपयोग

सौरभ सचान
केंद्रीय राष्ट्रीय पादपालय
गोपाल कृष्ण
केंद्रीय वनस्पति प्रयोगशाला

ऊर्जा संकट आज एक विश्वस्तरीय समस्या का रूप ले चुका है। ग्रामीणों द्वारा आत्महत्या, उनकी दीन-हीन दशा, निम्न कोटि की जीवन शैली आदि ऊर्जा संकट का ही गंभीर रूप है। इस समस्या का समाधान केवल नई, सफल व उच्चतम प्रौद्योगिकी विकास के तहत ही सम्भव है। विश्व बैंक द्वारा दिए गये एक आंकड़े के अनुसार आज भी साठ प्रतिशत ग्रामीण आबादी अथवा चार सौ करोड़ लोग प्राचीन पद्धतियों पर आवासीय सुविधाएं रहित जीवन यापन करने पर विवश हैं। अत्याधुनिक तकनीक ने उन्हें छुआ तक नहीं है वे आज भी घरेलू चूल्हा व उससे होने वाले दम घोंटू प्रदूषण को सहने के लिए बाध्य हैं। प्रतिवर्ष लगभग तीन लाख लोग घरेलू धुएं व इससे होने वाली बीमारियों के चलते मृत्यु का शिकार होते हैं।

पच्चीस वर्ष से कम उम्र के लगभग 54 प्रतिशत युवा आज भी इन्ही ग्रमीण झुग्गी-झोपड़ियों में रोजगार रहित जीवन यापन कर रहें हैं। भारत को वर्ष 2012 तक विश्व की तीसरी व्यापक अर्थ-व्यवस्था वाले देश का दर्जा दिलाने का सपना बिना ग्रामीण विकास के कोरी कल्पना मात्र है।

भारत के आर्थिक व सामाजिक रूप से अति पिछड़े इलाकों में ऊर्जा संकट लगातार गहराता जा रहा है। यहां पर न ही तो बिजली कि समुचित व्यवस्था है और न ही पानी व अन्य आवासीय सुविधाओं की। एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत के पिछड़े इलाकों में प्रति व्यक्ति 250 किलो वाट विद्युत प्रति वर्ष खपत होती है, जो कि संयुक्त राज्य में खपत होने वाली विद्युत का केवल मात्र 2 प्रतिशत है। विद्युत व जल जैसी मूलभूत आवश्यकताओं के आभाव में भारत विकास की बात महज खयाली पुलाव है। पिछले वर्ष भारत ने 45 बिलियन डालर के पेट्रोलियम उत्पाद आयातित किए। कच्चे तेल की कीमतें लगातार बढ़ने के कारण वैश्विक बाजार पर इसका समूचा आर्थिक भार आ पड़ा हैं। विभिन्न देशों से आयातित कच्चे माल की अवधि अनिश्चितता भी भारत में ऊर्जा संकट का एक महत्वपूर्ण कारण माना जा रहा है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है। कृषि के द्वारा तीन प्रकार के जैविक ईंधन सुगमता से तैयार किए जा सकते हैं, जैसे–ऐथेनाल, पाइरोलिसिस तेल अथवा बायोडीजल, गैसीय ईंधन मीथेन आदि। इन जैव ईंधनों से विद्युत उत्पादन भी संभव है। हाइड्रोजन अपघटन (हाइड्रोलिसिस), एंजाइमैटिक सक्रियताओं जैसी उच्च कोटि की जैव अभियांत्रिकी द्वारा मृदु बाजरा (सारघम वल्गेर), चुकुन्दर (बीटा वल्गेरिस), गन्ना (सैकरम ऑफिसिनेलिस), मक्का (जिया मेज) आदि फसलों से ऐथेनाल (C_2H_5OH) निर्काषित किया जा सकता है। बायोडीजल तेल उत्पादित करने वाली फसलों जैसे–रतन जोत

(जैट्रोफा कार्केस) सोयाबीन (ग्लाइसिन मैक्स), करंज (पोंगामिया पिन्नाटा), अरण्डी (रिसिनस कम्यूनिस) आदि से सुविधापूर्वक निकाला जा सकता है जो कि आंतरिक दहन-इंजन को चला सकता है व विद्युत उत्पादन कर सकता है। इसी प्रकार पाइरोलिसिस तेल भी लिटर अथवा बायोमास के प्रभाजी संघनन द्वारा प्राप्त किया जाता है। किसी भी प्रकार के कृषि में केवल 25-40 प्रतिशत तक ही खाद्य प्राप्त होता है तथा 60-70 प्रतिशत तक कृषि कचरा, लिटर अथवा चारा, भूसा इत्यादि होता है। इस कार्बनिक कृषि जनित कचरे व अवशेष द्वारा बायोमास पावर प्लान्ट से पाइरोलिसिस आयल व ऐथेनाल जैसे जैव ईंधन आसानी से तैयार किए जा सकते हैं।

योजना आयोग के एक अनुमान के अनुसार इस पद्धति द्वारा एक साधारण कृषक प्रति वर्ष 50-100 डालर प्रति एकड़ केवल कृषि जनित जैव कचरे से प्राप्त कर सकता है। भारत में प्रतिवर्ष लगभग 600 करोड़ टन कृषि कचरा उत्पादित होता है, जिसके निस्तारण के लिए कृषक या तो इसे खेत में ही जला देते हैं अथवा पशु चारे के रूप में घरों में संरक्षित कर लेते हैं। इस कचरे को खेत में जलाने से मृदा की उर्वरा शक्ति में निरंतर ह्रास होता है व वायु प्रदूषण भी प्रचुरता से होता है।

एक गणना के अनुसार प्रतिवर्ष यह जैव कचरा लगभग अस्सी हजार (80,000) मेगावाट विद्युत उत्पादन के लिये पर्याप्त होगा। एक विकल्प के तौर पर इसी कचरा से 156 अरब लीटर ऐथेनॉल तैयार किया जा सकता है जो कि भारत की 42 प्रतिशत तेल मांग को वर्ष 2012 तक पूरा करने में सक्षम है। इसी जैव ईंधन से प्रतिवर्ष 400 करोड़ किलोग्राम पाइरोलिसिस ऑयल का उत्पादन भी सम्भव है जो कि भारत की 80 प्रतिशत ऑयल मांग की पूर्ति कर सकता है। इसके अलावा एक बार उपयोगिता होने के बाद बचे अवशेष से पुनः जैव उर्वरक बनाये जा सकते हैं।

ऊर्जा जीवन तथा विश्व में होने वाली सभी सक्रियताओं व क्रियाओं का आधार है। हमें आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि भारत में आधुनिक तकनीकी का विकास व कृषि जनित कचरे का सदुपयोग करके भारत को ऊर्जा के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है।

नदियाँ देश की जीवन रेखा ।
इनका प्रदूषण मौत सरीखा ।।

* * *

बच्चा पैदा होवे एक ।
वृक्ष लगायें आप अनेक ।।

भारतीय संस्कृति में वृक्षों का आध्यात्मिक महत्व

विजय कुमार मासतकर,
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

प्राचीन काल से वन, वृक्षों, पौधों, फूल, पत्तियों का भारतीय पुराणों, परम्पराओं, लोक कथाओं, लोक गीतों, वीर गाथाओं एवं साहित्य में अभिन्न स्थान रहा है। वृक्ष इस पृथ्वी का श्रृंगार हैं। वृक्ष से धरती की शोभा हैं। वृक्ष वायु और वातावरण को विशुद्ध करने का उपादन है। सम्पूर्ण विश्व में भारतवर्ष एक मात्र ऐसा देश हैं जहाँ वृक्षों की पूजा की जाती हैं।

भारतीय समाज में वट (Ficus benghalensis), पीपल (Ficus religiosa), तुलसी (Ocimum sanctum), बेल (Aegle Marmelos), आम (Mangifera indica), आंवला (Emblica officinalis), अशोक (Saraca ashoka) नीम (Azadirachta indica) कदम्ब (Anthcefollus Kadambo), आदि वृक्षों तथा पौधों को अत्यन्त पवित्र माना जाता हैं। इन वृक्षों में देवी-देवताओं का निवास माना गया हैं, इनके नाम से संबंधित पर्वों पर इनकी पूजा-अर्चना की जाती है तथा व्रत आदि रखकर इनके प्रति सम्मान प्रकट किया जाता हैं। । हमारे देश में सोमवार के दिन पड़ने वाली अमावस्या के दिन पीपल को पूजने की परम्परा है। मान्यता है कि पीपल की जड़ में भगवान विष्णु का वास होता है। इसी प्रकार जेठ माह की अमावस्या को बरगद की पूजा होती है। मान्यता है कि बरगद के पेड़ की जड़ो में ब्रह्मा, शाखाओं में विष्णु और ऊपर के भाग में शिव व सावित्री का निवास होता हैं। इसी प्रकार सावन माह की शुक्ल एकादशी को आंवला के वृक्ष की पूजा करने की प्रथा है, तो तुलसी का पौधा हर घर आंगन की लोक आस्था है। कार्तिक शुक्ल की ग्यारसको तुलसी विवाह की परम्परा है। इसके पौधों में हिन्दू संस्कारों की आस्था बहुत गहरी हैं।

हिन्दूओं के घर में तुलसी कोट बीच चौंक में घर की आत्मा की तरह बनाया जाता है। इसी प्रकार बेल वृक्ष पर भगवान शंकर का वास माना जाता है। बेल के तीन पत्तों में ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन त्रिदेवों का वास माना जाता है। मान्यता है कि शिवरात्रि के दिन व्रत रखने से और बेल की पत्ती चढ़ाने से भगवान शंकर प्रसन्न हो जाते हैं। भादो माह में कजली तीज में महिलाये नीम की शाखा की पूजा हल्दी, कुंकुम, चावल, पुष्प और वस्त्र चढ़ाकर करती हैं। यह व्रत महिलायें अपने सुहाग की रक्षा के लिये करती है। भादों शुक्ल एकादशी को कदम्ब वृक्ष की पूजा करते है। मान्यता है इससे धन-धान्य और सद्गति प्राप्त होती हैं। चैत्र मास शुक्ल पक्ष की अष्टमी को अशोक वृक्ष की कली का सेवन करने से व्यक्ति विभिन्न रोगों से मुक्त हो जाता है।

भारतीय संस्कृति में भक्ति और उपासना की प्रधानता है। मनुष्य अपने कल्याण साधन के लिए इन्हीं का आश्रय लेता है। परमात्मा ने इस सृष्टि की रचना में जितनी चीजे बनाई हैं उनमें से कोई भी निरर्थक नही है, और प्रत्येक में उसकी शक्ति और सत्ता छिपी है।

हमारे लोकजीवन में आम सदैव से पूजनीय रहा है। जब भी कोई मांगलिक अनुष्ठान होता है तब आम के पत्तों का ही वंदनवार लगाया जाता हैं। प्रत्येक शुभ कार्य का शुभारंभ कलश स्थापना से होता हैं, उसमें भी आम के पत्तों का ही प्रयोग होता हैं। आम के बारे में एक लोककथा भी प्रचलित है – एक बार मनु ने सृष्टिके रचयिता ब्रह्मा जी से निवेदन ऐसा किया कि भगवान आप मधुर रस से युक्त फल दो जिसमें पैष्टिकता के साथ ही वह धनी-निर्धन सभी को सुलभ हो। ब्रह्म जी ने एवमस्तु कहकर अपने कमंडल की कुछ बूँदे पृथ्वी पर टपका दी। कुछ ही समय बाद उस स्थान पर आम की कोंपले फूटीं तभी तो आज तक आम राजा-रंक दोनों में प्रिय है। बोधि वृक्ष के नीचे बोध पाकर सिद्धार्थ भगवान बुद्ध हो गये। विश्व प्रसिद्ध आचार्य रजनीश ने भी बोधि वृक्ष के नीचे ध्यान लगाकर अपार ज्ञान की प्राप्ति की थी। पंचवटों की पंचवटी भगवान राम की तपस्या स्थली बन गयीं।

पेड़ पौधों में भी जीवन होता हैं। विज्ञान पहले वृक्ष लता को चेतन नहीं मानता था। वेदादि शास्त्र ने सदा से इन्हें चेतन माना है। भारत के महान वैज्ञानिक डॉ. जगदीश चंद्र बसु ने वैज्ञानिक प्रक्रिया से ही वृक्षादि में प्राण सत्ता सिद्धकर वैदिक विधान का जय ध्वज फहरा दिया। अब संपूर्ण विश्व मानता है कि पेड़ पौधों में भी मानव के समान जीवन रहता है।

जब पेड़ पौधों में मानव के समान जीवन रहता है तो उनको भी मानव के ही समान महत्व मिलना चाहिए। आयुर्वेद के ज्ञाता तथा आदिवासियों में आज भी यह मान्यता है कि वे जब भी किसी भी पेड़ या पौधे के किसी भी अंश को लाते है तो वे उसे पुष्य नक्षत्र के एक दिन पूर्व उस पौधे को आंमत्रित कर उससे निवेदन करते हैं कि मैं मानव सेवा के लिए आपको लेने आऊँगा। ऐसा कहकर दूसरे दिन उसे ससम्मान अपने घर लेकर आते हैं, तभी वह वनस्पति अपना पूर्ण असर प्रगट करती हैं।

क्योंकि पेड़ पौधों में भी हमारे समान जीवन है, वह भी सम्मान चाहते हैं। हम इन वृक्षों को अपने पूर्वजों के समान महत्व दें, अपने जीवन में इनकी महत्वता पहचाने और उनसे भी वैसा ही प्रेम करे जैसा वे हमसे करते हैं।

धरती को मत बाँझ बनाओ।
अपने हित में वृक्ष लगाओ।।

* * *

पेड़ों की प्रचुर शुद्ध हवा।
लाख बीमारियों की एक दवा।।

पर्यावरण से सम्बन्धित कुछ रोचक जानकारी

अच्युता नन्द शुक्ला एवं अथोकपम पिनोकियो
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

1. प्रथम विश्व पर्यावरण दिवस, 5 जून 1972 को स्टॉक होम में आयोजित किया गया।
2. पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 14 नवम्बर, 1986 को पारित हुआ तथा इसको 4 अध्याय और 26 धाराओं में विभक्त किया गया है। भारतीय संविधान के भाग IV 'ए' के अनुच्छेद 15ए (एचं) में पर्यावरण संरक्षण को प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य माना गया है।
3. संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम 15 दिसम्बर 1972 से प्रारम्भ हुआ।
4. भारतीय वन्य जीव बोर्ड की स्थापना सन् 1952 में हुई।
5. वन संरक्षण अधिनियम सन् 1980 से लागू हुआ।
6. विश्व का प्रथम राष्ट्रीय उद्यान सन् 1872 में वेलोस्टोन अमेरिका में स्थापित किया गया था।
7. क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का सबसे बड़ा राष्ट्रीय उद्यान हिकिंस राष्ट्रीय उद्यान लेह (जम्मू एवं कश्मीर) 3,500 वर्ग कि.मी. है।
8. क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का सबसे छोटा राष्ट्रीय उद्यान साउथ बटन राष्ट्रीय उद्यान अंडमान (अंडमान निकोबार) 0.03 वर्ग कि. मी. है।
9. भारत के मध्य प्रदेश राज्य में सबसे अधिक राष्ट्रीय उद्यान हैं।
10. भारत के दो जीवाश्म उद्यान (फॉसिल पार्क) राजस्थान और मध्य प्रदेश में स्थित हैं।
11. दुनिया के एकमात्र तैरते उद्यान का नाम काइबुल-लामजोव राष्ट्रीय उद्यान है।
12. भारत की सबसे अधिक संकटग्रस्त प्रजातियाँ मानस राष्ट्रीय उद्यान, असम में है।
13. वर्ल्ड वाइल्ड फंड की शाखा भारत में सन् 1969 में नई दिल्ली में प्रारम्भ की गयी थी।
14. यू एन इ पी (UNEP) का मुख्यालय नैरोबी (केन्या) में तथा इसका मुख्य उद्देश्य, सदस्य देशों को उनके प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा करने, वायु प्रदूषण, भूमि की गुणवत्ता में गिरावट तथा मरूस्थलीय क्षेत्र के प्रसार को रोकने में सहायता प्रदान करना है।
15. भारत में पर्यावरण विभाग की स्थापना सन् 1980 में हुई।
16. 'चिपको' आन्दोलन के जन्मदाता सुन्दरलाल बहुगुणा एवं चण्डी प्रसाद भट्ट तथा अपिक्को आन्दोलन के जन्मदाता पांडुरंग हेगड़े थे।
17. राष्ट्रीय वन नीति के अनुसार 33% भू-भाग पर वन होना चाहिए।
18. कौटिल्य के अर्थशास्त्र में संरक्षित वन को अभयारण्य का नाम दिया गया था।
19. विश्व के 97 देशों में कुल 441 जीवमंडल (बायोस्फीयर) रिजर्व हैं, तथा भारत में कुल 14 जीवमंडल (बायोस्फीयर) रिजर्व हैं।

20. सारे विश्व में 25 उत्तप्त स्थल (हॉट स्पॉट) हैं तथा भारत मे दो उत्तप्त स्थल (हॉट स्पॉट) हैं। हॉट स्पाट शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम नार्मन मायर्स ने सन् 1988 में किया।
21. भारत में 47,000 पौधों की प्रजातियाँ तथा 89,000 जन्तुओं की प्रजातियाँ पायी जाती हैं।
22. एशियाई शेर के संरक्षण हेतु गिर राष्ट्रीय उद्यान, (गुजरात) बनाया गया है।
23. एक सिंग वाले गेंडे के लिए काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान (असम) प्रसिद्ध है।
24. सफेद शेर बांधव गढ़ राष्ट्रीय उद्यान में पाया जाता है।
25. भारत में पाया जाने वाला एक मात्र कपि है 'गिब्बन'।
26. कावर झील बिहार, भारत का सबसे बड़ा पक्षी अभयारण्य है।
27. प्रोजेक्ट टाइगर 1 अप्रैल 1978 में कार्बेट राष्ट्रीय उद्यान से प्रारम्भ किया गया था।
28. कस्तूरी मृंग का संरक्षण केदारनाथ अभयारण्य में किया जा रहा है।
29. बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी की स्थापना सन् 1983 में मुम्बई में की गई थी।
30. यूनेस्को द्वारा आइ यू सी एन (IUCN) की स्थापना सन् 1948 में हुई थी।
31. ओजोन स्तर के क्षरण का पता सर्वप्रथम जोसेफ फॉरमैन ने सन् 1985 में इंलैण्ड में लगाया था।
32. समस्त पृथ्वी का क्षेत्रफल 51 करोड़ वर्ग कि.मी. है तथा स्थलमंडल का क्षेत्रफल 15 (29%) करोड़ वर्ग कि.मी. है।
33. सर्वप्रथम जैव-विविधता शब्द का प्रयोग ई. ओ. विल्सन ने किया।
34. आई यू सी एन (IUCN) के रेड डाटा बुक में संकटापन्न जीवों को गुलाबी रंग के पृष्ठों पर दर्शाया जाता है।
35. विश्व की ज्ञात पादप जातियों की 30 प्रतिशत, क्षेत्र विशेषी पादप जातियों में पाई गई है। भारत में 5,150 जातियाँ क्षेत्र विशेषी है। जिनमें से 3,500 जातियाँ हिमालय में तथा 1,650 जातियाँ पश्चिमी घाट में पायी जाती हैं।
36. वर्तमान में विश्व के 16 प्रतिशत भाग पर वन पाये जाते हैं।
37. द स्टेट ऑफ द फारेस्ट रिपोर्ट-2003 के अनुसार भारत का कुल वनाच्छादित क्षेत्र 6,75,538वर्ग कि.मी. से बढ़कर 6,78,333 वर्ग कि.मी. हो गया है जो देश के कुल भौगोलिक वन क्षेत्र का 20.64 प्रतिशत है।
38. हॉकी मुख्यतः शहतूत की लकड़ी की बनी होती है।
39. भारत के कुल 593 में से 589 जिलों के वन सम्बन्धी आकर्ड़ो के अनुसार देश में सर्वाधिक 76,429 वर्ग कि.मी. वन क्षेत्र मध्य प्रदेश में है, 68,018 व.कि.मी. वन क्षेत्र के साथ अरूणाचल प्रदेश का दूसरा तथा 55,998 वर्ग कि.मी. वन क्षेत्र के साथ छत्तिसगढ़ का तीसरा स्थान है।
40. गंगा नदी की कुल लम्बाई 2,555 कि.मी. है।
41. भारत की सर्वाधिक प्रदूषित नदी अंमला खेड़ी (गुजरात) है।
42. भारत का सबसे बड़ा चीता आरक्षण स्थल नागार्जुन है।

पर्यावरणीय दिवस एवं सप्ताह

1.	विश्व जलाशय दिवस	02 फरवरी
2.	राष्ट्रीय विज्ञान दिवस	28 फरवरी
3.	विश्व वानिकी दिवस	21 मार्च
4.	विश्व जल दिवस	22 मार्च
5.	विश्व स्वास्थ्य दिवस	07 अप्रैल
6.	जल संसाधन दिवस	10 अप्रैल
7.	पृथ्वी दिवस	22 अप्रैल
8.	विश्व प्रवासी पक्षी दिवस	08 मई
9	विश्व जैव विविधता दिवस	22 मई
10.	तम्बाकू मुक्ति दिवस	31 मई
11.	विश्व पर्यावरण दिवस	05 जून
12.	विश्व भू-गर्भ जल दिवस	10 जून
13.	विश्व जनसंख्या दिवस	11 जुलाई
14.	विश्व प्रकृति दिवस	28 जुलाई
15.	विश्व ओजोन दिवस	16 सितम्बर
16.	विश्व वन्य जीव दिवस	01 अक्टूबर
17.	विश्व प्राकृतिक आवास दिवस	03 अक्टूबर
18.	विश्व जीव सप्ताह	01 से 07 अक्टूबर
19.	विश्व जन्तु कल्याण दिवस	04 अक्टूबर
20.	विश्व शाकाहार दिवस	06 अक्टूबर
21.	विश्व आपदा नियन्त्रण दिवस	13 अक्टूबर
22.	विश्व खाद्य दिवस	16 अक्टूबर
23.	संयुक्त राष्ट्र दिवस	24 अक्टूबर
24.	राष्ट्रीय पर्यावरण जागरूकता माह	14 अक्टूबर से 18 नवम्बर
25.	राष्ट्रीय पक्षी दिवस	12 नवम्बर
26.	विश्व पर्यावरण संरक्षण दिवस	25 नवम्बर
27.	राष्ट्रीय प्रदूषण रोकथाम दिवस	02 दिसम्बर
28.	राष्ट्रीय ऊर्जा संरक्षण दिवस	14 दिसम्बर
29.	मानवाधिकार दिवस	10 दिसम्बर
30.	वन महोत्सव	जुलाई एवं फरवरी का प्रथम सप्ताह

पर्यावरण से सम्बन्धित महत्वपूर्ण टिप्पणियाँ

विनीत कुमार रावत
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

जल संभर (Watershed Management)

जल संभर प्रबन्धन का अर्थ उन सभी क्रियाओं के योग से है जो कि जल संभर को परिरक्षित रखने, उनके रख रखाव एवं भूमि तथा जल संसाधनों के उपयोग करने की प्रक्रियाओं को निर्देशित एवं समन्वित करने से जुड़ी है। इसमे पानी के संरक्षण, प्रबन्धन और बचाव तथा सम्बन्धित भू-संसाधनों के लिए किये जाने वाले सभी उपाय शामिल हैं। यथा–

- भूमि के प्रयोग पर नियंत्रण (Land Use Controls) –वैज्ञानिक रूप से खनन किया जाना।
- जोनिंग (Zoning)–पौध लगाना और वनीकरण।
- निगरानी (Monitoring)– जल संग्रहण के जरिये उचित जल भण्डारण।
- पुनर्स्थापना (Restoration) – लोगों की भागीदारी के माध्यम से।
- भूमि प्रयोग उपचार (Land Use Treatment) – मृदा के अपक्षरण और रन-ऑफ हानियों को रोकने के लिए यंत्रीकृत उपाय किया जाना।
- शुष्क भूमि के क्षेत्रों में वाटरशेड प्रबन्धन के अन्तर्गत निम्नलिखित उपायों को प्रयोग में लाया जाता है–
- मृदा और जल संरक्षण
- उन्नत शुष्क भूमि कृषि अर्थव्यवस्था संबंधी क्रिया कलाप,
- वानिकी और चारागाह विकास।
- पशुधन और डेयरी विकास।

शुष्क भूमि क्षेत्र और वर्षा का जल प्राप्त करने वाले इलाकों में वाटरशेड प्रबन्धन के अन्तर्गत मुख्य रूप से विकासात्मक क्षेत्र की प्राकृतिक सीमाओं के भीतर प्रौद्योगिकीयों का एकीकरण किया जाता है, जिससे जल तथा पादप संसाधनों का इष्टतम विकास हो, परिणाम स्वरूप दीर्घकालीन आधार पर लोगों की न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके।

जल संग्रहण (Water Harvesting)

शुष्क क्षेत्रों में वर्षा ऋतु में वर्षा का जल अपवाह के द्वारा बहकर नष्ट हो जाता है। इस पानी को वाहक्षेत्र के निचले स्थानों पर एकत्रित करके फसलों की जीवन-रक्षक-सिंचाई के लिए उपयोग में लाने को वाटर हार्वेस्टिंग की संज्ञा दी जाती है। इस विधि में प्राकृतिक ढाल के अनुरूप निचले स्थानों पर एक तालाब बनाया जाता है, जिसे फार्म पाउण्ड कहते हैं। तालाब का आकार, फार्म की जल आवश्यकता तथा अपवाह जल के आयतन के अनुसार छोटा या बड़ा बनाया जाता है।

सार्वभौमिक जलवायु परिवर्तन (Global Climate Change)

अधिक सुख-सुविधा जुटाने की होड़ में आज मानवीय क्रिया-कलाप वायुमण्डल में ऊष्मा-शोषी (Heat Absorbing) गैसों को हरित गृह प्रभाव वाली गैसें भी कहते हैं। सम्पूर्ण सौर विकिरण का लगभग 44 प्रतिशत हिस्सा पृथ्वी के वायुमण्डल द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है जो बाद में धीर-धीरे अवरक्त विकिरण के रूप में अवरक्त किरणें (Infrared Rays) वायुमण्डल से निकल जाती हैं। किन्तु पिछले दो दशकों से हमारे वायुमण्डल में बढ़ती ऊष्मा शोषी

गैसों जैसे–कार्बन डाई आक्साइड, जलवाष्प, नाइट्रस आक्साइड, मीथेन, क्लोरोफ्लोरो कार्बन, सल्फरहेक्सा फ्लोराइड (SF_6) तथा ट्राइफ्लोरो कार्बन, (CF_3) सल्फरहेक्सा फ्लोराइड (SF_3) आदि के कारण वायुमण्डल अधिक उष्माशोषी होता जा रहा है और धरती अधिक गरम होती जा रही है।

तापमान में बढ़ोत्तरी केवल गर्मी बढ़ाने तक ही सीमित नहीं रहती बल्कि इसका पूरा और पर्यावरण पर गम्भीर असर पड़ता है तथा जलवायु का पूरा संतुलन बिगड़ जाता है। कहीं अतिवृष्टि तो कहीं अनावृष्टि (सूखा) पड़ने लगता है। कहीं पर जंगलों में आग लग जाती है तो कहीं पर भयंकर चक्रवात अपनी विनाशलीला का ताण्डव नृत्य करता है। जलवायु परिवर्तन का कहर धरती को हर तरफ से बरबादी की ओर ले जा रहा है। तापमान बढ़ने से दुनिया भर के पहाड़ों की चोटियों और ध्रुवों (Poles) पर जमी बर्फ पिघल रही है, बर्फ पिघलने से सागरों का जलस्तर ऊपर उठता जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने आइ.पी.सी.सी.(I.P.C.C.-Inter Govdernmental Panel on Climatic Change) नामक एक वैज्ञानिक दल का गठन किया है जिसकी ताजा रिपोर्ट के अनुसार यदि सागर केवल एक मीटर ऊपर उठ गया तो दुनिया के कई हिस्से हमेशा के लिए सागरों में विलीन हो जायेंगे। इसमें भारत का मालदीव, बांगलादेश, नील नदी का डेल्टा, फ्लोरिडा का तट और लुइसियाना का काफी हिस्सा शामिल है।

विश्व वन्य जीव कोष (2005) ने चेतावनी दी है कि आर्कटिक हिम के क्षेत्रफल का 9.2% हर दशक में घट रहा है जिसमें पोलर बीयर के लुप्त होने का खतरा बढ़ गया है। ब्रिटिश अंटार्कटिक सर्वेक्षण (2005) की रिपोर्ट के अनुसार लार्सन-बी नामक अंटार्कटिक आइस सीट खिसक रही है।

जलवायु परिवर्तन पर अंकुश लगाने के लिए 1997 की क्योंटो संधि के प्रावधानों का अनुपालन निष्ठापूर्वक किया जाय, परन्तु खेद इस बात का है कि अमेरिका, चीन आस्ट्रेलिया, जापान एवं भारत जैसे अधिक ऊष्मा शोषी (Heat Absorbing) गैसों का उत्पादन करने वाले देश क्योटो संधि की पुष्टि (Ratification) करने में आना कानी कर रहे हैं। यदि जलवायु परिवर्तन की प्रताड़ना से बचना है तो समस्त विश्व समुदाय को मिलकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना से संयुक्त प्रयास करना होगा।

अम्ल वर्षा (Acid Rain)

जब जल का PH_4 से कम हो जाता है तो वह जल जैविक समुदाय के लिए हानिकारक हो जाता है। मानव-जनित स्रोतों से निस्सृत सल्फर डाई ऑक्साइड (SO_2) तथा नाइट्रोजन के ऑक्साइड वायुमण्डल में पहुँचकर जल से मिलकर सल्फेट तथा सल्फ्युरिक एसिड (H_2SO_4) और नाइट्रस ऑक्साइड तथा नाइट्रिक अम्ल का निर्माण करती हैं। जब यह एसिड वर्षा के जल के साथ नीचे गिरता हुआ धरातलीय सतह पर पहुँचता है तो उसे अम्ल वर्षा कहते हैं।

अम्ल वर्षा के कारण भवनों में संक्षारण (Corrosion) के कारण क्षति होती है। मथुरा स्थित तेल शोधनाशाला से उत्सर्जित सल्फर डाइआक्साइड के कारण ताजमहल की संगमरमरी दीवालों को क्षति होने की शंका कई बार व्यक्त की गयी है।

ऊष्मा द्वीप (Heat Island)

नगरों के संरचनात्मक तथा कार्यात्मक कारणों से नगरों के ऊपर का वायुमण्डलीय तापमान बढ़ जाता है जो गाँव के ऊपर शीतल वायुमण्डल की अपेक्षा गर्म द्वीप के रूप में ऊपर उठा रहता है, जिसे उष्मा द्वीप की संज्ञा दी जाती है। यह ऊष्मा द्वीप सतह मे लगभग 1 से 2 कि.मी. की ऊचाई पर बनता है।

प्रदूषण गुम्बद (Pollution Domes)

नगर की गर्म हवायें फैलकर ऊपर उठती हैं। इन हवाओं के साथ नगर की धूल, प्रदूषण तत्व, विषाक्त पदार्थ तथा उद्योगों एवं परिवहन से विसर्जित कार्बन-डाइआक्साइड, सल्फर डाइऑक्साइड, इत्यादि भी ऊपर उठकर गुम्बद के रूप में स्थापित हो जाता है, जिसे प्रदूषण गुम्बद या जलवायु गुम्बद कहा जाता है।

ग्लोबल वार्मिंग (Global Warming)

ग्लोबल वार्मिंग से तात्पर्य वैश्विक औसत तापमान में हुए वृद्धि से है। पिछले कुछ दशकों में पृथ्वी और इसके वायुमण्डल का तापमान लगातार बढ़ रहा है। वैश्विक तापमान के इसी वृद्धि को ग्लोबल वार्मिंग की संज्ञा पर्यावरण विदों द्वारा दी गई है।

ग्लोवल वार्मिंग का मुख्य कारण पर्यावरण प्रदूषण के लिए उत्तरदायी ग्रीन हाउस गैसें तथा पर्यावरण प्रदूषण हैं। ग्रीन हाउस गैसें (जैसें– (CO_2) क्लोरोफ्लोरो कार्बन, मिथेन, नाइट्रस आक्साइड तथा ओगोन) पृथ्वी से पार्थिव विकिरण के रूप में उत्सर्जित ऊष्मा को अनन्त वायुमण्डल में जाने से रोके रखती हैं जिसके कारण वायुमंण्डल के औसत तापमान में वृद्धि हो जाती है।

सुपोषण (Eutrophication)

जल में अजैविक एवं जैविक पोषक तत्वों के सान्द्रण में वृद्धि को सुपोषण कहते हैं।

जल में पोषण पदार्थों की अधिकता भी जीवों को प्रभावित करती है। यह प्रायः स्थिर जलाशय, जैसे–तालाब, झील आदि में होता है। कागज की फैक्टरियों के अपशिष्ट पदार्थ, कसाईखाने का अपशिष्ट पदार्थ, वाहित जल, मल-मूत्र आदि में कार्बनिक पदार्थ अधिक होते हैं, जो जल में पहुँचकर जल की उत्पादकता को बढ़ा देते हैं। इसमें जलीय पौधे-शैवाल आदि अधिक वृद्धि करते हैं और जल की सतह को ढक लेते हैं। शैवाल आदि जलीय पौधे श्वसन क्रिया के लिए जल के अधिकांश ऑक्सीजन को अपने उपयोग में ले लेते हैं। जलाशय में जलीय जन्तुओं, मछली आदि के लिए ऑक्सीजन की कमी हो जाती है। परिणाम स्वरूप जलीय जन्तु आक्सीजन के अभाव में मरने लगते हैं।

जैविक ऑक्सीजन मांग (B. O. D.)

शुद्ध जल में घुले आक्सीजन की मात्रा 8 से 10 मिलीग्राम प्रति लीटर होती है, जो जलीय पौधों एवं जन्तुओं हेतु उपयोगी होती है, इसे जैविक ऑक्सीजन मांग कहा जाता है। जल में प्रदूषणकारी रासायनिक तत्वों के विसर्जन से जलाशयों में सुपोषण की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जिसमें जल में घुली ऑक्सीजन की मात्रा घट जाती है। फलस्वरूप जीवों हेतु जल की गुणवता घटने लगती है, जिसे जलीय प्रदूषण कहते हैं। ज्ञातव्य है कि जल में घुली ऑक्सीजन की मात्रा के 4 मिलीग्राम प्रति लीटर से कम होने पर जल को प्रदूषित कहा जाता है।

जैव सान्द्रण (Biomagnification)

अनेक प्रदूषणकारी पदार्थ पारिस्थितिकी तंत्र के खाद्य श्रृंखलाओं (Food Chain) में स्थापित हो जाते हैं जिसे जैव सान्द्रण (Bio-magnification) कहा जाता है। जैसे B.H.C., D.D.T., 2, 4D, पारा आदि। हमारे अनेक खाद्य पदार्थों–दूध, अनाज, फलों, सब्जियों तथा मछलियों के माध्यम से ये प्रदूषण हमारे शरीर में पहुँचते हैं जिसका हमारे स्वास्थ्य के ऊपर घातक प्रभाव पड़ता है। जैसे – पारा (मरकरी) का मछलियों में जैव सान्द्रण के कारण मनुष्य में मिनामाटा रोग होता है।

बायोरेमीडिएशन (Bio-remediation)

पर्यावरणीय प्रदूषकों को कम करने के लिए जीवित सूक्ष्म जीवों का प्रयोग बायोरेमेडिएशन कहलाता है। यह एक ऐसी प्रौद्योगिकी है जिसके माध्यम से पर्यावरण से प्रदूषकों को दूर किया जाता है। प्रदूषित स्थलों को उनके पूर्व-रूप में लाया जाता है तथा भविष्य में होने वाले प्रदूषण की रोकथाम की जाती है। यद्यपि इसके स्थानीय, क्षेत्रीय एवं वैश्विक प्रयोग भिन्न-भिन्न तरीके से किये जाते हैं। तथापि इस प्रोद्योगिकी का आधार सूक्ष्मजीवों की वह प्राकृतिक अपरिमित क्षमता है जिसके माध्यम मे जैविक योगिकों को नष्ट किया जाता है। सूक्ष्म जीवों की इस क्षमता को आनुवंशिक रूप से परिवर्तित सूक्ष्मजीवों (G.M.M.) का प्रयोग करके बढ़ाया भी जा सकता है।

पारिस्थितिकी चिह्न (Ecomark)

परिस्थितकी चिन्ह पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के निर्देश पर भारतीय मानक ब्यूरो द्वारा 1991 में आरम्भ किया गया जिसका उद्देश्य पर्यावरणीय दृष्टि से अनुकूल उत्पाद को पहचानना है। इसका प्रतीक चिन्ह (Logo) 'मिट्टी का बर्तन' है, जो कि पृथ्वी तथा इसके भंगुर लक्षणों को दर्शाता है। यह चिन्ह भारतीय मानक ब्यूरो (ISI) के तत्कालीन उप-महानिदेशक सी. जी. रमन द्वारा चुना गया था। इस योजना के उद्देश्य, निम्न हैं –

उत्पादों के प्रतिकूल प्रभाव को कम करना ।

यह कम्पनियों के लिए पुरस्कार का कार्य करता है। इससे पर्यावरण की गुणवत्ता में सुधार होता है तथा धारणीय या सतत् विकास का संवर्धन होता है।

लोगों को पर्यावरण की दृष्टि से अनुकूल उत्पादों को खरीदने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

इससे उपभोक्ता पर्यावरणीय दृष्टि से अधिक उंत्तरदायी हो जाते हैं।

पारिस्थितकी पर्यटन (Eco-Tourism)

'प्राकृतिक प्रदेशों का जिम्मेदारी भरा पर्यटन जो वहाँ के पर्यावरण के संरक्षण एवं स्थानीय लोगों के भलाई के उद्देश्य से किया जाय उसे ईकोटुरिज्म कहते हैं। इसकी अवधारणा सर्वप्रथम मौक्सिको के वास्तुकार हेक्टर सिबेलस लास्कयूरियन ने दिया था। तदनुरूप यदि विचार करें तो ईकोटुरिज्म के निम्न चार प्रमुख कारक होते हैं–

(1) किसी प्राकृतिक प्रदेश का भ्रमण एवं मनोरंजन/

(2) उस प्राकृतिक प्रदेश के बारे में जानकारी प्राप्त करना।

(3) उसकी परिस्थितिकी परिवेश अर्थात उस स्थल के प्राकृतिक परिदृश्य को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाना।

(4) स्थानीय लोगों की सामाजिक-आर्थिक एवं सांस्कृतिक भागीदारी।

पारिस्थितिकी अर्थव्यवस्था (Eco-Economy)

'पारिस्थितिकी अर्थव्यवस्था' शब्द वर्ल्ड वाच इंस्टीट्यूट के संस्थापक लीस्टर ब्राउन की पुस्तक से प्रचलित हुआ है। यह पुस्तक नये वैश्विक अर्थव्यवस्था का महात्वाकांक्षी व व्यापक रेखांकन करता है।

इस आन्दोलन के लोग अर्थव्यस्था को पारिस्थितिकी का एक उपसमूह मानते हैं, न कि पारिस्थितिकी को अर्थव्यवस्था का उपसमूह। पारिस्थितिकी अर्थ व्यवस्था में पृथ्वी को वस्तुओं के केन्द्र में रखा गया है तथा पारिस्थितिकी को अर्थव्यवस्ता से ऊँचा स्थान दिवा गया है।

एल-नीनो एवं ला-नीनो प्रक्रिया (El-Nino & La-Nino Phenomenon)

लगभग 3-8 वर्षों के अंतराल के बाद महासागरों एवं विश्व की जलवायु में एक परिवर्तन दिखाई पड़ता है, इससे कहीं बाढ़ आती है, कहीं सूखा। किसी क्षेत्र में शीत लहर का प्रकोप छा जाता है, कहीं गर्म हवाएं चलने लगती हैं, कुछ क्षेत्रों में भयानक तूफान आते हैं। यही पूर्वी प्रशांत महासागर से शुरू होकर पूरे विश्व में फैल जाता है। इस घटना को ही एल-नीनो कहा जाता है। वस्तुतः एल-नीनो पेरू के पश्चिमी तट से (प्रशांत महासागर) चलने वाली एक गर्म जलधारा है, जो लगभग सम्पूर्ण विश्व के जलवायु को प्रभावित करती है।

ओजोन परत एवं क्षरण की समस्या

वायुमण्डल के सम तापमंडल में स्थित ओजोन गैसों का 20 कि.मी. मोटाई वाला सघन आवरण पूरे मंडल को पृथ्वी की सतह से 40 कि.मी. की ऊंचाई पर घेरे रहता, जिसके कारण वायुमंडल में प्रवेश करने वाली पराबैंगनी किरणें इसी घेरे में अवशोषित हो जाती हैं।

ओजोन परत को नुकसान करने वाली मुख्य गैसें क्लोरोफ्लोरो कार्बन (CFC), मिथाईल क्लोरोफार्म ($CHCl_3$) कार्बन टेट्राक्लोराइड (CC_4I) आदि हैं।

नवीन अनुसन्धानों में ओजोन परत को हानि पहुँचाने वाले चार ऐसे रसायनों की पहचान की गयी है, जिनके सम्बन्ध में अब तक यह माना जाता था कि ये औजोन परत को हानि नहीं पहुँचाते। वे चार रसायन हैं–एन प्रोपाइल ब्रोमाइड, हेक्साक्लोरो ब्यूटाडाइन, हैलोन-1202 तथा ब्रामों 2 मेथॉक्सी-नेजालीन। इन चार रसायनों में सर्वाधिक हानिकारक रसायन एन प्रोपाइल ब्रोमाइड रसायन है।

पारिस्थितिकी कृषि (Eco-farming)

पारिस्थितिकीय कृषि, भूमि, वन्य-प्राणी, फसल, मत्स्य पालन, पशु-पालन, वन संरक्षण पौध-आनुवंशिक तथा पारिस्थितिकी तंत्र के संतुलित प्रबन्ध द्वारा पर्यावरण को प्रदूषित होने से वचाकर बर्तमान एवं भावी पीढ़ी के लिए भोजन एवं जीविकोपार्जन की व्यवस्था के साथ-साथ उत्पादकता एवं प्राकृतिक वास को बनाये रखने की पद्धति है।

समोच्च खेती (Contour Farming)

ढाल के उपर एक ही ऊँचाई के अलग-अलग दो बिन्दुओं को मिलाने वाली काल्पनिक रेखा को कण्टूर कहते हैं। ढाल के विपरीत कण्टूर रेखा पर किसी भी प्रकार की कर्षण क्रिया द्वारा खेती करना, समोच्च खेती कहलाती है।

इस विधि द्वारा खेती पहाड़ों पर की जाती है।

धरती, वायु, पर्वत, पानी
पर्यावरण के अंग ।
इन सबकी रक्षा करें
जीव-जन्तुओं के संग ।।

भारतीय मदार

एस. एस. दाश* एवं एम. अहमेदुल्लाह
भारतीय गणराज्य का वनस्पति उद्यान,
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, नोएडा

कैलोट्रापिस जाइजैन्शिया

मदार अथवा कैलोट्रापिस वंश को सामान्यतः ''मिल्कवीड'' या ''सिल्कवीड्'' कहा जाता है। इस वंश के नाम की उत्पत्ति ''सुन्दर नौतल'' जो फूल के बीच में उपस्थित ''किरीट'' से संबन्धित है, से लिया गया है। इसका कुल नाम ''अस्कलेपिओस'' से लिया गया है, जो औषधि एवं उपचार के ग्रीक देव माने जाते हैं।

ये पादप बिषैली हैं क्योंकि इनके तनों और पत्तों में कार्डिनालाइड़ मूलतत्व की मौजूदगी है। अतः इस वंश की सभी जातियों को शाकभक्षी कीट एवं पीडक नहीं खाते हैं। चरक संहिता में इस पादप के पारंपरिक प्रयोगों का जिक्र है। करीब 200 ईसा पूर्व से। कम मात्राओं में मदार को गठिया, जोड़ों का दर्द, सर्दी, खाँसी दाद, और दस्त जैसे बिमारियों के उपचार में लिया जाता हैं। आयुर्वेद में मदार शक्तिवर्धक, कफ निकालने वाली औषधि, रक्तशुद्धि, ज्वर कम करने का अथवा कृमिनाशक की भूमिका रखता है। इसका मूल, छाल कृमिनाशक एवं रेचक औषधि के रूप में काम आता हैं। पिसा मूल दमे, फेफड़े की सूजन, मंदाग्नि के उपचार में, एवं इसके पत्ते पक्षघात, सूजन और अन्तरीय ज्वर के इलाज में उपयोगी है। पत्तों में सक्रिय चार रासायनिक पदार्थ हैं :

(i) ग्लाइकोसाइड्स (ii) कैलोट्रापिन
(iii) असकेरिन (iv) कैलाटाक्सिन

कैलोट्रापिस के तन्तु का उपयोग रस्सी गलीचा, मछली फंसाने की डोरी और सिलाई घागा बनाने मे किया जाता है। कैलोट्रापिस का किण्वक् मिश्रण (लवणयुक्त) बकरी के खालों से बाल हटाने के प्रयोग में लाभदायक है जिससे किताब बांधने के सस्ता मुलायम चमड़े बनते हैं। कैलोट्रापिस की सामान्य डाक्तरी भारत में एवं विश्व भर में कर्क और रक्त जमने के विरुद्ध उपचार में प्रयोग किया जाता है।

मदार का वितरण :

इस वंश का वितरण मुख्यतः 6 जातियों में उष्ण कटिबंधीय अफ्रिका और एशिया में है। उत्तर अमेरिका, आस्ट्रेलिया तथा अन्य स्थानों में एक कष्टकारक खरपतवार के रूप में प्रकृतिस्थ है। भारत में इस वंश की तीन जातियाँ पाई जाई है–(i) कैलोट्रापिस प्रोसेरा (ii) कैलोट्राँपिस जाइजैन्शिया, (iii) कैलोट्राँपिस एशिया। पहली दो जातियाँ खुले मैदान में देश भर में उपलब्ध है, जबकि कैलोट्राँपिस एशिया देश के पूर्वी स्थानों में व्याप्त है (उ. प्र. तक)। इन जातियों में आकारिक प्रकृति की लेकर अन्तरजातीय एवं अवजातीय भारी भेद हैं।

भारत में मदार, मुख्यतः कैलोट्राँपिस प्रोसेरा को दर्शाता है एवं सारे औषधीय उपचार में इसे लिया जाता है। इसे और कैलोट्राँपिस एशिया को अलग करना जितना आवश्यक है उतना ही जटिल है। इनमें अन्तरजातीय भिन्नताऐं बहुत कम है। इसकी खोज हमें इन तीनों जातियों के तुलनात्मक आकलन की ओर ले जाता है। इसे खोजपत्रिका में

आकारिक जटिलता की सही पहचान के लिए एक कुँजी एवं तीनों जातियों की पुष्प की रेखाकृति दी गई है जो वनस्पतिज्ञों एवं जन साधारण के लिए सहायक होगी।

कैलोट्रापिस प्रोसेरा

आकारिक प्रकृति :-

आकारिक अध्ययन कैलोट्राँपिस वंश की सीमा स्थिर करने में मुख्य भूमिका निभाती है। आकारिक गुणों के वर्जन मैदानी प्रेक्षण एवं पादपालय नमूनों के आधार पर प्राप्त हुआ है। आकारिक भेदो की कुंजी तालिका में दी गई है।

सभी जातियाँ क्षुप और तनें काष्टमय है। प्रसंगवश कैलोट्राँपिस जाइजेन्शिया छोटा पेड़ भी हो सकता है। कैलोट्राँपिस प्रोसेरा और कैलोट्राँपिस एशिया शीर्ष की ओर एवं कैलोट्राँपिस जाइजेन्शिया आधार से शाखित है। कैलोट्राँपिस जाइजेन्शिया की सभी जातियों के तनें गोल, पर्व छोटे (1.5-7 से.मी.)एवं नवीन अंश कपासक आशुपाती होते हैं।

सभी जातियों में पत्ते सम्मुख, व्रासित और आकार अण्डाकार दीर्घायत से स्वेचूलाकार हो सकते हैं। कैलोट्राँपिस प्रोसेरा के उपरी पत्ते सूक्ष्मतः आलिंगनबद्ध हैं जबकि बाकी जातियों में ये मुक्त है। पत्तों में आघार सुंड़ित है कैलोट्राँपिस जाइजेन्शिया में जबकि बाकी जातियों में ये हृदयाकार है। कैलोट्राँपिस प्रोसेरा एवं जाइजेन्शिया के पत्तें आंशुपाती अरोमिल है जबकि कैलोट्राँपिस एशिया की उपरी पृष्ठ अरोमिल एवं निचली पृष्ठ रक्तपति रोमिल है।

पुष्पक्रम :-

पुष्पक्रम कक्ष या अन्तस्थ परिमीत ससिमाक्ष है। कैलोट्राँपिस प्रोसेरा की पुष्पावलीवृन्त आशुपाती रोमिल है, जबकि कैलोट्राँपिस एशिया में ये चिकनी है। कैलोट्राँपिस जाइजेन्शिया की कलिका दीर्घाकृत है जबकि बाकियों में ये संपीड़ित है।

पुष्प :

पुष्प द्विपारिदलपुंजी एवं पंचतयी हैं। कैलोट्राँपिस जाइजेन्शिया में दल विक्षोपित है और बाकियों में ये सीधा है। दल गुद्दार, अण्डाकार, भालाकार एवं चिकनी है। कैलोट्राँपिस जाइजेन्शिया सूक्ष्मतः रोमिल है। सभी जातियों में ताज की संरचना विशिष्ट एवं अद्वितीय है। जातियों की पहचान में यह महत्वपूर्ण साधन है। सभी जातियों में ताज पुंकेसर स्तंभ से संलग्न है। कैलोट्राँपिस प्रोसेरा में पुंकेसर स्तंभ ताज से छोटे होते हैं जबकि बाकियों में ताज छोटे होते हैं। कैलोट्राँपिस प्रोसेरा एवं जाइजेन्सिया में पुंकेशर स्तंभ की गाठ पश्चमुखी है जबकि कैलोट्राँपिस एशिया में ये वक्र है। कैलोट्राँपिस एशिया में ताज पालिकाएं नहीं है जबकि कैलोट्राँपिस प्रोसेरा एवं कैलोट्राँपिस जाइजेन्शिया में यह द्विपालिवत है। कैलोट्राँपिस प्रोसेरा में ताज का बाहरी किनारा चिकना है जबकि अन्य जातियां में यह सूक्ष्मतः रोमिल है। सभी जातियों में पुंकेशर पाँच हैं और परागपिंड 5 है। पराग कोशिकाओं में परागपिंड निर्जन हैं। कैलोट्राँपिस प्रोसेरा में परागपिंड पखिक ओर हैं, कैलोट्राँपिस जाइजेन्शिया में आधार की ओर सान्द्रित हैं। जबकि कैलोट्राँपिस एशिया में परागपिंड फैले हैं।

पुटल :

युग्म पुटल साधारणतः कैलोट्राँपिस वंश की जातियों में है। कैलोट्राँपिस प्रोसेरा की शुरुआती स्थितियों में रुद्धवृद्धि

की बहुत प्रवृति होती है। पुटल नौकारूपी, स्फीत, ऊपर की ओर एवं निचली हिस्से में लम्बाग्र हैं। कभी कभी एक पुष्पवृन्त में दो पुटल होते हैं जो द्विअण्डप स्थिति के लक्षण हैं। प्राकृतिक परागण कार्पेन्टर मधुमक्खियाँ (Xylocojoa) हैं। गर्मी में बड़े सफेद फूल उन्मत्त मुद्गी रूपी फुटबाल् आकार धारण करने वाले पुटल उत्पन्न करते हैं। असंख्य बीजों को मुक्त करने के लिए गिराव में पुटल खुलते हैं। बीज मे एक किस्म के रेशमी सफेद धागे (कोमे) जुड़े हैं जो हवा से विकरण को सुगम बनाते हैं।

तालिका- कैलोट्रापिस की जातियों का तुलनात्मक विश्लेषण

कैलोट्रापिस प्रोसेरा	कैलोट्रापिस जाइजेन्सिया	कैलोट्रापिस एशिया
तना : सीधा, शीर्ष की ओर शाखित, गोल 8-14सेमी, लंबी, नवीन एवं पुराण अंश काप्सिक रोमिल, पार्श्व शाखाओं में पुष्पक्रम नही है।	**तना** : सीधा, आधार से शाखित गांठ फूलाहुआ, पर्व गोल, 1.5-7 सेमी लंबी, नवीन अंश काप्सिक रोमिल है।	**तना** : सीधा, शीर्ष की ओर शाखित, पर्व वर्तुल, 4-8.5 सेमी लंबी, पुराण अंश अरोमिल, नवीन अंश श्वेत आशुपाती रोमिल है।
पत्ता : विपरीत, क्रासित, अवृंत, उपरी पत्ते कभीकभी आलिंगनबद्ध है तनों से बारीकी से लंबाग्र शीर्ष, आधार हृदयाकार, पार्श्व तन्त्रिका 5-8, आशुपाती कपासक रोमिल दोनों तरफ, आधार पालिवत नली, जिनमें बारीक रोम विरलों की वलय है।	**पत्ता** : विपरीत, क्रासित, दीर्घवृत्ताकार दीर्घायत या स्पेचलाकार 3-15 x 1.5-8 सेमी शुंडित आधार कर्ण की रोम पुंजमय एवं पतला, शीर्ष लंबाग्र; पर्णवृन्त 1-1.5 सेमी लंबी खांचा,पार्श्व तन्त्रिका 4-9 जोड़ियाँ, स्च्छ अभ्यक्ष ओर	**पत्ता** : विपरीत, क्रासित, पत्रवृन्त बारीक, 6.5-16.5 x 4.5-11.5 सेमी, अधोमुख अंडाकार, शीर्ष मंडलाकार या तीव्र उदग्र आधार हृदयाकार, उपरी भाग चिकनी, नीचे संतपाति, पार्श्वतन्त्रिका 4-7 जोड़ियाँ, शीर्ष की ओर अस्पष्ट
पुष्प : 2-9 सेमी, गोल, गुददेदार, आशुपाती रोमिल, पुष्पवृन्त युग्म, गोल, 1-3 सेमी लंबी, फुटल वृन्त उपरी ओर वक्र कलिका संपीडित	**पुष्प** : गोल, 3.5-5 सेमी लंबी, पुष्पवृन्त जोड़ीदार, 2-2.5 सेमी लंबी, आशुपांती रोमिल, कलिका दीर्घाकृति	**पुष्प** : गोल, 5 सेमी, लंबी, पुष्पवृन्त गोल, 1-2.5 सेमी लंबी, चिकनी, कलिका संपीडित
बाह्यदल पुंज : 5 पालि, आधार बारीकी से सहजात, अण्डाकार भालाकार, 6X4 मी.मी. शीर्ष तीव्र, चिकनी, किनारे कमानी समान	**बाह्यदल पुंज** : 5 पालि, आधार सहजात, 6x4 मी.मी, अण्डाकार, शीर्ष लंबाग्र, किनारे कागजीय, रोमिल, भूरा एवं घना	**बाह्यदल पुंज** : 5 पालि, रेखाकार, भालाकार, आधार हल्की सी साहजात पालिकाएँ 5-7-2x3-7 मी.मी., शीर्ष लंबाग्र, चिकनी
दल : 5 पालि, अण्डाकार, भालाकार, 1.8x1 सेमी, शीर्ष तीव्र, पतली किनारा, चिकनी	**दल** : 5 पालि, 1.8x.8 सेमी, रेखाकृति, अण्डाकार, शीर्ष लंबाग्र, सुंडित, आधार बारीकी से रोमिल	**दल** : 5 पालि, 1.3x.7 मी.मी., अण्डाकार, शीर्ष लंबाग्र, चिकनी
ताज : 5 पुंकेसर स्तंभ से संलग्न, लंबी, बाहरी किनारा चिकना, शीर्ष की ओर द्विपालित, आधार पें गांठ पर्शमुखी, शीर्ष पर कर्ण अविद्यमान	**ताज** : पुंकेसर से संलग्न, छोटी 11x5 मी.मी. बाहरी किनारा घना, रोमिल, आधार गांठ पर्शमुखी, शीर्ष में द्विकर्ण, संपीड़ित	**ताज** : पुंकेसर स्तंभ से पूरा पूरी जुड़ा हुआ, आधार गांठ बक्र कर्ण अविद्यमान; पार्श्व किनारा चिकना, बाहरी किनारा, बारीकी से रोमिल
पुमंग : पुंकेसर 5, परागपिंड 5 पराग परिवक्र पीला चिपचिपा,	**पुमंग** : परागपिंड 5, पराग, आधार की ओर सान्द्रित, श्वेत	**पुमंग** : परागपिंड 5, पराग, पूरी तरह से फैला हुआ, श्वेत
पुटल : युग्म, एक रुद्धवृद्धि, फुला हुआ, शीर्ष लम्बाग्र, कभी-कभी आधार में सहजात, बीज हल्की भूरी, कीमा हल्की सफेदी, रेश्मी	**पुटल** : जुग्म,3.5-9x2-3.5 सेमी नौका रूपी, शीर्ष लंबाग्र, रोमिल	**पुटल** : जुग्म, दो, उपर की ओर वक्र 10x5 सेमी, अण्डाकार, दिर्घायत, शीर्ष लंबाग्र, बीजों में कोमा रेश्मी एवं श्वेत

सिक्किम हिमालय के कुछ रोचक पेडिकुलारिस (PEDICULARIS)

ए. के. साहू एवं ए. ए. अन्सारी*
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता
*भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, गान्तोक

पेडिकुलारिस लोन्गीफ्लोरा

उत्तर पूर्वी राज्यों में पूर्व हिमालय का सिक्किम 7096 वर्ग क्षेत्र का एक छोटा राज्य है जो देश के कुल क्षेत्रफल का मात्र 0.2 प्रतिशत है। सिक्किम के उत्तर में चीन देश, पूर्व में भूटान देश, दक्षिण में पश्चिम बंगाल राज्य एवं पश्चिम में नेपाल देश स्थित है। इस राज्य में लगभग 4000 प्रजाति के पुष्पी पेड़ - पौधे मिलने का आकलन किया गया है। सिक्किम हिमालय को 'वनस्पतिज्ञों का स्वर्ग' माना गया है। पूर्वी हिमालय के अन्य राज्यों की तरह यहाँ के वनस्पतियों में पुष्प जुलाइ से अक्टूबर तक देखे जाते हैं। इसी के दैरान यह राज्य पर्यटक तथा वनस्पतिज्ञों का आकर्षण स्थल बन जाता है।

पेडिकुलारिस की पूरे संसार में लगभग 500, एवं भारत वर्ष में 80 से 100 तक प्रजातियाँ मिलने का एक आकलन है। लगभग 50 पेडिकुलारिस की प्रजातियाँ सिक्किम हिमालय में मिलने का एक आकलन है जो कि पूर्व हिमालय का एक हिस्सा है। पेडिकुलारिस (Pedicularis) स्क्रेफुलारियेसी (Scrophulariaceae) कुल का सदस्य है। यह सिक्किम हिमालय में 2200 से 4400 मी. तुंगता तक मिलते हैं। इनकी ऊँचाई 4 से 50 से.मी. तक होती हैं तथा फूल ज्यादातर गुलाबी एवं पीले रंग के होते हैं, कभी-कभार सफेद रंग के फूल भी देखे जाते हैं।

सिक्किम हिमालय के कुछ रोचक पेडिकुलारिस वर्ग का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

क. पेडिकुलारिस एल्युसी (Pedicularis elwesii Hook.f.) 3800-4200 मी. की तुंगता पर पाया जाता है। 10-20 से.मी. तक लम्बा होता है। पत्ते एकान्तर क्रम में सजे होते हैं तथा लम्बाई 4-7 से.मी. तक होता है। पत्ते के किनारे दंतीय होते हैं। इसके फूल गाढ़े गुलाबी रंग के होते हैं। उपरी पंखुरी 4 से.मी. तक लम्बी होती है। दलपुंज नलिका की लंबाई वाह्यदलपुंज से ज्यादा नहीं होती है।

ख. पेडिकुलारिस लोन्गीफ्लोरा (Pedicularis longiflora Rudolph) 3500-5500 मी. की तुंगता पर पाया जाता है। 5-10 से.मी. तक लम्बा होता है। पत्ते की लम्बाई 3-5 से.मी. होती है। पत्र का किनारा कम दंतीय होता हैं। इसके फूल सुनहले पीत रंग के होते हैं। दलपुंज का निचला सतह रोमश होता है। वाह्य दलपुंज का किनारा दंतीय होता है।

पेडिकुलारिस मेगालेन्था

ग. पेडिकुलारिस मेगालेन्था (Pedicularis megalantha D, Don) 2700-3900 मी. की तुंगता पर पाया जाता है। यह पौधा 30-50 से.मी. तक लम्बा होता है। पत्ते की लम्बाई 5-20 से. मी. तक होती है। पत्र का किनारा पक्षवत् खण्डित होता हैं। इसके पुष्प-मंजर की लम्बाई 7 से.मी. होती है। दलपुंज वाह्यदलपुंज की तुलना में काफी लम्बे होते हैं। इसके फूल बड़े और गुलाबी रंग के होते हैं।

पेडिकुलारिस एल्युसी

घ. पेडिकुलारिस साइफोनेन्था (Pedicularis siphonantha D. Don) 3600-4200 मी. की तुंगता पर पाया जाता है। पौधा 5-12 से. मी. तक लम्बा होता है। इसके पत्ते की लम्बाई 2-4 से. मी. तक होती है। पत्र का किनारा सूक्ष्म रूप से पक्षवत् खण्डित होते हैं। इसके फूल हल्के गुलाबी रंग के होते हैं। दलपुंज नालिका वाह्यदलपुंज से काफी लम्बे होते हैं।

इसके अतिरिक्त पी. स्कुलियाना (P. sculliyana Prain ex Maxim) पी. मौलिस P. Mollis Wall. ex Benth.) पी. बाइफिडा (P. bifida (D. Don) Pennell), पी. एल्बिफ्लोरा (P. albiflora (Hook. f.)Prain) पी. क्लैर्की (P. clarkei Hook. f.) पी. कोलाटा (P. collata Prain), पी. कोन्फर्टीफोलिया (P. confertiflora Prain), पी. डेनुडाटा (P. denudata Hook. f.) पी. डिफ्यूजा (P. diffusa Prain), पी. एक्सेलसा (P. excelsa Hook. f.) पी. फ्लेक्सुओसा (P. flexuosa Hook. f.), पी. फुरफुरेशिया (P. furfuracea Wall.), पी. ग्लोबिफेरा (P. globifera Hook. f.), पी. ग्रसिलिस (P. gracilis Wall.), पी. इन्सटार (P. instar Orain ex Maxim.), पी. इन्ट्रिगीफोलिया (P. integrifolia Hook. f.), पी. लैछनोग्लोसा (P. lachnoglosa hook.f.), पी. माइक्रोकैलिक्स (P. microcalyx Hook. f.) पी. नेपालेन्सिस (P. nepalensis Prain), पी. नाना (P. nana C.E.C. Fischer), पी. पैन्टलिन्गी (P. pantlingii Prain), पी. पेनिलिआना (P. pennelliana Tsoong), पी पोरेक्टा (P. porrecta Wall. ex Benth.) पी. रेजीलिआना (P. regeliana), पी. रोयेली (P. roylei Maxim.), पी. साइजोरिन्चा (P. schizorrhyncha Prain), पी. ट्राइकोडोन्टा (P. trichodonta Yamazaki), पी. ट्राइकोग्लोसा (P. trichoglossa Hook.f.) आदि सिक्किम हिमालय में पाये जाते हैं।

पेडिकुलारिस साइफोनेन्था

पेडिकुलारिस पुष्प उच्च तुंगता में सभी दर्शकों को आकर्षित करता है। पश्चिम हिमालय में पाये जाने वाली पी. पेक्टिनाटा (P. pectinata Wall.) एवं सिक्किम हिमालय में मिलने वाले पी. साइफोनेन्था (P. siphonantha D. Don) की पत्तियाँ पेशाब सहज करने के लिए (Diuretic) व्यवहार किया जाता है। पर्यटकों का भ्रमण स्थल पर अत्यधिक आगमन एवं आकर्षक पौधों का संग्रहण इस पौधे के विरल होने का एक कारण हो सकता है। हमें यह ध्यान रखना है कि पर्यटन के साथ-साथ सिक्किम हिमालय में पेडिकुलारिस प्रजाति के जैव-विविधता का भी संरक्षण हो।

पर्यावरण

आर. के. गुप्ता
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा
एवम्
संगीता कुमारी
जगाछा, हावड़ा

पर्यावरण संरक्षण की जब बातें चलती,
हर गली नुक्कड़ से ये आवाजें आती।
वृक्ष लगाओ पर्यावरण बचाओ,
वृक्ष लगाओ जंगल बढ़ाओ।
पर हकीकत सामने आती,
मेरी आँखें नम हो जाती।
हर तरफ कटे दरख्तों का ढ़ेर है,
कुछ नहीं यह शीशम का पेड़ है।
उजड़ा चिड़ियों का आशियाना,
जो था कभी उसका ठिकाना।
घटते वन ने दिए हमें गम,
वहीं हुआ मिज़ाज मौसम का गर्म।
बढ़ते तापक्रम का जोर है,
मची त्रासदी चारों ओर है।
मौसम भी अब हुआ बेगाना,
कब यह बदले नहीं ठिकाना।
अब भी संभल जा ऐ इंसान,
वक्त की नज़ाक्त को पहचान।
इसे महज नारा मत समझो।
इसकी कीमत को अब समझो।
अब यह शपथ उठाना है,
प्रत्येक को एक वृक्ष लगाना है।

———————

वर्तमान परिवेश में आधुनिकता की अंधी प्रतिस्पर्धा में ईश्वर प्रदत्त प्राकृतिक संसाधनों का असीमित दोहन मानव समाज कर रहा है। प्रस्तुत रचना में वर्तमान समय में जीव जगत पर इसके कुप्रभावों पर प्रकाश डालते हुए मानव समाज से, इन लुप्त होते प्राकृतिक साधनों के विकास की अपेक्षा की गयी है जिससे भविष्य मानव एवं समस्त जीव जगत के लिए कल्याणकारी और सुखमय हो सके, क्योंकि प्रकृति और प्राणी का सम्बन्ध अटूट और अभिन्न हैं।

प्रकृति और प्राणी

विभूति प्रकाश
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद।

प्रकृति के दोहन का दुष्प्रयास,
देता है जग को दुःसह त्रास।
पौधे सूखे, जंगल सूखे,
सूखी उपवन की हरियाली।
विस्तृत जल स्रोत सिमट करके
देता है जग को बेहाली।
जीव जगत का जीवन रूठा,
रूठी इस जग की सुन्दरता।
भौतिक सुख साधन की होड़ में,
घायल हो कराह रही मानवता
मानव–मानव से भिन्न हुआ,
भौतिक सुख आज अभिन्न हुआ।
मानव समाज मानवता से परे,
तो धरती का सौन्दर्य कैसे निखरे?
हरियाली इस धरती का आभूषण,
मानव ने कर लिया इस पर अतिक्रमण।
हरियाली विहीन इस धरती पर,
जल संसाधन गिन रहा अन्तिम क्षण।
सुन्दर जलद शृंखलाओं को,
कर रहा सूर्य ताप अभिशप्त।

शापित यह सुन्दर जलद पंक्ति,
करती आपस में करुण रूदन।
शापित हम सब, शापित मानव,
शापित है उसका सुन्दर जीवन।
शापित, जीव जगत की रक्षा में,
तत्क्षण तत्पर हो जा मानव।
असीमित पौधों का आरोपण कर,
इस धरती को दो उसका आभूषण।
माँ वसुधा के आशीर्वाद से तुम,
पाओगे सुन्दर सुखमय जीवन।
नदियाँ होंगी, झरने होंगे,
होगा असीमित जल प्रपात।
वन होंगे, उपवन होंगे,
हरियाली होगी बेशुमार।
त्यागो प्रकृति के दोहन का दुष्प्रयास,
पृथ्वी को दो तुम नव विकास।
प्रकृति के दोहन का दुष्प्रयास,
देता है जग को दुःसह त्रास।

शुद्ध हवा स्वच्छ हो पानी ।
स्वस्थ रहेगा हर एक प्राणी ।।
प्राण वायु के वृक्ष आधार ।
करें न हम इनका संहार ।।

बदला कैसे, मौसम का मिजाज

श्री भोला नाथ
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

धरती से जंगल के विनाश को, जग बोले, कुछ भी पता नहीं।
बदला कैसे, मौसम का मिजाज, ये हाल, किसी से छुपा नहीं।।
जब तक थे धरती पर जंगल, सूखा अकाल का नाम न था।
चहुँ ओर धरा पर अमन चैन, मौसम इतना बदनाम न था।।
उस सम्पन्न प्रकृति के प्रांगण में, जैविक विकास कभी रूका नहीं।
बदला कैसे, मौसम का मिजाज, ये हाल किसी से छुपा नहीं।।
जंगल के बिना, बादल न बनें, बादल के बिना बरसात नहीं।
बरसात बिना जल श्रोत असंभव, नव जीवन की शुरूआत नहीं।।
है भाग्यशाली यह धरती, जहाँ प्रकृति तंत्र कभी बँटा नहीं।
बदला कैसे मौसम का मिजाज, ये हाल, किसी से छुपा नहीं।।
धरती पर बढ़ता नित तापमान, ज्यों शोला बरसाए आसमान।
इस भूमण्डल के ध्रुवीय क्षेत्र में, नित पिघल रहे हिमखण्ड महान।।
हुआ असंभाव्य प्रकृति परिवर्तन, कभी पहले धरती पर घटा नहीं।
बदला कैसे मौसम का मिजाज, ये हाल, किसी से छुपा नहीं।।
शोध, खोज की गणना से जाना, धरती पर क्या होने वाला।
जंगल विहीन, इस वसुंधरा से, क्या, सब कुछ है खोने वाला।।
आखिरी बसंत की आहट सुनिए, अभी खतरा धरती से टला नहीं।
बदला कैसे, मौसम का मिजाज, ये हाल, किसी से छुपा नहीं।।
यदि धरती पर चैन से रहना है, तो वन विनाश को बंद करें।
शहरों के गंदे मल जल को, नदियों में बहाना बंद करें।।
धरती को चैन से रहने दें, अभी धरती से सब कुछ मिटा नहीं।
बदला कैसे, मौसम का मिजाज, ये हाल, किसी से छुपा नहीं।।
यदि वृक्षों को उगाना पुण्य कार्य हो, जंगल को बढ़ाना धर्म बड़ा
इस भू-मण्डल के सम्पूर्ण पटल पर, वृक्षारोपण ही हो कर्म बड़ा।।
है इतिहास साक्षी सभ्यताओं का, मानव गलती कर झुका नहीं।
बदला कैसे, मौसम का मिजाज, ये हाल, किसी से छुपा नहीं।।
धरती की सुरक्षा हेतु जगत में वैज्ञानिक प्रयास नित जारी हैं।
मानव की गतिविधियों से प्रभावित, आखिर यह दुनियाँ सारी है।।
अब जन सहयोग जरुरी है, जो अब तक आकर जुटा नहीं।
बदला कैसे, मौसम का मिजाज, ये हाल, किसी से छुपा नहीं।।

———————

प्रस्तुत कविता में प्रकृति और जल का सम्बन्ध बताते हुए प्राणी मात्र के लिए जल के महत्व को समझाने का प्रयास किया गया है और आधुनिक परिवेश में सुखद भविष्य के लिए जन समुदाय से संरक्षण की अपेक्षा की गई है ।

प्रकृति और जल

अनुराधा सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

हिमगिरि का यह प्रबल समर्थन,
देता है सबको आकर्षण।
हिम देता नदियाँ और निर्झर,
जल देता है जीवन सम्बल।
जल देता है घन वन, उपवन
यही प्रकृति का है अतुलित धन।
प्रकृति सुरक्षा करती जग की
जीवन रक्षा करती सबकी।
जीवन जीव को प्यारा होता
जल ही जग में न्यारा होता।
जलचर, थलचर नभचर प्राणी,
करते सब जल की अगवानी।
विषय विकार मिटाता जल ही,
प्रकृति संतुलन करता जल ही।
जल को व्यर्थ करो मत भाई,
जल जीवन में है सुखदाई।
जल देता हमको हरियाली,
वायु शुद्ध करता है सारी।
व्योम शून्य होता है जब–जब,
जल वसुधा को धोता तब–तब।
सदा नवीनोद्भिद उपजाता,
जल प्राणी को सुखी बनाता।
जल है पूर्ण प्रकृति का जीवन,
हिमगिरि का यह प्रबल समर्थन।
देता है सबको आकर्षण।।

———————

पर्यावरण समाचार

संकलक : **संजीव कुमार**
मुख्यालय, कोलकाता

पीपल के वृक्ष से भला कौन परिचित नहीं है। इसे अलग अलग स्थानों पर अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है। पीपल संस्कृत के पिप्पल शब्द से लिया गया है। संस्कृत में यह अश्वत्थ, पिप्पल, चलपत्र, गजाशव जैसे नामों से पुकारा जाता है। पीपल को तमिल में अरसमरम, तेलगु में रविमनु, कन्नड़ में अरूलिमर, बंगला में अश्वत्थ, मराठी में पिपल, गुजराती में पीपलों और मलयालम में अश्वत्थम कहते है। पीपल को तिब्बत में लालचट और श्री लंका में बो कहते है। जापान में इसे वादारजयू कहते है, जिसका अर्थ है बोधि वृक्ष ।

अगर आप कार्यालय में काम के बोझ से थके और तनाव महसूस करते हो तो अपने आसपास गमलों में पौधे लगाएं। कार्यालयों में लगे पौधे वहां काम करने वालों के स्वास्थ्यके लिहाज से बेहद उपयोगी होते हैं। ये उन्हें सारा दिन तरोताजा रखते हैं। हरे भरे पौधे आसपास हो तो उनसे सिरदर्द, खुश्क त्वचा, गले का सूखना और थकावट जैसी परेशानियां बिल्कुल नहीं होती ।

ग्लोबल वार्मिंग के कारण जमीन ही नहीं समुद्रों में भी रेगिस्तान बनने लगे हैं। इन रेगिस्तानों में जल तो है पर जीवन के लिए जरुरी ऑक्सीजन गायब हो रही है। उष्णकटिबन्धीय क्षेत्र के समुद्रो में पिछले पांच दशकों से ऐसे क्षेत्र बनते जा रहे हैं जहां से आक्सीजन गायब है ।

एक सरकारी आंकड़े के अनुसार प्रदूषण के मामले में पंजाब का लुधियाना शहर सर्वाधिक प्रदूषित है। जबकि दिल्ली का 16वां स्थान, कोलकाता का 39वां व मुंबई का 45वां स्थान है।

एक अध्ययन के अनुसार जिन फूलों की डालियां अपेक्षाकृत लंबी होती है वे हवा में कुछ ज्यादा ही इठलाते हैं और यह झूमना कुछ और नहीं बल्कि आसपास से गुजरने वाली तितलियों और अन्य कीटपंतगों को करीब बुलाने का इशारा होता है। शोध के मुताबिक हवा में झूमते फूल कीट पतंगों को ज्यादा तेजी से आकर्षित करते हैं जिससे इन फूलों में इनकी सहायता से परागण की क्रिया बड़ी तेजी से संचालित होती है।

जापान कें कौए आम आदमियों के लिए परेशानी का कारण बना हुआ है। इनकी संख्या प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। गंदगी फैलाकर इलाकों को प्रदूषित करते हैं। इनके कारण बिजली गायब होने की समस्या पैदा हो गई है। ये कौए बिजली के खंभो में घोसला बना लेते हैं और बिजली के संचालन में बाधा डालते हैं। कौए बच्चों के मुख से चाकलेट छीनने के चक्कर में अक्सर बच्चों को जख्मी कर देते हैं।

पान से शीतल पेय बनाने की परियोजना के तहत हावड़ा के सांकराइल मे जलाधुलागढ़ी में प्रक्रिया आरम्भ होने की उम्मीद है। यादवपुर विश्वविद्यालय ने पान से पेय बनाने की प्रक्रिया विकसित किया है। इस प्रक्रिया से पान की खेती करने वाले कृषक लाभान्वित होंगे ।

कलिहारी लिलिएसी कुल का पौधा है। यह शोथ कंठमाल, गठिया एवं वात वेदना, कुष्ठ व अर्श में टनिक के रूप में उपयोगी है। यह जटिल प्रसव को आसान बना देने एवं गर्भपात अथवा प्रसव उपरांत पेट में बचे आंवल एवं मांस के टुकड़ो को आसानी से बाहर निकाल देने की क्षमता रखती है।

—— सभी समाचार दैनिक जागरण के सौजन्य से

———————

पुष्प परिचय

नवीन चौधरी

हिन्दी	बंगला	अंग्रेजी
अमलतास, बन्दरलौरी	सोनाली, बन्दरलाठी	इंडियन लेबर्नम
गिरमाला	सोनडाला	गोल्डेन शावर
अनार, दाड़िम	डालिम	पोमेग्रेनेट, ग्रेनेडा
अर्जुन, जारूल	अजर	क्वीन आफ फ्लावर्स
अर्जुन, मरूथु, कोह	अर्जुन अर्झन	ह्वाइट मुरदाह
कहुआ, जामला	काहू	
अरूणज्योति	अरूणज्योति	ब्रेजिलेटोवुड, कॉपर पॉड, येलो फ्लेम ट्री
अशोक	अशोक	सारोलेस ट्री
आक, अकोंद	अकन्द	क्रॉन प्लांट, जायंट मिल्कवीड़
आभा	श्वेताभा	स्टिंकवुड
उर्वशी	उर्वशी	क्वीन ऑफ फ्लावरिंगट्री फ्लेम एमहर्स्टिया
कचनार	रक्तकंचन, बिदुल कविदारा	माउंटेन इबोनी, वेरिगेटा बाउहिनिआ
कदम्ब	कदम्ब	कदम्ब
कनकचम्पा	रामधन चम्पा	बर्डस आइबुश, गोल्डेन चम्पक
कस्तूरी	कस्तूरी	सुरिनाम बिटरवुड कैर्सिया
कामिनी	कामिनी	ऑरेंज जोस्मिन, चाइनिजबॉक्स
		सेनवुड, सुमात्रा बाक्स
कुटज	कुर्ची	इस्टरट्री, आइवरी ट्री
केवड़ा	केया, केतकी	स्क्रू पाइन, अम्ब्रेला ट्री, निकोबार ब्रेड फ्रुट
कंटक लिली	कंटक लिली	प्रिकली एपल, स्पैनिश ग्वामा
खैर चम्पा	लाल गुलंच, लाल गोरु चम्पा	क्रिमसन टेम्पल ट्री, रेड फ्रेंजिपेनी, पैगोडा ट्री
	लाल कठचम्पा	रेड जेस्मिन ट्री
गजरा	गोलगोल, गबडी, सोनाली सिमुल	येलो सिल्क काटन ट्री, टार्चवुड ट्री, बटरकप ट्री
गन्धराज	गन्धराज	केपजेस्मिन, गार्डेनिया
गुलमोहर	कृष्णचूड़ा, राधाचूड़ा	ड्वार्फ प्वाइंसिएना, पीकॉक फ्लावर,
		पेराडाइज फ्लावर, प्राइड आफ बर्बेडोस, फ्लैमबोएंट
गुलहर (ओढुल)	जवा	चाइना रोज, शू फ्लावर, चाइनिज हिबिस्कस
गाछ बैगन	गाछ बैगन	पोटेटो ट्री, लार्ज फ्लावर्ड, नाइट शेड,
चन्दनप्रभा	चन्दनप्रभा	येलोएल्डर, येलोबेल्स
चम्पा, चम्पक	चम्पा	गोल्डेन चम्पा
चान्दनी (कनेर)	करबी, रक्त करबी, श्वेत करबी	ओलिएंडर, रोजबे
चालता	चालता, हरगेसा	एलिफैंट एपल
छतवन	छातिम	डेविल्स ट्री, डिटाबार्क ट्री स्कॉलर ट्री
जयती	जयती	जेट्रोफा

झाड़ फनूस	झाड़ फनूस	सॉसेज ट्री, ककम्बर ट्री, फेटिश ट्री
टुलिप	टुलिप	टुलिप, सिरिज ट्री, फाउंटेन ट्री
डकुर	डकुर	श्रब विंका, पिंक कोप्सिया
डोमरूपनी	डोमरूपनी	रोज माउंड, वेडिंग फ्लावर
तगर	तगर	क्रेप जेस्मिन, वैक्स फ्लावर, नेरोज क्राउन, इस्ट इंडियन रोज बे
तुमा	तुमा	मोल्मिन, रोजवुड
त्रिवर्णक	त्रिवर्णक	येस्टर डे-टुडे-टुमॉरो
नागकेशर, नागचम्पा	नागकेशर सुरा	आइरनवुड ट्री
नागलिंगम, तोपगोला	कमानगोला	कैनन बॉल ट्री
नीली गुलमोहर	नीलकण्ठ	ग्रीनइबोनी, फर्ण ट्री
पत्रमंजरी	केरूइ	प्वांइसेटिया, इस्टर फ्लावर
पलाश (टेसू)	पलाश, किनकामुनी	फ्लेम ऑफ दी फॉरेस्ट, बस्टर्ड टीक
परसपीपल	पलाशपीपल	भेंडी ट्री, पोर्शिया ट्री, टुलिप ट्री, अम्बेला ट्री
पीली कनेर	कोल्केफूल, कोकिलफूल	ओलिएंडर, बी-स्टील ट्री, लकी बीन, ट्रम्पेट फ्लावर
फूलझड़ी	फूलझुड़ी	ह्वाइटलेस यूफोर्बिया, पेस्कुटा
बढारा	बढारा	हेजहॉग
बागानविलास	बागानविलास	बोगेनविलिया
बोहारी, लाललसूरा	कमला बुहल, रक्तराग	एलोवुड, गीजर ट्री, स्कार्लेट कोर्डिया, सेबेस्टनप्लम
बेदिना	मूशंड, पत्रलेखा	फ्लेग ब्रश
भोला	भोला	ट्री एंटीगोनन
मणिकुन्तला	मणिकुन्तला	पिंक पाउडर पफ, मिनिएचर पाउडर पफ
मलयजाम	मलाकाजमरूल	मलय एपल, पोमेरेक जम्बोस, ओटेहिट कैश्यू, केविका ट्री
मुचकुन्द	कनक चम्पा	बेयुर ट्री
मुना	मुना	स्कार्लेट बुश, फायर बुश
मोगरा (बेला, मोतिया)	बेलफूल	अरेबियन जेस्मिन, टस्कन जेस्मिन
मौलश्री	बकुल, बोहल	स्पैनिश चेरी, इंडियन मेडलर
रक्त मदार	पाल्तेमदार	इंडियन कोरल ट्री, बास्टर्ड टीक, मोची वुड
रम्याणि	रम्याणि	पोर्टलेण्डिया
रात की रानी	हस्नाहाना	नाइट जेस्मिन, क्वीन ऑफ दी नाइट, लेडी आफ दी नाइट
रूपसी	रूपसी	सिल्वर ओक, सिल्की ओक
लोहाजंगिया	रंगन गंधन रंगल	टॉर्च ट्री
लंका जवा	लंका जवा	स्लीपिंग मेलो, जाएण्ट फायर डार्ट, वैक्स मेलो
लाल बोतल ब्रश	बोतल ब्रश	बोतल ब्रश
लावनी	लावनी	–

वासन्ती	वासन्ती	गोल्डेन ट्रम्पेट ट्री
विलायती कीकर	नवीना	जेरुसलम थार्न, पेलो वर्ड, रेटेमा
विलायती शिरीष	विलाती शिरीष	रेनट्री, गुआंगो, काउ टेमेरिण्ड, मंकी पॉड
विलासी	वरूण, तिक्तोशक	बंगाल क्विंस, केपर ट्री, सेक्रेड बर्ना
शिरीष (लसरिन)	शिरीष	फ्राइ वुड, पैरोट ट्री, वोमैन्स टंग, सिज्लिंग ट्री, कोक्को, लेबेक ट्री
सारंगा	सारंगा	स्पॉटेड ग्लिरिसिडिया, मेड्रे ट्री, मेडुरा शेड ट्री, मदर ऑफ कोकोआ
सिमुल (सेमर)	सिमुल	रेड सिल्क कॉटन, रेड कैपोक
सुप्ति	सुप्ति	वेस्ट इंडियन माउंटेन रोज, स्कार्लेट फ्लेम बीन
सुबबूल	सुबबूल	होर्स टेमेरिड, ह्वाइट बबूल, सी ब्लू, ह्वाइट पोपिनेक
हर सिंगार	शेफालिका, शिउली	नाइट जेस्मिन, कोरल जेस्मिन
हिम चम्पा	विलायती चम्पा	ग्रेट लॉरेल मैग्नोलिया, बुलबैग, लिली ट्री

व्यापक रुप से प्रचलित नामों के अभाव में पुष्प विशेषज्ञ वैज्ञानिकों ने रुप और गुणों के आधार पर कुछ फूलों को नये नाम दिए; जैसे– अरुण ज्योति, आभा (श्वेताभा), उर्वशी, कंटक लिली गाछ बेगुन, तुमा, त्रिवर्णक, कमानगोला, फुलझुड़ी, मुना, रम्याणि, रुपसी, वासन्ती, नवीना, सांरगा, सुप्ति इत्यादि। लगभग ये सभी पौधे/वृक्ष कोलकाता के विभिन्न उद्यानों में तथा सड़कों के पार्श्व में दिखाई देते हैं।

(ब्युटीफुल ट्रीज एण्ड श्रब्स ऑफ कैलकटा, 1984 से साभार)

———————

एक आदर्श वैज्ञानिक

ए. बी. डी. सेलवम
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

बुद्धिमानी ही उसकी पहचान है
आवश्यकता ही उसकी प्रेरणादायक माँ है
कल्याणकारी मानवता ही उसका पिता है
प्रयोगशाला ही उसकी निकटतम मित्र है
शोध ही उसके लिये ईश्वर के समान प्रिय है
प्रकृति की खोजबीन उसका कर्तव्य होगा
बाल की खाल निकालना उसका व्यवहार होगा
अधिकार जमाना उसकी आदत में शामिल होगा
प्रकाशन करना उसका जन्मसिद्ध अधिकार होगा
बौद्धिक सम्पदा अधिकार उसका अंतिम लक्ष्य होगा
जैसे धरणी और आकाश परमपिता परमात्मा के दिमाग की उपज है
उसी प्रकार विज्ञान व प्रोद्योगिकी वैज्ञानिक के दिमाग की उपज है
आओ वैज्ञानिक बंधुओं आओ, प्रकृति के साथ सांमजस्य बनाओ
मिल जुलकर कुछ ऐसा कर दिखाओ, जिससे मानव जाति का हो कल्याण।

———————